भारतीय
कालदर्शन

महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

भारतीय कालदर्शन

महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

सम्पादक
डॉ. कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – निदेशक
आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूज़ी संस्कृति भवन,
आधार तल, बाणगंगा, भोपाल
मध्यप्रदेश-462003 फोन-2551878, 2760668

प्रकाशन – वर्ष 2005

मूल्य – 50/- (रूपये पचास केवल)

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल

शब्दांकन – आदिवासी लोक कला अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल

आवरण – सूर्य, द सन पुस्तक से साभार
मुद्रण – राज प्रिन्टर्स, भोपाल

- पुस्तिका से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल होगा।
- पुस्तक में छपी सामग्री के किसी भी माध्यम द्वारा उपयोग के पूर्व अकादमी से अनुमति लेना आवश्यक होगी।
- पुस्तिका में प्रकाशित समस्त सामग्री संकलनकर्त्ता, लेखक की अपनी है, आवश्यक नहीं है कि अकादमी इससे सहमत हो।

अनुक्रम

काल वंदना **7–9**

भूमिका **10–25**

प्रक्रियापाद **26–67**

(काल–व्युत्पत्ति और परिभाषा, कालोत्पत्ति सर्ग, काल–महिमा, काल का आधिदैविक स्वरूप, काल का महेश्वर स्वरूप, युगरूपी महेश्वर पूज्य क्यों ?, शंकर का कालरूप, नक्षत्र पुरुष वर्णन, विष्णु का आधिदैविक स्वरूप, द्वादश–पत्रक योग)

अनुषंग पाद **68–128**

(अथर्ववेद के कालसूक्त, औपनिषदिक मत, पौराणिक मत, श्रीराम की काल मीमांसा, श्रीकृष्ण की काल मीमांसा, अर्थवेद की कालावधारणा, धनुर्वेद की कालावधारणा, गान्धर्व वेद और काल, आयुर्वेद और काल, जैन दर्शन में काल की स्थिति, सूर्य सिद्धान्त मत)

उपोद्घात पाद **129–189**

(काल–विभाग, रात्रि–दिन–संध्या और ज्योत्सना, सप्तवासर और उनकी उत्पत्ति, ऋतुएँ, सम्वत्सर, सृष्टि काल, सर्ग काल, प्रलय काल, कल्प काल, मन्वन्तर काल, युग के चतुष्पाद, चतुर्युग, कालमान)

उपसंहार पाद **190–195**

काल कथा

परिशिष्ट **196–232**

(अवशिष्ट परिभाषाएँ, सप्तर्षि काल, विषुव काल, तिथि काल, नक्षत्र काल, मास काल, बारहमासों के अधिकारीगण, अनध्याय काल, पंचवर्षाब्द काल, सम्वत् संग्रह, राशियों के स्वरूप, कालादि शब्दकोश, सहायक ग्रन्थ)

संदर्भ **233–242**

काल - वन्दना

नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमेषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि॥[1]

1. सम्पूर्ण ज्योतिर्गणों के आश्रय, काल-चक्र स्वरूप सर्वदेवाधिपति परम पुरुष परमात्मा का हम नमस्कार पूर्वक ध्यान करते हैं।

नमस्ते परमात्मात्मन् पुरुषात्मन् नमोऽस्तु ते।
प्रधान व्यक्त भूताय कालभूताय ते नमः॥[2]

2. हे परमात्म स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे पुरुषात्मन्! आपको नमस्कार है। हे प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप! आपको नमस्कार है। हे कालस्वरूप! आपको बारम्बार नमस्कार है।

नमोऽस्तु काल रुद्राय कालरूपाय ते नमः।[3]

3. *काल रुद्र को नमस्कार। हे काल रूप! आपको नमस्कार है।*

यया विनाऽत्र संख्याकृत् संख्यां कर्त्तुं न शक्नुते।
काल संख्या स्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥[4]

4. जिनकी कृपा के बिना संख्या करने वाले, संख्या नहीं कर सकते, उन काल संख्या रूपिणी देवी को बारम्बार नमस्कार है।

हे काल कर्मणां साक्षिन् कर्मरूप सनातन।
नारायणांश भगवन् नमस्तुभ्यं पराय च॥[5]

5. हे काल और कर्मों के साक्षी, कर्मरूप सनातन, भगवन्! आप नारायण के अंश हैं। आप परमेश्वर को नमस्कार है।

ये नान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्।
कामानुरूपं कालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्॥

6. जो काल के अनुसार इच्छापूर्वक विश्व के समस्त प्राणियों का अन्त करते हैं, उन भगवान् अन्तक को मैं नमस्कार करती हूँ।

विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च संततम्।
अतीव दुर्निवार्य च तं कालं प्रणमाम्यहम्॥[6]

7. जो विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों के समय का निरन्तर परिगणन करते हैं, जो परम दुर्घर्ष हैं, उन भगवान् काल को मैं प्रणाम करती हूँ।

गगनं भूर्दिशश्चैव, सलिलं ज्योति रेव च।
पुनः कालश्च रूपाणि यस्य तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥

8. आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, जल, तेज तथा 'काल'- ये जिनके रूप हैं, उन आप परमेश्वर को नमस्कार है।[7]

नमो वः पितरो रसाय॥ नमो वः पितरः शोषाय॥
नमो वः पितरो जीवाय॥ नमो वः पितरः स्वधायै॥
नमो वः पितरो घोराय॥ नमो वः पितरो मन्यवे॥
नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो
दत्त सतो वः पितरो दैष्मैतद्वः पितरो वासऽआधत्त॥

9. हे पितृगण! आपके रस रूप (वसन्त), शुष्कता रूप (ग्रीष्म), जीवन रूप (वर्षा), अन्न रूप (शरद्), पोषण रूप (हेमन्त), उत्साह रूप (शिशिर) को नमस्कार है।

हे पितृगण! हमारे पास जो कुछ भी है, वस्त्रादि सहित वह सभी आपको समर्पित करते हैं। आप हमें पुत्र-पौत्रादि से युक्त गृह प्रदान करें। [8]

ब्रह्मा येन कुलालवत् नियमतो, ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे।
विष्णुः येन दशावतार चरिते, क्षिप्तो महासंकटे॥
रुद्रो येन कपाल पाणिपुरके, भिक्षाटनं कारितः।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने,कालाय तस्मै नमः॥

10. जिसके कारण ब्रह्मा, ब्रह्माण्ड रूपी भाण्डोदर (बर्तन) में कुम्हार के 'चाक' (चक्र) बने रहते हैं। (अर्थात् नियमपूर्वक सृष्टि कार्य में व्यस्त रहते हैं।)

– जिसके कारण विष्णुः अपने दशावतार-चरित्रों में अनेक वार महान् संकटों (उलझनों) में पड़ गये;

– जिसके कारण रुद्र अपने हाथों में कपाल लिये हुए विवश हो जाते हैं;

– जिसके कारण सूर्य गगन मण्डल में नित्य प्रति भ्रमण करते रहते हैं, ऐसे महान् बलशाली 'काल' को नमस्कार है। [9]

द्वादशारोऽथ षण्णाभिस्त्रिव्यूहो द्वियुगस्तथा।
काल चक्रो भवानीशो नमस्ते पुरुषोत्तमः॥ 44॥ [10]

11. आप बारह अरों वाले, छः नाभियों वाले, तीन व्यूहों वाले, दो युगों वाले कालचक्र हैं। सबके स्वामी हैं। पुरुषोत्तम हैं। आपको नमस्कार है।

भूमिका

'काल' के सम्बन्ध में हमारा सामान्य-ज्ञान मात्र इतना है कि काल समय को कहते हैं और काल माने 'मृत्यु', या जीवन का अन्त है। व्याकरण के विद्यार्थी काल को भूत - वर्तमान और भविष्य काल के रूप में जानते हैं। अथवा उसके दस भेदों- (1) लट् (2) लोट् (3) लिङ् (4) लङ् (5) लिट् (6) लुङ् (7) लुट् (8) लृट् (9) आशीर्लिङ् तथा (10) लृङ् से परिचित हैं।[11] ये दस काल भेद अंग्रेजी भाषा में मूड (Mood) कहलाते हैं और इन नामों से जाने जाते हैं-

लट् (वर्तमान काल)	–	Present Tense
लोट् (आज्ञा)	–	Imperative Mood
लिङ् (विधि)	–	Potential Mood
लङ् (अनद्यतन भूत)	–	Imperfect Tense
लिट् (परोक्ष भूत)	–	Perfect Tense
लुङ् (सामान्य भूत)	–	Aorist
लुट् (अनद्यतन भविष्य)	–	First Future
लृट् (सामान्य भविष्य)	–	Simple Future
आशीलिङ् (आशीः)	–	Benedictive
लृङ् (क्रियातिपत्ति)	–	Conditional

एक प्राणी या जीवधारी को गर्भावस्था से लेकर मरणावस्था तक, जन्म, शैशव, बाल्य, पौगण्ड, किशोर युवा, प्रौढ़ तथा वृद्ध – इत्यादि अनेक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। ये अवस्थाएँ भी काल ही के रूप हैं।

काव्यशास्त्र विनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा॥

– अर्थात् बुद्धिमान् व्यक्तियों का समय काव्यशास्त्र के विनोद में, तथा मूर्खों का समय दुर्व्यसनों, सोते रहने अथवा कलह करने में व्यतीत होता है।

इसमें 'कालो गच्छति' वाक्यखण्ड से स्पष्ट होता है कि 'काल' कोई जड़ पदार्थ नहीं है जो पेड़-पौधों अथवा पर्वतों (स्थावरों) की भाँति एक स्थान पर 'अचल' बना रहे। बल्कि वह 'चेतन' तथा गतिशील (जंगम) है। अर्थात् निरन्तर आगे बढ़ता रहता है, जाता है, चलता है, दौड़ता है। इस सम्बन्ध में आदि शंकराचार्य का यह कथन प्रमाण है–

दिनमपि रजनी सायं प्रातः, शिशिर वसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति, गच्छत्यायुः, तदपि न मुंचत्याशावायुः॥

– अर्थात् दिन के बाद रात, रात के बाद दिन, सायंकाल के बाद प्रातःकाल, प्रातः के बाद सायंकाल, तथा शिशिर वसन्त आदि ऋतुओं का 'काल चक्र' बार-बार पुनरावृत्त होता रहता है। 'काल' खेलता रहता है, आयु बीतती रहती है, फिर भी आशा रूपी वायु से छुटकारा नहीं मिलता अर्थात् आशाएँ-कामनाएँ पीछा नहीं छोड़ती।

आदि शंकराचार्य का यह कथन भी एक प्रमाण ही है कि 'काल' न केवल चलता रहता है, बल्कि हम सभी लोगों के जीवन से खेलता भी रहता है।

'श्रीमद्भागवत' से भी इस बात की पुष्टि होती है कि 'काल' हम लोगों के जीवन से ऐसे खेलता है, जैसे कोई 'पशुपालक' अपने पशुओं से खेलता हुआ, उन पर अपना नियन्त्रण बनाये रखता है–

कालो बलीयान् बलिनां, भगवानीश्वरोऽव्ययः।
प्रजा कालयते क्रीडन्, पशुपालो यथा पशून्॥ 19॥[12]

– काल समस्त बलवानों से भी बली है। वह परमसमर्थ, अविनाशी और भगवत्स्वरूप हैं। वह समस्त जीवों (प्रजा) से खेलता हुआ उन पर अपना नियंत्रण इस प्रकार रखता है, जैसे एक पशुपालक अपने पशुओं पर रखता है।

इस समग्र-संसार को 'जगत्' क्यों कहते हैं ? 'जगत्' का अर्थ होता है निरन्तर गतिशील। अर्थात् जिसकी गति कभी न रुके- वह 'जगत्'। 'काल' भी गतिशील है, वह कभी नहीं रुकता। इसलिए जगत् और काल दोनों ही समानार्थी हैं। दूसरे शब्दों में- जगत् ही काल है, और काल ही जगत् है।

हमारे जीवन का कण-कण काल से जुड़ा हुआ है। हम प्रत्येक क्षण, काल के ही निर्देशानुसार जीवन-यापन करते हैं। हमारा जीवन एक निमेष के लिए भी काल से अलग नहीं हो पाता। सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा, तारागण, ग्रह-नक्षत्र, यहाँ तक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी- काल के ही निर्देश से गतिशील है। काल के ही कारण इनका अस्तित्व है और काल के ही द्वारा इनका अन्त भी होगा।

'काल' का यह सर्वव्यापी स्वरूप हम सभी के सामने है। आँखों के आगे से कभी ओझल नहीं होता। फिर भी हम काल की तरफ से बेखबर हैं और मात्र इतना ध्यान रखते हैं कि काल हमारे जीवन का 'अन्तक' है।

यदि हम 'काल-ज्ञान' के प्रति असावधान और उससे अनभिज्ञ न होते तो सीना ठोककर कह सकते थे कि भारतीय संस्कृति लाखों वर्ष पुरानी है, हमारा ज्ञान-विज्ञान पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ है और हमारा इतिहास सम्बन्धी ज्ञान आज भी सर्वोपरि है।

संसार की प्राचीन सभ्यताओं में भारतीय संस्कृति के अवशेष पाये जाते हैं। प्राचीन भाषाओं में मातृ, पितृ तथा भ्रातृ इत्यादि वैदिक शब्दों के तद्भव और तत्सम शब्द रूप पाये जाते हैं। इस बात से यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत में ये सारी विशेषताएँ विदेशियों के सम्पर्क से आयी हैं। जबकि सचाई यह है कि प्राचीनकाल में भारत से गये हुए लोगों ने ही वहाँ पर भारतीय संस्कृति का प्रचार किया था।

1. पुराणों में उल्लेख है कि नारद की प्रेरणा से दक्ष प्रजापति के शबलाश्व और हर्यश्व नामक पुत्रगण पृथ्वी के ओर-छोर का पता लगाने के लिए चारों

दिशाओं में गये और फिर वहीं बस गये। लौटकर नहीं आये। ये पुत्रगण संख्या में छह हजार थे। [14]

2. इसी प्रकार राजा ययाति (जो कि सप्ताद्वीपात्मिका पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् थे) जब वृद्ध हो गये तब उन्होंने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य का बँटवारा अपने पाँच पुत्रों में किया और उन्हें अपने दूरवर्ती प्रदेशों में शासन करने के लिए भेज दिया। वे वहीं रह गये और उन्होंने वहाँ पर अपनी अलग संस्कृति प्रचलित की।[15]

3. स्वयंभू मनु के वंशधरों ने पृथ्वी के सातों द्वीपों पर न केवल शासन किया, बल्कि अपनी-अपनी संस्कृति भी विकसित की।[16]

4. स्वयंभू मनु वर्तमान श्वेत वाराह कल्प के सर्वप्रथम प्रजापालक थे। चूँकि इनके द्वारा प्रजा का भली प्रकार से 'भरण-पोषण' किया गया था, इस कारण इन्हें 'भरत' नाम से पुकारा गया, इनकी प्रजा को भारती कहा गया और देश का नाम भी 'भारत' पड़ा-

वर्षं यद् भारतं नाम, यत्रेयं भारती प्रजा।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते॥
निरुक्त वचनाच्चैव, वर्षं तद् भारतं स्मृतम्॥ 76॥[17]

- स्मरणीय है कि स्वयंभू मनु को हुए आज तक एक अरब, सन्तानवे करोड़, उन्तीस लाख, उन्नचास हजार एक सौ तीन सौर वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भारत के समस्त ज्योतिष ग्रंथ, समस्त पुराण, वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत आदि ग्रन्थ इसका समर्थन करते हैं।

5. स्वयंभू मनु के प्रपौत्र ऋषभ के पौत्र शतश्रृंग के आठ पुत्र- (1) इन्द्र द्वीप (2) कसेरु (3) ताम्रद्वीप (4) गभस्तिमान् (5) नाग (6) सौम्य (7) गन्धर्व एवं (8) वरुण तथा कुमारी नामक एक पुत्री- नौ सन्तानें हुईं। राजा शतश्रृंग ने अपने साम्राज्य के नौ भाग किये और प्रत्येक सन्तान को एक-एक भाग सौंप दिया। पुत्रों के भाग तो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुए किन्तु पुत्री का भाग 'कुमारिका-खण्ड' कहलाया। वर्तमान भारतवर्ष यही कुमारिका खण्ड है। दक्षिणी भारत का 'कुमारी अन्तरीप' इसी राजकुमारी के नाम से

प्रसिद्ध हुआ। इसने विवाह नहीं कराया और तपस्या करके पार्वती जी की सखी बन गई थी। शेष आठों भाइयों के भाग (देश) कालान्तर में भारत के नियंत्रण से अलग हो गये। इनकी यात्रा करना भी कठिन हो गया। ये सभी भारतवर्ष के नवखण्ड कहलाते थे। संकल्प में भारत को आज भी 'भरत खण्ड' कहा जाता है। [18]

6. प्राचीन सिन्धु नदी के दोनों कछारों में बसे हुए गन्धर्वों की स्वेच्छाचारिता के कारण, वहाँ के मूल निवासी और पास-पड़ौस के राजागण तंग आ चुके थे। कैकेय नरेश युधाजित् के नेतृत्व में उन्होंने अयोध्या नरेश श्री रामचन्द्र से इनसे मुक्ति की प्रार्थना की। तब रामचन्द्र जी ने भरत के सेनापतित्व में गन्धर्व देश पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी। जब गंधर्व लोग समझाने से नहीं माने तो भयंकर युद्ध हुआ और भरत जी के संवर्त्तकाल अस्त्र के कारण गन्धर्वों का नाश हो गया। तत्पश्चात् भरत ने अपने पुत्रों- तक्ष और पुष्कल के नाम से दो नगर तक्षशिला और पुष्कलावत बसाकर गन्धर्व राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया। एक भाग गन्धर्व देश कहलाया जिसकी राजधानी तक्षशिला थी और दूसरे भाग को 'गान्धार विषय' कहा गया। इसकी राजधानी 'पुष्कलावती' हुई। [19]

- हड़प्पा और मोहन-जो-दड़ो की सिन्धु-घाटी सभ्यता, यही गन्धर्व-सभ्यता थी जो भारत के संवर्त नामक कालास्त्र के कारण नष्ट भ्रष्ट हुई। भारतीय कालगणना के अनुसार रामचन्द्र जी चौबीसवें त्रेता युग के अन्तिम भाग में हुए थे और इस घटना को घटे पूरे एक करोड़, पच्चीस लाख, उनहत्तर हजार एक सौ तीन सौर वर्ष बीत चुके हैं।[20]

चतुर्विंशे युगे चापि, विश्वामित्र पुरस्सरः।
राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥

(हरिवंश. हरिवंश पर्व/अ. 41/श्लोक-121)

यदि हम भारतीय काल गणना पर विश्वास करते होते तो 'सिंधु घाटी सभ्यता' के नष्ट होने का कारण न ढूँढ़ना पड़ता।

भारतीय-काल गणना, प्रथम-दृष्टया अतिशयोक्तिपूर्ण, अविश्वसनीय तथा

मनगढ़न्त प्रतीत होती है। किन्तु सूक्ष्मत: अध्ययन करने एवं सूर्य-सिद्धान्त, आदि ग्रन्थों के द्वारा इसका अनुमोदन प्राप्त होने की स्थिति में, विवश होकर सोचने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि उक्त काल गणना पूर्णतया विज्ञान-सम्मत तथा शताब्दियों के गहन अनुसंधान पर आधारित है। पुराणों में जहाँ कहीं भी इस गणना का प्रसंग आया है, प्रवक्ता सूत या ऋषि ने यही कहा है कि यह कालगणना 'कालज्ञों' ने निर्धारित की है। उन्होंने यह किसी भी स्थल पर नहीं कहा कि ये कालगणना मेरे व्यक्तिगत मतानुसार है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्राचीनकाल में 'काल-गणक' लोग अलग से थे जो सिर्फ इसी काम पर तैनात थे, अथवा केवल कालानुसन्धान ही उनकी जीविका थी। वाराह मिहिर ने ऐसे लोगों को 'साम्वत्सरिक' कहा है। चूँकि 'सम्वत्सर' शब्द 'काल' का भी वाचक है, और वेदों में इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अत: यही मानना उचित होगा कि- 'काल-गणकों का कोई प्राचीन सम्प्रदाय रहा होगा जो निरन्तर कालगणना करता रहता होगा।' वाराही संहिता से विदित होता है कि इस प्रकार के साम्वत्सरिकों की नियुक्ति राजाओं के द्वारा की जाती थी जो अपने शिष्यों और सहयोगियों को साथ लेकर अनुसंधान के लिए चारों दिशाओं में जाते थे। [21]

'सूर्य सिद्धान्त' भारतीय ज्योतिष शास्त्र का एक सर्वमान्य ग्रन्थ है, जिसकी चर्चा ईस्वी पूर्व से होती चली आ रही है। इसकी रचना किसने की है, यह तो आज तक तय नहीं हो पाया, लेकिन यह निश्चित है कि यह कालगणना से सम्बन्धित प्राचीनतम ग्रन्थ है। सूर्य-सिद्धान्त में उल्लिखित अनुश्रुति के अनुसार यह ग्रन्थ 'मय' नामक असुर की रचना है जो उसने सूर्यांश के उपदेश के आधार पर लिखा था। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें पौराणिक-काल गणना को पूर्णतया वैज्ञानिक मान्यता प्रदान की गई है। गणना के नौ 'काल-मान' माने गये हैं और सभी की वैज्ञानिकता को युक्तिपूर्वक सिद्ध किया गया है। 'सहस्त्रयुगीय कल्प' के आधार पर सूर्यादि ग्रहों के भगण,[22] उच्च, पातादि के भगण द्वारा मध्यम-गणना और उनका स्पष्टीकरण किया गया है। तथा यह सिद्ध किया गया है कि वर्तमान श्वेत वाराह कल्प के शुरु होने के एक करोड़, सत्तर लाख, चौसठ हजार सौर वर्ष पश्चात् वास्तविक सृष्टि हुई है तथा यह भी कि 'अहर्गण की गणना' इसी काल से की जानी चाहिए। सूर्य सिद्धान्त में जो 'भगण' दिये हैं, वे विलक्षण और अविश्वसनीय से तो हैं, किन्तु गणना करने पर आधुनिक काल में भी बिलकुल खरे उतरते हैं। सूर्य-

सिद्धान्त की काल गणना को वर्तमान ज्योतिर्वैज्ञानिक भी चुनौती नहीं दे पाते। ऐसी स्थिति में पौराणिक-काल गणना पर अविश्वास करना, अथवा उसे मनगढ़न्त या अतिशयोक्तिपूर्ण बताना 'बुद्धि के दिवालियेपन' के अलावा और कुछ नहीं है।

'पौराणिक - काल-गणना' जो वस्तुत: भारत की, प्राचीन भारतीयों द्वारा निर्धारित काल-गणना है; 'परमाणु' से शुरु होकर 'पर' पर समाप्त होती है। यद्यपि यह 'पर' से भी आगे ले जायी गई है, तथापि सर्वमान्य केवल 'पर' तक ही है। यजुर्वेद का यह मन्त्र इसका प्रमाण है -

इमा में अग्नऽइष्टका धेनव: सन्त्वेका च दश, च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं, चायुतं, च नियुतं च नियुतं, च प्रयुतं चार्बुदं, च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्नऽइष्टका धेनव: सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके॥ (यजुर्वेद संहिता/अ.17/मन्त्र-2)

- इस मन्त्र में एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त और परार्ध तक की संख्याओं की चर्चा है। देखने में ये केवल चौदह हैं, किन्तु गणित की दृष्टि से अठारह हैं। इनमें जो अन्तिम 'परार्ध' नामक संख्या है, वह ब्रह्मा की आयु के आधे भाग की द्योतक है। दो परार्ध, ब्रह्मा की 'परमायु' होती है, जिसे 'पर' कहा जाता है।[23] ये सभी संख्याएँ 'काल वाचक' हैं (क्योंकि 'कल संख्याने' के अनुसार 'काल' का काम संख्या करना भी होता है)। लगभग सभी पुराणों में काल-गणना का आधार ये ही अठारह संख्याएँ बतायी गईं हैं।

'काल' का सूक्ष्मतम अंश 'परमाणु', और स्थूलतम रूप दो परार्ध है जिसे 'पर' कहते हैं। लेकिन 'परमाणु' से 'पर' तक के 'कालावयव' एक × दश के गणित से नहीं चलते, बल्कि इनका 'मान' निम्न प्रकार से किया जाता है-

2 परमाणु = 1 अणु, 3 अणु = 1 त्रसरेणु, 3 त्रसरेणु = 1 त्रुटि, 100 त्रुटि = 1 वेध, 3 वेध = 1 लव, 3 लव = 1 निमेष, 3 निमेष = 1 क्षण, 5 क्षण = 1 काष्ठा, 15 काष्ठा = 1 लघु, 15 लघु = 1 नाडिका, 6 नाडिका = 1 याम (प्रहर), 8 प्रहर = 1 अहोरात्र (दिन रात), 15 अहोरात्र = 1 पक्ष, 2 पक्ष = 1 मास, 2 मास = 1 ऋतु, 3 ऋतु = 1 अयन, 2 अयन = 1 वर्ष।

परमाणु से वर्ष (या सम्वत्सर) तक की काल-गणना 'मानव-मान' पर आधारित है। इसके बाद वर्ष को (1) सम्वत्सर (2) परिवत्सर (3) इडावत्सर (4) अनुवत्सर और (5) वत्सर इत्यादि नाम देकर 'वृहस्पति-मान' शुरु किया जाता है जो 'पंचाब्द-युग' कहलाता है। यह 'पंचाब्द युग' जब बारह बार घूम लेता है, तब 'साठ सम्वत्सर' का एक काल चक्र पूर्ण होता है। लेकिन यह गणना इतिहास के लिए उपयोगी नहीं है। इतिहास के लिए 'दिव्य मान' का आश्रय लेना पड़ता है। 'दिव्य मान' पृथ्वी के वार्षिक परिभ्रमण पर आधारित है। दूसरे शब्दों में सूर्य का उत्तरायण एक दिव्य-दिन, और दक्षिणायन एक दिव्य रात्रि माना जाता है। इस प्रकार मानवों का एक सौर वर्ष, देवताओं का एक अहोरात्र (एक दिन रात) होता है।

इस गणित से मानवों के 30 वर्ष का एक दिव्य मास, 360 वर्षों का एक दिव्य वर्ष तथा 360 × 12000 = 43, 20000 (त्रैतालीस लाख बीस हजार) सौर वर्षों का एक महायुग (या चतुर्युग) होता है। इसे एक दिव्य युग भी कहते हैं। प्रश्न यह उठता है कि इतिहास लेखन में जब मानववर्षों से काम चल सकता था, तब 'दिव्य मान' जैसे लम्बे काल मान की क्या आवश्यकता थी?

दरअसल, यह प्रश्न ही गलत है और उन लोगों के मस्तिष्क की उपज है जो इस सम्पूर्ण सृष्टि में केवल मनुष्यों के इतिहास को ही लक्ष्य मानकर चलते हैं। हम यह क्यों भूल जाते हैं कि इस संसार में उत्पन्न हर पदार्थ, अपनी निजी-आयु से बँधा हुआ है। हम जिन सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, ध्रुव और सप्तर्षि-मण्डल आदि की गतियों का निरीक्षण करके अपना काल-मान निश्चित करते हैं, उनकी भी एक निश्चित आयु है, वे भी एक विशेष कालावधि के पश्चात् या तो नष्ट हो जाते हैं, या फिर परिवर्तित (या आँखों से ओझल) हो जाते हैं। मनुष्य आदिकाल से ही प्रकृति (सृष्टि) के रहस्यों को जान लेने की उत्कण्ठा से पीड़ित रहा है। पश्चिम के वैज्ञानिक जो प्रकृति के रहस्यों के उद्घाटन में इस युग में प्राण-पण से लगे हुए हैं, यह आज की दुनिया के लिए नया हो सकता है, किन्तु भारतीयों ने तो इस कार्य को हजारों वर्षों पहले कर डाला था।

एक मानव वर्ष में बारह प्रकार के सूर्यों का 'परिभ्रमण' कोरी कल्पना नहीं है। सभी पुराणों, ज्योतिष-ग्रन्थों यहाँ तक कि वेदों में भी एक सम्वत्सर काल में

बारह प्रकार के सूर्यों के लक्षण (तथा उनके सहयोगी ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, यक्ष तथा सर्प आदि के नाम) पाये जाते हैं। इन सूर्यों के नाम क्रमशः- धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, विश्वावसु, अंश, भग, त्वष्टा, विष्णु हैं। इन बारहों सूर्यों को द्वादश 'आदित्य' कहा जाता है। इनके चैत्रादि बारह मासों में अलग-अलग प्रकार के वर्णों तथा कार्यों की सूची पुराणों में उपलब्ध है तथा प्रत्येक आदित्य के ऋषि इत्यादि भी सहयोगी 'गण' भिन्न-भिन्न हैं। प्राचीन ऋषियों ने जब देखा कि एक वर्ष में सूर्य के बारह-रूप बदलते हैं, तब उन्होंने और अधिक गहराई से अनुसंधान किया और पाया कि इन द्वादश रूपों वाले एक सूर्य की स्थिति पूरे आठ लाख, बावन हजार दिव्य वर्षों तक रहती है। अर्थात् 8,52,000 दिव्य वर्षों के बाद सूर्य बदल जाता है और लगभग 5103 दिव्य वर्षों के अन्तराल के पश्चात् नये सूर्य का आगमन हो जाता है। प्राचीन कालगणकों ने इस कालावधि को 'मन्वन्तर' की संज्ञा दी है और इस काल का संचालन करने वाले सूर्य को 'मनु' कहा है। भ्रम वश 'मनु' को मनुष्यों का पूर्वज मान लिया गया है, जो एक दृष्टिकोण से सही भी है; क्योंकि सूर्य ही काल, सूर्य ही ब्रह्मा, सूर्य ही कश्यप, सूर्य ही प्रजापति और सूर्य ही मनु है। एक मन्वन्तर काल में जितनी सृष्टि होती है, वह 'मनु' के ही संचालन में होती है।

मयासुर ने कहा है कि- एक मन्वन्तर व्यतीत हो जाने के बाद भयंकर जलप्लावन होता है,[24] जिसमें जीव-जन्तुओं की (सम्पूर्ण पृथ्वी या तीनों लोकों की नहीं) सृष्टि नष्ट प्राय हो जाती है। लेकिन यह जलप्लावन 'प्रलय' नहीं कहलाता, क्योंकि इसमें समग्र सृष्टि नष्ट नहीं होती। जब वातावरण शान्त हो जाता है और नये 'मनु' (या सूर्य) का आविर्भाव होता है, तब प्राणियों की नूतन सृष्टि शुरु हो जाती है। इस प्रकार के 'जलप्लवन' की धुँधली-सी स्मृति एशिया महाद्वीप के अनेक प्राचीन देशों के इतिहास में पायी जाती है। वैवस्वत मनु और मत्स्यावतार की कथा तो लगभग सम्पूर्ण पुराणों में है ही, हज़रत नूह की अनुश्रुति भी ईसाइयों तथा मुसलमानों के धर्मग्रन्थों में सुरक्षित है। अन्तर केवल काल की अवधारणा का है। भारतीयों के अनुसार यह घटना (जलप्लवन) आज से लगभग एक अरब, सन्तानवे करोड़, उन्तीस लाख, उन्नचास हजार एक सौ तीन सौर वर्ष पूर्व घटी थी। लेकिन आधुनिक काल-निर्धारक इस घटना को एक लाख त्रेसठ हजार पाँच सौ अड़सठ वर्ष पूर्व घटित मानते हैं।[25]

भारतीय काल-गणकों ने इस प्रकार के चौदह मन्वन्तरों के चक्र का अस्तित्व माना है। उनका कथन है कि एक सृष्टि काल में चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं। लक्षणों और गुणों के आधार पर इन मन्वन्तरों के नाम भी चौदह ही रखे गये हैं। ये नाम मन्वन्तरों के अधिपति मनुओं (या सूर्यों) के नाम पर आधारित हैं। गणना की सुविधा के लिए प्रत्येक मनु का कार्यकाल इकहत्तर दिव्य युग (या चतुर्युग) माना गया है।

पुराणों के अनुसार एक 'दिव्य युग' (महायुग या चतुर्युग) को चार भागों में विभाजित रखा गया है। लेकिन ये चारों भाग समान न होकर चार, तीन, दो और एक के अनुपात में है। सृष्टि के विकास, मनोवृत्ति, संस्कृति एवं धर्म-अधर्म की स्थिति के दृष्टिकोण से इन विभागों को क्रमशः कृत (सत्य), त्रेता, द्वापर और कलि- ये चार युग नाम दिये गये हैं। बारह हजार दिव्य वर्ष के दशमांश में क्रमशः 4, 3, 2 और 1 का गुणा-करने पर इन चारों युगों का कालमान निकल आता है। इनमें 360 का गुणा करने पर मानव (या सौर) वर्ष निकल आते हैं।

चौदह मन्वन्तरों के कुल दिव्य वर्षों में 6 महायुगों का काल जोड़ देने पर जो समयावधि निकलती है, उसे 'कल्प' कहते हैं। इसके अन्य नाम 'सृष्टि' है तथा एक ब्राह्म दिवस है। अर्थात् 'कल्प' ब्रह्मा का एक दिन है। इस कालावधि में सृष्टि कार्य सम्पन्न होता रहता है और इसके व्यतीत हो जाने पर एक कल्प की ब्रह्मा की रात्रि होती है, जो 'प्रलयकाल' है। इस काल को 'नैमित्तिक-प्रलय' भी कहते हैं। इसमें ब्रह्मा को छोड़कर सभी कुछ प्रकृति में लीन हो जाता है। तत्पश्चात् जब ब्राह्मरात्रि बीत जाती है, तब पुनः 'कल्प' (या नयी सृष्टि) का प्रारम्भ होता है। दो कल्प के ब्राह्म अहोरात्र के गणित से ब्रह्मा के एक मास में तीस कल्प (तथा तीस कल्पों की रात्रियाँ) होते हैं। इनके भी लक्षण और गुण धर्म के अनुसार पृथक्-पृथक् तीस नाम हैं। वर्तमान में ब्रह्मा का 'श्वेत वाराह' नामक कल्प चल रहा है। विष्णु का 'वाराह-अवतार' इसी कल्प के प्रारम्भ में हुआ था। कालगणना के अनुसार इस घटना को घटे लगभग एक अरब, सन्तानवे करोड़, उन्तीस लाख, उन्नचास हजार एक सौ तीन सौर वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस 'अवतार' के कारण हमारी पृथ्वी को वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ था।

'कल्प-गणित' के अनुसार वर्तमान 'ब्रह्मा' की अभी तक की आयु की

कालावधि 50 ब्राह्मवर्ष (प्रथम परार्ध) पूरी हो चुकी है और इक्यावनवें वर्ष के प्रथम दिन की 13 घड़ियाँ, 42 पल, 3 विपल, और 43 प्रतिविपल बीत चुके हैं।[26] ब्रह्मा की आयु के शेष उन्नचास ब्राह्मवर्ष पूर्ण होने पर 'प्राकृत' नामक प्रलय होगा जिसमें स्वयं ब्रह्मा ही 'ब्रह्मलीन' हो जायेंगे और कालान्तर में नये ब्रह्मा का जन्म होगा।

यह है भारतीय-पौराणिक काल गणना, जो अविश्वनीय प्रतीत होते हुए भी पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इस काल गणना की सत्यता का प्रमाणीकरण करने के लिए हमें या तो ऋषि मुनियों के वचनों को सत्य मानना होगा, या फिर इकतीस खरब, दस अरब, चालीस करोड़ बार मनुष्य जन्म लेकर गंभीर अनुसंधान करना पड़ेगा- तब कहीं हम इसका प्रत्यक्षीकरण देख पायेंगे।[27]

उक्त काल गणना पर आज तक किसी भी भारतीय ज्योतिषी ने अविश्वास नहीं किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन है कि यह कालगणना कुछ इस कारण भी सत्य है, क्योंकि हम हजारों-लाखों वर्षों से 'संकल्प मंत्र' के माध्यम से इस गणना में कल्प, मन्वन्तर और चतुर्युग के गत वर्ष जोड़ते चले आ रहे हैं।[28] कुछ इसलिए भी सत्य है क्योंकि सृष्टि-स्थिति और प्रलय को हम अनादि तथा नित्य मानते आये हैं तथा वेद जो कि अनादिकाल से ज्यों के त्यों चले आ रहे हैं, इस सत्य का प्रमाणीकरण करते हैं।

आधुनिक-विद्वान इस गणना पर इस कारण सन्देह करते हैं क्योंकि एक तो वे हर बात में पश्चिमी विद्वानों का 'ठप्पा' लगवाने के आदी हो चुके हैं, दूसरे अपने ही जन्म में इसका प्रमाणीकरण चाहते हैं। कैसी विडम्बना है कि हम पश्चिमी वैज्ञानिकों के 'प्रकाश वर्ष' के सिद्धान्त पर तो विश्वास करते हैं, किन्तु प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों पर नहीं करते। लगातार विदेशी-आक्रान्ताओं के आक्रमणों, तथा हमारे देश की राजनीतिक अस्थिरता ने हमारा मनोबल इतना गिरा दिया है कि हमें अपने अस्तित्व पर भी अविश्वास होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में इस कल्पनातीत कालगणना पर हमारा विश्वास कैसे जम सकता है ? इसके और भी कारण हैं जिनका उल्लेख अप्रासंगिक होगा। उचित यही है कि हम इस विषय पर नये सिरे से सोचें और अपने अनुसंधान की शैली एवं दिशा को बदलें। अन्यथा कुछ काल पश्चात् यह कालगणना स्वयमेव काल-कवलित हो जायेगी और हमारा प्राचीन

इतिहास लुप्त हो जायेगा।

'वाराही-संहिता' में आचार्य वराह मिहिर ने आर्य विष्णु गुप्त के वचन उद्धृत करते हुए कहा है कि-

अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचिदासा दयेदनिल वेग वशेन पारम्।
न त्वस्य काल पुरुषारण्य महार्णवस्य गच्छेत् कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम्॥

यदि कोई मनुष्य कभी समुद्र को तैरकर पार करना चाहे, तो वह वायु वेग के सहारे तैरता हुआ समुद्र को पार कर भी सकता है, किन्तु जो यह काल रूपी अथाह, अगम और अनन्त समुद्र है, इसे तो कोई मनुष्य (यदि वह ऋषि नहीं है तो) मन में भी पार नहीं कर सकता।

बिलकुल ठीक ऐसी मनोदशा मेरी उस समय हो गई जब मुझे डॉ. कपिल तिवारी के द्वारा 'काल की भारतीय अवधारणा' पर लिखने का प्रस्ताव प्राप्त हुआ। काल जैसे अमूर्त, अनादि और अनन्त - विषय पर सही अनुसंधान कर पाना तो दूर, उसके बारे में सम्यक् रूप से सोच पाना भी मेरे जैसे- सामान्य लेखक के लिए अत्यन्त कठिन कार्य था। यह कार्य मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिए एक कसौटी बन गया है जिस पर कसे जाने पर 'खरा सोना' साबित हो पाना असम्भव-सा है, फिर भी मैंने धृष्टता दिखायी और इस चुनौती भरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। शारीरिक रूप से लगभग अक्षम रहते हुए भी मैंने चारों वेद, उपनिषद, षड्दर्शन, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, सभी पुराण, सूर्य सिद्धान्त इत्यादि लगभग सभी प्रमुख-ग्रन्थों का पारायण किया और उनका मन्थन करने के उपरान्त जो नवनीत प्राप्त किया वह 'भारतीय काल दर्शन' के रूप में आपके हाथों में है। इस कार्य में मैं किस हद तक सफल हो पाया हूँ। इसका निर्णय मैं स्वयं नहीं कर सकता - यह तो पाठकों के अधिकार क्षेत्र में है। तथापि निवेदन तो कर ही सकता हूँ कि कृपया इस ग्रन्थ को 'सहज भाव' से पढ़ें। भले ही आप भारतीय ऋषि-मुनियों के वचनों पर विश्वास न करते हों, कम से कम एक बार तो जरूर ही इसे बिना किसी पूर्वाग्रह के पढ़ें और इस पर मनन करें।

इस ग्रन्थ में मैंने 'संस्कृत' के मूल श्लोक उद्धृत किये हैं। वह इसलिए ताकि उनके द्वारा सत्य के अधिक निकट पहुँचा जा सके। कारण कि कभी-कभी

मूल पाठ के अभाव में हिन्दी टीका या अनुवाद 'अनर्थ' या विवाद की स्थिति उत्पन्न कर देता है।

आदरणीय कपिल तिवारी का आग्रह था कि 'काल-दर्शन' के लिए समग्र-पुराण साहित्य से काल-सन्दर्भ लिये जायें। लगभग सभी पुराणों में काल से सम्बन्धित जानकारी थोड़े-बहुत अन्तर से एक ही जैसी दी हुई है; अतः अनेक बातें 'पुनरावृत्त' हुई हैं।

इसी प्रकार, किसी पुराण में ब्रह्मा को, किसी में विष्णु को, किसी में शिव को, किसी में शक्ति को और किसी में सूर्य को कालजनक, कालात्मा, कालस्वरूप अथवा काल का नियन्ता बताया गया है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में तो श्रीकृष्ण और राधा ही 'ब्रह्म और उसकी' शक्ति बतलाये गये हैं। ऐसी विविधता और अनेकता अनेक प्रकार के भ्रमों और द्विविधाओं को जन्म दे सकती है। इस सम्बन्ध में मात्र इतना ही कहना उचित होगा कि यह विरोधाभास की स्थिति नहीं है; बल्कि इस बहाने अनेकरूपता में 'एकता' दिखलायी गई है।[29] दरअसल लोक में प्रचलित पौराणिक-कथाओं ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति और सूर्य आदि को अलग-अलग खेमों में बाँट दिया है, जबकि इनमें पारस्परिक कोई अन्तर नहीं है। यदि हम इन देवताओं के नाम से प्रचलित 'सहस्त्रनाम स्तोत्रों' का अध्ययन करें तो तुरन्त ही पता चल जायेगा कि सभी देवताओं की लगभग एक ही जैसी विशेषताएँ बतलायी गई हैं, सभी के नामों में समानता-सी परिलक्षित होती है। यह अनेकता और भिन्नता ठीक वैसी ही है, जिस प्रकार किसी व्यक्ति के लिए दूसरों के द्वारा किये जाने वाले सम्बोधनों में होती है। जैसे एक ही व्यक्ति किसी का पुत्र, किसी का पौत्र, किसी का पिता, किसी का पति, किसी का भाई, किसी का भतीजा और किसी का साला या बहनोई होता है - ठीक उसी प्रकार एक ही परब्रह्म, एक ही परमेश्वर - प्रसंग तथा देश काल के कारण पृथक्-पृथक् नामों से पुकारा जाता है। एक व्यक्ति जब गुरु के पद पर आसीन होता है, तब उपदेश देता है। वही व्यक्ति जब थानेदार होता है, तब अपराधियों के लिए क्रूर बन जाता है। ठीक ऐसा ही परमेश्वर के साथ घटित होता है। जब वह सृष्टि करता है तब ब्रह्मा कहलाता है। जब वह पालन करता है विष्णु और जब संहार करता तब 'रुद्र' के नाम से जाना जाता है। 'ब्रह्माण्ड पुराण' में बताया गया है कि जब रजोगुण की प्रधानता होती है तब वह (ईश्वर) ब्रह्मा बन जाता है। जब सतोगुण की प्रधानता होती है तब वह विष्णु रूप से जाना जाता है

और तमोगुण की प्रधानता हो जाने पर वही ब्रह्म 'रुद्र' बनकर संहार करता है।

अस्तु, प्रबुद्ध पाठकों को इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए। दरअसल यह भारतीय-संस्कृति की विशेषता है कि वह एक ही विषय को विभिन्न कोणों से देखकर 'व्याख्यायित' करती आयी है। अथवा अनेकता के बहाने 'एकता' की प्रतीति कराती रही है।

जैसा कि मैंने पूर्व में निवेदन किया है, 'काल' असंख्य रूपों में व्याप्त है। उसके सारे स्वरूपों का समग्रता के साथ अध्ययन करना असम्भव-सा है। अत: जहाँ से भी, जैसी जानकारी मिली, उसे मैंने समेटने की कोशिश की है।

'काल' से सम्बन्धित पहले भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जिनके कारण 'भारतीयों की कालावधारणा' को 'ठेस' ही अधिक पहुँचती है। अधिकांश लेखकों ने केवल पाश्चात्य-विचारधारा को ही दुहराया है। मात्र 'काल-सिद्धान्त-दर्शिनी' एक पुस्तक ऐसी है जिसके लेखक महामहोपाध्य हाराणचन्द्र भट्टाचार्य ने भारतीय विचारकों के सिद्धान्तों को यथावत् संकलित किया है, किन्तु यह पुस्तक एक तो संस्कृत भाषा में होने के कारण सर्व-पाठक बोधगम्य नहीं है, दूसरे इसमें 'पौराणिक अभिमत' पर पर्याप्त विचार नहीं किया गया है। अत: कहना अनुचित न होगा कि 'भारतीय काल दर्शन' पहली पुस्तक है जो नई-पीढ़ी के लिए एक 'मार्गदर्शिका' प्रमाणित होगी। मुझे आशा है कि नई पीढ़ी के हिन्दी-पाठक इसके माध्यम से पूर्वजों की प्राचीन कालावधारणा को समझने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं करेंगे।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान, संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में सुरक्षित है। किन्तु नई पीढ़ी संस्कृत भाषा को हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों की भाषा समझने के भ्रम के कारण उससे 'परहेज़' करती है।

यही बात 'पुराणों' पर भी लागू होती है। पुराणों के बारे में भी अनेक भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हैं। वेदों के प्रबल पक्षधर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी 'पुराणों' को तिरस्कृत किया। जबकि पुराणों की अनेक मान्यताओं को उन्होंने अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है।

आम धारणा है कि पुराणों में कपोल-कल्पित कथाएँ भरी पड़ी हैं। पुराण

हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ हैं तथा पुराण साम्प्रदायिक-असहिष्णुता के स्रोत हैं। सत्य यह है कि जो लोग पुराणों के कट्टर आलोचक हैं, उन्होंने पुराणों के केवल दर्शन किये हैं - उन्हें सहज दृष्टिकोण से कभी पढ़ा नहीं है। यदि पढ़ा होता तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि पुराण मनुष्य-मात्र के लिए लिखे गये हैं - केवल हिन्दुओं के लिए नहीं। पुराणों के प्रमुख विषय पाँच हैं- सर्ग, प्रतिसर्ग, मनु (या मन्वन्तर) प्राचीन राजवंश तथा वंशानुचरित। पुराणों का मुख्य लक्ष्य मनुष्य को 'पुरुषार्थ-सिद्धि' के उपाय बतलाना है, धार्मिक असहिष्णुता उत्पन्न करना नहीं। इन सभी से ऊपर, पुराणों का एक अन्य कर्त्तव्य 'वेदों का उपबृंहण' करना है। अर्थात् वेदों के जिन अभिप्रायों को बड़े-बड़े भाष्यकर्त्ता 'लोगों की समझ में आने लायक' नहीं बना पाये, उनको पुराणों ने 'उपबृंहण' किया है। अर्थात् सामान्यजन की समझ में आने लायक बना दिया है। इस दृष्टि से पुराण 'लोक के उपयोग की वस्तु' हैं। संस्कृत के छन्दों में निबद्ध होने के कारण पुराणों की वर्णन-शैली 'छायावादी कविता' की तरह रूपकात्मक अथवा प्रकृति के मानवीकरण वाली शैली है। शोधकर्त्ता को तो 'कूड़े के ढेर' से भी अनेक उपयोगी वस्तुएँ मिल जाती हैं, पुराण तो फिर भी पुराण हैं।

पुराणों की इतनी हिमायत मैंने इसलिए की है, क्योंकि पुराण भारतीय लोक-संस्कृति के विश्वकोश हैं। इनमें भारतीय जौहरियों द्वारा निर्धारित असंख्य-रत्नों की जानकारी सुरक्षित है जो हमारी अज्ञानतापूर्ण उपेक्षा के कारण विस्मृति के गर्भ में समाती चली जा रही है।

देखने में तो 'भारतीय काल दर्शन' आदिवासी लोक कला अकादमी, भोपाल के 'लक्ष्य' से कुछ हटकर जान पड़ता है, किन्तु यथार्थत: ऐसा है नहीं। 'काल' आदिवासियों के जीवन से भी उसी तरह जुड़ा है जैसे नगर या ग्रामवासियों के जीवन से। काल हम सभी के जीवन से संपृक्त है। अत: हम उसे केवल अपने से जुड़ा नहीं मान सकते। सूर्य,चन्द्र और तारागण आदिवासियों को भी दिखायी देते हैं। वे भी इनके बारे में अपने ढंग से सोचते हैं। जन्म-मृत्यु, शैशव, बाल्य, युवा, प्रौढ़ और वृद्धावस्थाएँ आदिवासियों में भी होती हैं। वे भी काल का मापन अपने तरीके से करते हैं। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके विकास के हित में उन्हें यह सारी जानकारी देना भी जरूरी है कि हम विकसित लोगों ने काल के बारे में क्या-क्या सोचा है, उसके बारे में क्या-क्या जानते हैं ? ज्ञान का आदान-प्रदान ही सच्चा धर्म है। आदिवासी लोक कला अकादमी अपने इसी धर्म का निर्वाह कर

रही है। अत: इस महत्वपूर्ण 'प्रक्रम' के लिए अकादमी के निदेशक डॉ. कपिल तिवारी, उनके सहयोगी अशोक मिश्र तथा अकादमी-परिवार साधुवाद का पात्र है। इन्होंने मुझ जैसे सामान्य-शोधकर्त्ता को इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए चुना, इसके लिए मैं इन सभी का आभारी हूँ।

एक बार फिर मैं इस बात के दुहराना चाहूँगा कि इस ग्रन्थ में काल-सम्बन्धिनी पूरी जानकारी नहीं आ पायी है। काल अनन्त है, अपार है, और इसका असीमित-विस्तार है। इसे समग्र रूप से समेट पाना, कम से कम मेरे जैसे व्यक्ति के लिए तो संभव नहीं था। अत: अपनी असमर्थता के लिए क्षमा-याचना करते हुए एक बार पुन: मैं डॉ. कपिल तिवारी को साधुवाद देता हूँ कि इस कार्य के बहाने उन्होंने 'भारतीयता' की रक्षा के लिए एक बहुत ही साहसपूर्ण कदम उठाया है।

- महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

संगीत-गुरुकुल
पकौरिया महादेव, दतिया
(मध्यप्रदेश)-475 661.
दूरध्वनि - 07522-235241

प्रक्रियापाद

काल- व्युत्पत्ति और परिभाषा

'काल' शब्द, लौकिक संस्कृत भाषा और हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में 'वेद' से आया है। वेद के प्रमुख छह अंगों में से एक अंग 'निरुक्त' के अनुसार 'काल' शब्द गत्यर्थक 'कल' धातु से बना है। यास्क मुनि ने इस शब्द की व्युत्पत्ति दी है -

काल: कालयतेर्गति इति कर्म्मण:।[30]

- अर्थात् यह समस्त पदार्थों को 'गति' प्रदान करता है और उन्हें 'कालयति' (नष्ट भी करता है) 'स एव सर्वाण्येव भूतानि कालयति क्षयं नयति-इति अर्थ:'।

लेकिन 'वैदिक-इण्डैक्स [31]' के सम्पादक आर्थर एनथौनी मैकडोनेल और आर्थर बैरीडेल कीथ - 'काल' शब्द को मात्र 'काल-वाचक' मानते हैं।

- प्रतीत होता है इन महानुभावों ने 'वेद' के 'कान' माने जाने वाले अंग 'निरुक्त' के पत्रों को पलटने का कष्ट नहीं उठाया अन्यथा 'काल' को केवल 'Time' तक सीमित करके न रह जाते।

वैदिक-वाङ्मय के 'पारगामी-अध्येता' महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'काल'

की जो व्युत्पत्ति दी है, वह 'निरुक्त' से काफी मिलती जुलती है –

कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः।

– अर्थात् जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की 'संख्या' करता है, परमेश्वर का वह रूप 'काल' कहलाता है।

यहाँ 'कलयति' और 'कालयति' दो धातुओं का प्रयोग हुआ है। कलयति का अर्थ 'संख्या' करना (नाम देना, ख्याति देना एवं पदार्थ का क्रम या स्थान निश्चित् करना) होता है। तथा 'कालयति' का अर्थ ले जाना, शासन करना तथा नष्ट करना है। अतः 'काल' शब्द के दो अर्थ निकलते हैं – पदार्थ का क्रम या संख्या बताने वाला, तथा उसे विनाश की ओर ले जाने वाला।

लेकिन ब्रह्माण्ड पुराण कुछ और ही अर्थ देता है। 'ललिता सहस्त्रनाम स्तोत्र' के श्लोक 96 की टीका में टीकाकार (भाष्यकार) भास्कर राय ने 'कालकण्ठी' शब्द का भाष्य करते हुए जो अर्थ दिया है, वह 'काल' को मधुरता का वाचक बतलाता है – 'कालः कण्ठो यस्यो श्वरस्य' अर्थात् जिस ईश्वर का कण्ठ मधुर हो। वायु पुराण में कहा गया है–

पश्यतां देवसंघानां पिशाचोरग रक्ष साम्।
धृतं कण्ठे विषं घोरं कालकण्ठः ततोऽस्म्यहम्॥

– देवगणों, पिशाचों, नागों और राक्षसों के देखते–देखते मैंने अपने कण्ठ में घोर विष काल कूट को धारण कर लिया, इस कारण मैं 'कालकण्ठ' कहलाया जाने लगा।

सुनते हैं कि 'विष' मीठा या मधुर होता है। संभव है इसी कारण 'काल' शब्द मधुर कण्ठ का वाचक बन गया हो। वैसे भास्कर राय काल शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी करते हैं–

– मधुरोऽस्फुटो ध्वनिः कलः। स एव कालः स्वार्थिकोऽण्। कालः कण्ठो यस्या इति वा। अंग गात्र कण्ठेभ्यो वा ङीप्। 'कल' पदादेव स्वार्थिकोऽण् वा। मञ्जुध्वनिरिति तदर्थः।

– तात्पर्य यह कि 'काल' शब्द 'विषपूर्ण–कण्ठ' एवं 'मधुर ध्वनि–कण्ठ' – दोनों का ही वाचक है।

महर्षि पाराशर ने विष्णु पुराण में 'काल' की जो व्युत्पत्ति दी है, वह काल के गत्यर्थक रूप से अधिक मेल खाती है। तदनुसार विष्णु के 'उपाधिरहित–परम स्वरूप' से 'प्रधान' और पुरुष– ये दो रूप हुए। ये दोनों रूप सृष्टि काल में परस्पर संयुक्त और प्रलय काल में वियुक्त होते हैं। यह संयोग–वियोग विष्णु के तीसरे रूप 'काल' के द्वारा सम्पन्न होता है। अतः इस रूपान्तरण का ही नाम 'काल' है :–

विष्णोः स्वरूपात् परतो हि ते द्वे, रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।
तस्यैव तेऽन्येन धृते–वियुक्ते, रूपान्तरं तद् द्विज कालसंज्ञम्॥ 24॥

महर्षि पाणिनि के 'धातुपाठ' में 'कल' धातु तीन स्थानों (भ्वादिगण, चुरादिगण और चुरादिगण) के 'अथादन्ताः' प्रकरण में आयी है। क्र. 529 पर 'कल शब्द संख्यानयोः' (शब्द और गणना, (कलते)), क्र. 1675 पर 'कलयति' (फेंकना) और क्र. 1936 पर 'कल गतौ संख्याने च' (कलयति रूप में) लिखी गई है। इन तीनों के रूप क्रमशः – कलते (शब्द करता, गणना करता)। कलयति (फेंकता है) तथा कलयति (ले जाना, नष्ट करना) सिद्ध होते हैं। अतः 'काल' शब्द उपर्युक्त तीनों अर्थों में ग्रहण किया जाता है। इसी धातु पाठ में क्र.1951 पर 'वेल' और 'काल' दो पृथक धातुएँ दी गई हैं। दोनों का अर्थ 'कालोपदेश' माना गया है। इनमें 'काल' एक पृथक् धातु बताकर उसका 'कालयति' रूप सिद्ध किया गया है; जिसका अर्थ 'नाश' की ओर ले जाना सिद्ध होता है।

अतः कहा जा सकता है कि 'कालः' एक ऐसा शब्द है, जिसका प्राचीन वाङ्मय में पदार्थों का रूपान्तरण करने, उनकी 'संख्या' निश्चित् करने, उन पर शासन करने तथा उनका विनाश करने के अर्थ में प्रयोग किया गया है। साथ ही 'काल' को परब्रह्म का एक अन्यतम् स्वरूप एवं मधुरता अथवा भयंकर विष का वाचक भी माना गया है।

अधिकांशतः 'काल' को समय का वाचक माना जाता रहा है। 'नाम लिंगानुशासन' के रचयिता अमरसिंह ने 'काल' को पुल्लिंग माना है और उसके तीन पर्यायवाची बतलाये हैं–

कालो दिष्टोऽव्यनेहाऽपिसमयोऽव्यथ पक्षतिः।

– टीकाकार महेश्वर ने उक्त पंक्ति की यह टीका की है –

कालः। कालो मृत्यौ महाकाले समये यम कृष्ण योरिति कोशान्तरे अन्यार्थेऽपि कालशब्दः। दिष्ट, अनेहा, समयः चत्वारि कालस्य। अनेहा सान्तः ऋदुशनेत्यनङ्॥

– अर्थात् 'काल' शब्द के चार रूप हैं– (1) कालः (2) दिष्टः (3) अनेहा (अनेहस्) और (4) समयः।

अधिकांश संस्कृत-शब्दकोश 'काल' शब्द को काल, मृत्यु, महाकाल, समय, यम तथा कृष्ण के अर्थ में प्रयोज्य मानते हैं।[33]

कालोत्पत्ति-सर्ग

'काल' अमूर्त्त है, अव्यक्त है, निराकार है, नित्य है, अस्पृश्य है और अनादि है। इस कारण यह कहना कि 'काल' की उत्पत्ति कब हुई, किसके द्वारा हुई, क्यों हुई और कैसे हुई – अत्यन्त कठिन और लगभग असम्भव-सी बात है। इन प्रश्नों का सही उत्तर बड़े-से-बड़ा विद्वान् और ज्ञानी भी नहीं दे सकता, किन्तु 'पुराणों' में इन प्रश्नों पर विचार किया गया है। विभिन्न पुराणों के प्रवक्ता ऋषि-मुनियों ने अपने तपोबल और योग बल के द्वारा जो निष्कर्ष निकाला, तदनुसार 'काल' परब्रह्म का ही एक स्वरूप है जो परब्रह्म की ही तरह 'अजन्मा' और 'अनादि' है। तथापि मात्र 'उपचार' के लिए ही सही, विष्णु पुराण के प्रवक्ता महर्षि पाराशर 'काल' को भगवान् विष्णु का ही एक रूप बतलाते हैं। अर्थात् भगवान् ही 'काल स्वरूप' हैं –

व्यक्तं विष्णुस्तथाऽव्यक्तं पुरुषः काल एव च।[34]

– भगवान् विष्णु ही व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और 'काल' हैं।

यहाँ यह दृष्टव्य है कि विष्णु-पुराण के विष्णु त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) के अन्तर्गत गिने जाने वाले 'जगत् पालक विष्णु' नहीं हैं, वरन् 'विष्णु रूपी परब्रह्म' हैं। पाराशर मुनि ने इन्हीं विष्णु को नमस्कार करके 'विष्णु-पुराण' का प्रवचन प्रारम्भ किया है –

अविकाराय शुद्धाय, नित्याय परमात्मने।
सदैक रूप रूपाय, विष्णवे सर्व जिष्णवे॥ 1॥

नमो हिरण्य गर्भाय, हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय, सर्गस्थित्यन्त कारिणे॥ 2॥[35]

– जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर रूप से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण हैं, तथा (अपने भक्तों को) संसार सागर से तारने वाले हैं, उन विकार रहित, शुद्ध, अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्वविजयी भगवान् वासुदेव संज्ञक विष्णु को नमस्कार है।

ऐसी स्थिति में 'काल' को भी अजन्मा और 'अनादि' मानना पड़ता है –

अनादिर्भगवान् कालोनाऽन्तोऽस्य द्विज विद्यते।'[36]

– अर्थात् ब्रह्म स्वरूप भगवान् काल अनादि तो हैं ही, उनका कभी अन्त भी नहीं होता।

फिर भी विष्णु पुराण कालोत्पत्ति के सन्दर्भ में निम्नलिखित विचार व्यक्त करता है –

दक्ष प्रजापति की दश पुत्रियाँ 'धर्म' को ब्याही गईं, जिनमें से 'मरुत्वती' नामक पुत्री ने आठ वसुओं– आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष, और प्रभास को उत्पन्न किया। इनमें से 'ध्रुव संज्ञक' जो वसु हैं, उनका पुत्र 'लोक संहारक काल' नाम से प्रसिद्ध हुआ–[37]

ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोक प्रकालनः।

यदि काल की उत्पत्ति 'ध्रुव' नामक वसु से मानते हैं तब तो उसके 'परब्रह्म स्वरूप' होने की बात असिद्ध हो जाती है। अर्थात् यदि काल अनादि-अजन्मा है तो उसका जन्म ध्रुव के द्वारा कैसे हुआ ? और यदि काल ध्रुव का पुत्र है तो फिर वह 'काल ब्रह्म' कैसे हुआ ?

इस द्विविधा को भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में समाप्त कर दिया है। उन्होंने अर्जुन को अपनी 'विभूतियों' के बारे में बतलाते हुए स्पष्ट कर दिया है

कि 'काल' के भी दो भेद हैं। उसका प्रथम भेद 'अक्षय-काल' तथा दूसरा भेद 'कलयतां कालः' है। [38]

अध्याय 10 के श्लोक-33 में कहा गया है-

'अहमेवाक्षयः कालो'-अर्थात् मैं ही अक्षय और अनादि ब्रह्मस्वरूप काल हूँ।

इसके पूर्ववर्त्ती तीसवें श्लोक में स्वयं को 'कालः कलयतामहम्' अर्थात् गणना करने वालों का समय रूपी काल हूँ - कहा है।

श्रीकृष्ण ने अपने आपको द्विरूपी-काल क्यों बताया है, इसका एक विशेष अभिप्राय है।

वस्तुतः 'काल' के तीन भेद हैं - (1) समय वाचक काल, (2) प्रकृति रूपी काल, (3) नित्य शाश्वत विज्ञानाघन परमात्मा।

- समय वाचक काल - कल्प, युग, वर्ष, अयन, मास, दिन, घड़ी और क्षण आदि 'कालावयवों' को व्यक्त करता है। यह काल का स्थूल स्वरूप है। यह 'गणना करने वालों' का 'काल' है।

- प्रकृति रूपी काल - प्रकृति की 'साम्यावस्था' तक रहने वाला 'सूक्ष्मकाल' है। यह तब तक रहता है, जब तक 'ब्रह्मा की रात्रि' या महाप्रलय की स्थिति रहती है। इसे 'पर' या 'सूक्ष्म' काल भी कहते हैं।

- वस्तुतः परमात्मा देश-काल से सर्वथा रहित है, परन्तु जहाँ प्रकृति और उसके कार्य रूप संसार का वर्णन किया जाता है, वहाँ सबको सत्ता-स्फूर्ति देने वाले होने के कारण उन सबके 'अधिष्ठान' रूप 'विज्ञानानन्द घन' परमात्मा ही वास्तविक 'काल' माने जाते हैं। इसी कारण वे 'अक्षय काल' हैं। [39]

'अक्षय काल रूपी परब्रह्म' जब अनादि और अजन्मा, अक्षय तथा नित्य है, तब तो उसकी उत्पत्ति और अन्त तथा परिवार तथा वंश परम्परा का सवाल ही नहीं उठता। हाँ, जो 'काल' प्रकृति के स्थूल व सूक्ष्म रूप से सम्बन्ध रखता है, उसके बारे में अवश्य ऋषियों ने बतलाया है कि उसके माता, पिता, पत्नियाँ तथा सन्तान

कौन-कौन हैं।

लगभग सभी पुराण 'काल' को 'ध्रुव' नामक वसु का पुत्र बतलाते हैं।

महानिर्वाण-तंत्र के अनुसार 'काली' ही काल की माता है-

अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः।
गुण क्रियानुसारेण, क्रियते रूप कल्पना॥ [40]
कालिका कालमाता च कालानल समद्युतिः।
कपर्दिनी करालास्था करुणामृत सागरा॥ [41]

इन श्लोकों में 'कालमातुर्महाद्युतेः' और 'कालिका-कालमाताच' से प्रमाणित होता है कि भगवती काली ही 'काल' की माता हैं।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि यदि काली ही 'काल' की माता हैं तो 'ध्रुव' उसका पिता कैसे हुआ, भगवान् शिव काल के पिता क्यों न हुए ?

वस्तुतः 'ध्रुव' शिव का ही एक नाम है। 'वसु' भी शिव का नाम है। 'काली' शिव की ही अर्द्धांगिनी तथा शिवशक्ति हैं। इसी प्रकार शिव स्वयं 'महाकाल' हैं। अतः पूर्वोक्त प्रश्न का स्वयमेव समाधान हो जाता है। [42]

श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण के अनुसार 'काल' का जन्म 'हिरण्य गर्भ' की उत्पत्ति के समय 'माया' से हुआ था। पूर्व काल में जब समग्र सृष्टि परब्रह्म में लीन हो गई थी, और ईश्वर ने 'महार्णव' में शयन किया था, तदुपरान्त जब पुनः सृष्टि का प्रारम्भ हुआ था, तब सबसे प्रथम परमेश्वर ने 'काल' को उत्पन्न किया था। इसके बाद विशाल फण और शरीर से युक्त जल में शयन करने वाले 'अनन्त' (शेष) नाग को माया द्वारा प्रकट किया था। [43]

जब विष्णु (परमेश्वर) की नाभि से 'पद्म' प्रकट हुआ तो 'काल' भी उसी समय उत्पन्न हुआ। काल उत्पन्न हो गया तो विष्णु ने उसे प्रजा की सृष्टि रचने का सारा कार्य-भार सौंप दिया। काल ने परमेश्वर से प्रार्थना की कि वे उसे 'तेज' (ज्ञान और क्रिया शक्ति) प्रदान करें तथा सम्पूर्ण भूतों (प्राणियों) में व्याप्त रहकर उनकी (विष्णु रूप में) रक्षा करें। [44]

'अध्यात्म रामायण' के माध्यम से महर्षि वेदव्यास ने भी 'काल' की उत्पत्ति इसी से मिलती-जुलती बतलायी है। तदनुसार-

'काल' तापस वेश धारण करके भगवान् श्रीराम से मिलने आया। उसने अपना परिचय देते हुए श्रीराम से कहा- 'मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मेरा जन्म आपके और माया के 'संगम' से हुआ था। मेरा नाम 'काल' है। मैं 'सर्वहर' (सबका नाश करने वाले) के रूप में प्रसिद्ध हूँ। पूर्वकाल में आपने अपनी भार्या माया के संयोग से मुझे तथा शेष नाग को जन्म दिया था। तदुपरान्त जब मधु कैटभ की 'मेद' से 'मेदिनी' (पृथिवी) बन गई तब आपने मुझे अपने नाभि कमल से पैदा किया और मुझे प्रजापति (ब्रह्मा) बनाकर जगत् की सृष्टि का भार सौंपा।' [45]

महर्षि वाल्मीकि और महर्षि कृष्ण द्वैपायन - दोनों ही अपने-अपने द्वापर युग के 'वेदव्यास' रहे हैं। दोनों ने ही क्रमशः चौबीसवें तथा अट्ठाइसवें द्वापर में वेदों का व्यास किया था। अतः काल की उत्पत्ति और उसके त्रिगुणात्मक स्वरूपों के सम्बन्ध में इन दोनों महर्षियों के 'मत' को चैलेंज़ नहीं किया जा सकता। तदनुसार 'काल' परब्रह्म का त्रिगुणात्मक स्वरूप है जो रजोगुण के कारण 'ब्रह्मा', सतो गुण के कारण 'विष्णु' तथा तमोगुण के कारण 'रुद्र' रूप में प्रकट होकर क्रमशः उत्पत्ति, पालन तथा संहार करता है।

निष्कर्ष यह है कि भले ही काल की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से बतलायी गई हो, यह निश्चित है कि 'काल' परब्रह्म का ही एक रूप है जो औपचारिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतीत होता है।

काल - महिमा

परः पराणां परमः परमात्मात्म संस्थितः।
रूप वर्णादि निर्देश विशेषण विवर्जितः॥ 1॥ [46]

- जो 'पर' (प्रकृति) से भी पर, परमश्रेष्ठ, अन्तरात्मा में स्थित 'परमात्मा', रूप, वर्ण, नाम और विशेषण आदि से रहित है;

अपक्षय-विनाशाभ्यां परिणामर्धि जन्मभिः।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम्॥ 2॥

- जिसमें जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय और नाश इन विकारों का अभाव है; जिसको सर्वदा केवल 'है' (अस्ति) इतना ही कहा जा सकता है;

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते॥ 3॥

- तथा जिसके लिए यह प्रसिद्ध है कि वह सर्वत्र है और उसमें समस्त विश्व बसा हुआ है- इसीलिए विद्वज्जन जिसे 'वासुदेव' कहते हैं;

तद् ब्रह्म परमं नित्यभजमक्षयमव्ययम्।
एक स्वरूपं तु सदा हेयाभावाच्च निर्मलम्॥ 4॥

- वही ब्रह्म नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय तथा एक रूप होने और हेय गुणों के अभाव के कारण निर्मल परब्रह्म है।

तदेव सर्वमेवैतद् व्यक्ता व्यक्त स्वरूपवत्।
तथा पुरुष रूपेण काल रूपेण च स्थितम्॥ 5॥

- वही (परब्रह्म) इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत् के रूप से, तथा (इसके साक्षी) पुरुष और (महाकारण) 'काल' रूप से स्थित है।

परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम्॥ 6॥

- 'परब्रह्म' का प्रथम रूप 'पुरुष' है। अव्यक्त (प्रकृति) और व्यक्त (महद् आदि) उसके अन्य रूप हैं तथा सबको क्षोभित करने वाला होने के कारण 'काल' उसका 'परम रूप' है।

प्रधान पुरुष व्यक्त कालानां परमं हि यत्।
पश्यन्ति सूरयः शुद्धं तद् विष्णोः परमं पदम्॥ 7॥

- जो प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल - इन चारों से भी परे है, जिसे पण्डितजन ही देख पाते हैं, वह भगवान् विष्णु का विशुद्ध 'परम पद' है।

प्रधान पुरुष व्यक्त कालास्तु प्रविभागशः।
रूपाणि स्थिति सर्गान्त व्यक्ति सद्भाव हेतवः॥ 8॥

– प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल – ये चारों भगवान् विष्णु के रूप पृथक्-पृथक् संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में कारण है।

व्यक्तं विष्णुस्तथा व्यक्तं पुरुषः काल एव च॥ 9॥

– भगवान् विष्णु ही व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष तथा काल रूप है।

अव्यक्तं कारणं यत् तत् प्रधानमृषिसत्तमैः।
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥ 10॥

– जो 'अव्यक्त कारण' है, उसे श्रेष्ठ ऋषिगण सद् असद् रूप (कारण शक्ति विशिष्ट) तथा नित्य (सदा एक रस) बतलाते हुए 'प्रधान' तथा सूक्ष्म-प्रकृति कहते हैं।

अक्षय्यं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवम्।
शब्द स्पर्श विहीनं तद् रूपादिभिर संहितम्॥ 11॥

– वह क्षय रहित है। उसका कोई अन्य आधार भी नहीं है। वह अप्रमेय, अजर, निश्चल, शब्दस्पर्श शून्य तथा रूपादि रहित है।

त्रिगुणं तद् जगद्योनिरनादि प्रभवाप्ययम्।
तेनाग्रे सर्वमेवासीद् व्याप्तं वै प्रलयादनु॥ 12॥

– वह त्रिगुणमय, जगत् का कारण, स्वयं अनादि, उत्पत्ति और लय से रहित है। यह सम्पूर्ण प्रपंच प्रलयकाल से लेकर सृष्टि के आदि तक, उसी (प्रकृति) से व्याप्त था।

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिः नासीत्तमो ज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादि बुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्॥ 13॥

– उस प्रलय काल में न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था, और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस,

श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदि का 'अविषय' एक प्रधान-पुरुष मात्र 'ब्रह्म' ही था।

गुण साम्ये ततस्तस्मिन् पृथक् पुंसि व्यवस्थिते।
कालस्वरूपं तद् विष्णोः मैत्रेय परिवर्त्तते॥ 14॥

– प्रलय काल में प्रधान (प्रकृति) के 'साम्यावस्था' में स्थित हो जाने पर और पुरुष के प्रकृति से पृथक् स्थित हो जाने पर विष्णु का 'काल रूप' इन दोनों को धारण करने के लिए प्रवृत्त होता है।

ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः।
सर्वगः सर्वभूते शः सर्वात्मा परमेश्वरः॥ 15॥

प्रधान पुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
क्षोभया मास संप्राप्ते सर्ग काले व्ययाव्ययौ॥ 16॥

– तदनन्तर सर्गकाल उपस्थित होने पर उन परब्रह्म परमात्मा विश्वरूप सर्वव्यापी सर्वभूतेश्वर सर्वात्मा परमेश्वर ने अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी पुरुष में प्रविष्ट होकर उनको क्षोभित किया।

अनादिर्भगवान् कालो नान्तोऽस्यद्विज विद्यते।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्त संयमाः॥ 17॥

– भगवान् काल अनादि है। इनका अन्त नहीं है। इसलिए संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी निरन्तर होते रहते हैं। कभी रुकते नहीं हैं।

कालेन न बिना ब्रह्मा सृष्टि निष्पादको द्विज।
न प्रजापतयः सर्वे न चैवाखिल जन्तवः॥ 18॥

– काल के बिना ब्रह्मा प्रजापति एवं अन्य समस्त प्राणी भी सृष्टि रचना नहीं कर सकते। अतः भगवान् काल ही सर्वदा सृष्टि के कारण हैं।

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि।
यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तन्न वेदेह कश्चन॥ 26॥

– काल समस्त भूतों को अपने से अपने में पचाता है। परन्तु काल जिसमें पकाया जाता है, उसे यहाँ कोई नहीं जानता।

न तदूर्ध्वं न तिर्यक्च नाधो न च पुनः पुनः।
न मध्ये प्रतिगृहणीते नैव किंचिन्न कश्चन॥ 27॥

– उसके ऊपर, नीचे, तिरछे तथा मध्य में कोई कुछ ग्रहण नहीं कर सकता।

सर्वे तत्स्था इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन।
यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः॥ 28॥

– ये समस्त लोक उसी में वास करते हैं। उससे बाहर कुछ भी नहीं है। यह उसी भाँति आगे जाया करता है, जैसे धनुष की डोरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है।

नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः।
तस्मात् सूक्ष्म तरं नास्ति नास्ति स्थूलतरं तथा॥ 29॥

– यद्यपि इसका वेग मन के समान होता है, तो भी यह कारण के अन्त तक प्राप्त नहीं हो पाता है। क्योंकि इससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म या स्थूल नहीं है।

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वभावृत्य तिष्ठति॥ 30॥

– इसके सब ओर हाथ-पैर, आँख, सिर तथा मुख-कान हैं। वह सभी को आवृत्त करके स्थिति है।

तदेवाणोरणुतरं तन्महद्भ्यो महत्तरम्।
तन्दतः सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते॥ 31॥

– वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, और महान् से भी महान् है। वह समस्त भूतों के भीतर स्थित होते हुए भी, किसी को दिखायी नहीं देता।

कालो बलीयान् बलिनां, भगवानीश्वरोऽव्ययः।
प्रजा कालयते क्रीडन्, पशुपालो यथा पशून॥ 19॥[48]

– 'काल' समस्त बलवानों से बली है। वह परम समर्थ, अविनाशी और भगवत् स्वरूप है। एक पशुपालक जैसे अपने पशुओं पर नियन्त्रण रखता है, ठीक वैसे ही काल भी अपनी प्रजा को खेल-खेल में नचाता रहता है (अपने अधीन रखता है)।

काल एष सर्वनिराकृतिः॥ 4॥[49]

– काल सभी को निराकृति (विनष्ट) कर देता है।

कालः परः प्रभुः॥ 6॥ [50]

–काल परम समर्थ है।

काल-कर्म गुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः॥ 45॥[51]

– पंचभूतों से निर्मित यह शरीर काल, कर्म और गुणों के अधीन है।

कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम्॥ 48॥ [52]

– भगवान् 'देवद्रोहियों' का नाश करने के लिए काल रूप में अवतरित होते हैं।

ततः कालाग्नि-रुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः।
संनियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः॥ 43॥[53]

– वे ही परमात्मा 'प्रलय काल' आने पर अपने द्वारा बनाये इस विश्व को कालाग्नि रूप धारण करके ऐसे निगल लेते हैं जैसे वायु मेघमाला को अपने में लीन कर लेता है।

कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं।
स्रोतो यथान्तः पतितं गभीरम्॥ 43॥[54]

– जैसे गहरा स्रोत अपने भीतर पड़े हुए तिनके को बहा ले जाता है, वैसे ही काल रूप परमेश्वर संसार का धारा प्रवाह संचालन करते रहते हैं।

मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिव ऋतध्वजः।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः॥ 12॥[55]

– 'काल' ग्यारह रुद्रों – (मन्युः, मनुः, महिनसः, महान्, शिवः, ऋतध्वजः, उग्रेरेता, भवः, कालः, वामदेवः और धृतव्रतः) में से एक है।

कालस्येश्वर रूपस्य परेषां च परस्य ते।
स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्भेतोः कुशलं जनाः॥ 4॥ [56]

काल के भय से लोग शुभ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। वह सर्वसमर्थ काल ब्रह्मादि पर भी शासन करता है।

एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः।
परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्मविचेष्टितम्॥ 36॥

रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते।
भूतानां महदादीनां यतो भिन्न दृशां भयम्॥ 37॥

योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्याखिलाश्रयः।
स विष्ण्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः॥ 38॥ [57]

– भगवान्, परमात्मा, परब्रह्म का अद्भुत प्रभाव सम्पन्न तथा जागतिक पदार्थों के नानाविध वैचित्र्य का हेतु भूत स्वरूप विशेष ही 'काल' नाम से विख्यात है। प्रकृति और पुरुष इसी के रूप हैं, तथा इनसे यह पृथक भी है। नाना प्रकार के कर्मों का मूल अदृष्ट भी यही है। तथा इसी महत्तत्वादि के अभिमानी भेददर्शी प्राणियों को सदा भय लगा रहता है।

जो सबका आश्रय होने के कारण, समस्त प्राणियों में अनुप्रविष्ट होकर भूतों द्वारा ही उनका संहार करता है, वह जगत् का शासन करने वाले ब्रह्मादि का भी प्रभु 'भगवान् काल' ही यज्ञों का फल देने वाला विष्णु है।

न चास्य कश्चिद्दयितो, न द्वेष्यो न च बान्धवः।
आविशत्य प्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्त कृत्॥ 39॥

यद्भयाद् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्।
यद्भयाद् वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात्॥ 40॥

यद् वनस्पतयो भीता लताश्चौषाधिभिः सह।
स्वे स्वे कालेऽभि गृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च॥ 41॥

स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः।
अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात्॥ 42॥ [58]

– इसका (काल का) न तो कोई 'प्रिय' है, न किसी से इसे 'द्वेष' है और न कोई इसका 'बान्धव' ही है। यह सर्वदा 'सजग' रहता है और अपने स्वरूपभूत भगवान् को भूलकर भोगरूपी प्रमाद में पड़े हुए प्राणियों पर आक्रमण करके उनका संहार करता है।

इसी के भय से वायु चलता है, इसी के भय से सूर्य तपता है, इसी के भय से इन्द्र वर्षा करता है और इसी के भय से तारे चमकते हैं।

इसी के भय से भयभीत होकर लताएँ, औषधियाँ और सारी वनस्पतियाँ समय-समय पर फूल और फल धारण करती हैं।

इसी के डर से नदियाँ बहती हैं और समुद्र अपनी मर्यादा से बाहर नहीं जाता। इसी के भय से अग्नि प्रज्ज्वलित होती है और पर्वतों के सहित पृथ्वी जल में नहीं डूबती।

नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः।
लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिरावृतम्॥ 43॥

गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात्।
वर्तन्तेऽनु युगं येषां वश एतच्चराचरम्॥ 44॥

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादि कृतव्ययः।
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम्॥ 45॥

– इसी (काल) के शासन से यह आकाश, जीवित-प्राणियों को श्वास-प्रश्वास के लिए अवकाश देता है और 'महत्तत्त्व-अहंकार' रूप शरीर का सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड के रूप में विस्तार करता है।

इस काल के ही भय से, सत्त्वादि गुणों के नियामक विष्णु आदि देवगण

(जिनके अधीन यह सारा 'चराचर जगत्' है) अपने जगत् रचना आदि कार्यों में 'युगक्रम' से तत्पर रहते हैं।

यह अविनाशी काल (स्वयं तो अनादि है-किन्तु) दूसरों का आदिकर्त्ता (उत्पादक) है तथा स्वयं अनन्त होकर भी दूसरों का अन्त करने वाला है। यह पिता से पुत्र की उत्पत्ति कराता हुआ सारे जगत् की रचना करता है और अपनी संहारक-शक्ति 'मृत्यु' के द्वारा यमराज को भी मरवाकर उसका अन्त कर देता है।

काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयो: ॥ 3 ॥

- एकमात्र काल ही समस्त जीवों की उत्पत्ति और विनाश का कारण है।

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च।
वासुदेवात्परो ब्रह्मन् न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वत: ॥ 14 ॥[60]

- द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव, वास्तव में भगवान् से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है।

वीर्याणि तस्याखिल देहभाजा मन्तर्बहि: पूरुष काल रूपै:।
प्रयच्छ तो मृत्युमुतामृतं च माया मनुष्यस्य वदस्व ब्रह्मन् ॥ 7 ॥

- भगवान् समस्त शरीर धारियों के भीतर आत्मा रूप से रहकर 'अमृतत्व' का दान करते हैं, और बाहर 'कालरूप' से रहकर मृत्यु का।

स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वर: -
स्वकाल शक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि ॥ 22 ॥[61]

- भगवान् अपनी 'काल शक्ति' के द्वारा पृथ्वी का भार हरण करते हैं।

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम्।
अनादिनिधन: कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ 8 ॥[62]

- जब पंचभूतों के प्रलय का समय आता है तब अनादि और अनन्त काल, स्थूल तथा सूक्ष्म द्रव्य एवं गुण रूप इस समस्त व्यक्त सृष्टि को अव्यक्त की ओर, उसके मूल कारण की ओर खींचता है।

कालात्मना ह्रतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ 46 ॥

- काल रूपी ईश्वर (प्रलय के समय) आकाश के 'शब्द' गुण को हरण करके (तामस) अहंकार में लीन कर देता है।

अस्यासि हेतु रुदयास्थिति संयमाना-
मव्यक्त जीव महतामपि काल माहु: ॥

सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्त: -
कालो गभीरय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ 15 ॥[63]

- भगवान् इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के परम कारण हैं, क्योंकि शास्त्रों ने ऐसा कहा है कि भगवान्- प्रकृति, पुरुष और महत्तत्व के भी नियन्त्रण करने वाले काल हैं। शीत, ग्रीष्म और वर्षा काल रूप तीन नाभियों वाले संवत्सर के रूप में सबको 'क्षय' की ओर ले जाने वाले काल भगवान् ही हैं। भगवान् की गति अबाध और गंभीर है।

नित्यदा ह्यङ्गभूतानि भवन्ति न भवन्ति च।
कालेना लक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ 42 ॥[64]

- काल की गति सूक्ष्म है। उसे साधारणत: देखा नहीं जा सकता। उसके द्वारा प्रतिक्षण ही शरीरों की उत्पत्ति और नाश होते रहते हैं। सूक्ष्म होने के कारण ही प्रतिक्षण होने वाले जन्म-मरण नहीं दीख पड़ते।

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत्।
गुण-प्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ 15 ॥[65]

- यह सारा जगत् कर्म और उनके संस्कारों से युक्त है। भगवान् ही 'कालरूप' से कर्मों के अनुसार उनके फल का विधान करते हैं।

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधार: पुरुष: पर:।
सतोऽभिव्यञ्जक: कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ॥ 19 ॥[66]

- इस प्रपंच का उपादान कारण प्रकृति है। परमात्मा अधिष्ठान है और

इसको प्रकट करने वाला 'काल' है। व्यवहार काल की यह त्रिविधता वस्तुत: ब्रह्मस्वरूप है।

स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तम:।
तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत् काले लीयतेऽव्यये॥ 26॥[67]

एवं ब्रह्मा च भूतानि, वासुदेवोऽपि शंकर:।
कालेनैव तु सृज्यन्ते, स एव ग्रसते पुन:॥ 53॥

– इस प्रकार ब्रह्मा, जीव, वासुदेव तथा शंकर की सर्जना 'काल' के द्वारा ही होती है। पुन: वही काल इनका संहार भी करता है।

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमर:।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मासौ महेश्वर:॥ 20॥

– यह काल भगवान् है, अनन्त है, अजर है, अमर है एवं अनादि है। सर्वव्यापी होने से, स्वतन्त्र होने से तथा सबका आत्मस्वरूप होने से यह 'महेश्वर' कहलाता है।

ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादय:।
एको हि भगवानीश: काल: कविरिति श्रुति:॥ 21॥

– ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि बहुत होते हैं, किन्तु भगवान् एक ही है, जो ईश, काल तथा कवि कहलाता है– ऐसा वेद का अभिमत है।

सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा।
कालो भूत्वा महादेव: केवलो निष्कल: शिव:॥ 60॥[69]

– वे ही केवल निष्कल, महादेव शिव काल बनकर सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार करते हैं।

प्रोच्यते भगवान् कालो हरि: प्राणो महेश्वर:॥ 30॥[70]

– भगवान् काल हरि, प्राण तथा महेश्वर कहे जाते हैं।

मायावी सर्वशक्तीश: काल: कालकर: प्रभु॥ 38॥[71]

– सभी शक्तियों के स्वामी मायावी प्रभु स्वयं काल हैं। वे 'काल' को उत्पन्न भी करते हैं।

कालेन योजितं सर्वं कर्म भोग निबन्धनम्।
शुभं हर्ष सुखं दु:खं भयं शोकममंगलम्॥ 55॥

– कर्म भोग का सारा निबन्ध काल के सूत्र में बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दु:ख, भय, शोक और अमंगल– सभी काल के अधीन हैं।

काले भवन्ति वृक्षाश्च शाखावन्तश्च कालत:।
क्रमेण पुष्पवन्तश्च, फलवन्तश्च कालत:॥ 56॥

– काल के द्वारा वृक्ष उत्पन्न होते हैं, काल के द्वारा ही उनमें शाखाएँ उत्पन्न होती हैं, काल क्रम से वे फूलते और फलते हैं।

तेषां फलानि पक्वानि प्रभवन्त्येव कालत:।
ते सर्वे फलिन: काले, काले कालं प्रयान्ति च॥ 57॥

– काल ही उन फलों को पकाता है। बाद में काल के प्रभाव से फल-फूलकर वह सम्पूर्ण वृक्ष काल कवलित हो जाता है।

भवन्ति काले भूतानि, काले कालं प्रपान्ति च।
काले भवन्ति विश्वानि, काले नश्यन्ति सुन्दरि॥ 58॥

– हे सुन्दरि! उसी प्रकार समस्त प्राणी काल द्वारा उत्पन्न होते हैं और काल द्वारा ही विनष्ट भी होते हैं।

स्रष्टा काले च सृजति, पाता पाति च कालत:।
संहर्त्ता संहरेत् काले, संचरन्ति क्रमेण ते॥ 59॥

– काल की महिमा स्वीकार करके ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन में तत्पर रहते हैं और रुद्र का संहार कार्य भी काल के संकेत पर ही निर्भर है। सभी क्रमश: कालानुसार अपने व्यापार (कर्म) में नियुक्त होते हैं।

ब्रह्मा विष्णु शिवादीनां ईश्वर: प्रकृते: पर:।
स्रष्टा, पाता, च संहर्त्ता, स कृत्स्नांशेन सर्वदा॥ 60॥

– ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि का परमेश्वर (काल रूपी ब्रह्म श्रीकृष्ण) प्रकृति से परे है एवं अपने सम्पूर्ण अंश से विश्व का स्रष्टा, पालक और संहारक है।

काले स एव प्रकृतिं निर्माय स्वेच्छया प्रभुः।
निर्माय प्राकृतान् सर्वान् विश्वस्थांश्च चराचरान्॥ 61॥

– वह प्रभु ही समयानुसार स्वेच्छा से प्रकृति का निर्माण करके, उसके द्वारा सम्पूर्ण चराचर विश्व की सृष्टि करता है।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च।
प्रवदन्ति च कालेन, नश्यत्यपि हि नश्वरम्॥ 62॥

– इसलिए यहाँ (पृथ्वी) से ब्रह्मलोक तक सभी कृत्रिम कहलाते हैं और वे नश्वर पदार्थ समय पर नष्ट भी होते हैं।

काल का आधिदैविक – स्वरूप

'काल' अमूर्त्त तथा निराकार है। किन्तु प्राचीन ऋषि-मुनियों ने काल के आधिदैविक स्वरूप की कल्पना की है। 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' में गन्धर्वराज उपबर्हण तथा उसकी रानी मालावती की कथा के प्रसंग में 'काल के आधिदैविक स्वरूप' का जो वर्णन किया गया है, वह इस प्रकार है –

– सती मालावती ने जब काल को अपने सामने देखा तो उसे काल 'नारायण का अंश' प्रतीत हुआ। उसका रूप अत्यन्त उग्र, विकट तथा ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान प्रभायुक्त था :–

कालं नारायणांशं च ददर्श पुरतः सती।
महोग्र रूपं विकटं ग्रीष्म सूर्य सम प्रभम्॥ 23॥[72]

– उसके छह मुख, सोलह भुजाएँ, चौबीस नेत्र, छह चरण थे। उसके शरीर का रंग काला था। वह लाल रंग के वस्त्र धारण किये हुए था :–

षड्वक्त्रं षोडश भुजं चतुर्विंशति लोचनम्।
षट्पादं कृष्णवर्णं च रक्ताम्बरधरं परम्॥ 24॥

– वह देवताओं का भी देवता, विकराल आकृति वाला, सर्वसंहार रूपी, काल का 'अधिदेवता', सर्वेश्वर एवं सनातन भगवत्स्वरूप था :–

देवस्य देवं विकृतं सर्वसंहार रूपिणम्।
कालाधि देवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम्॥ 25॥

– उसके मुख पर हलकी सी मुस्कान थी, उसका चेहरा प्रसन्न दिखायी दे रहा था। वह अपने हाथ में 'अक्षमाला' लिये हुए (उसके द्वारा) परब्रह्म-कृष्णात्मा ईश्वर का जप कर रहा था :–

ईषद् हास्य प्रसन्नास्यमक्षमाला करं वरम्।
जपतं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्॥ 26॥

काल का महेश्वर स्वरूप

॥ ऋषय ऊचुः ॥
क एष भगवान् कालः, सर्वभूतापहारकः।
कस्य योनिः किमादिश्च, किं तत्त्वं स किमात्मजः॥ 22॥[73]

– ऋषिगण बोले –सब जीवों का हरण करने वाले ये भगवान् काल कौन हैं ? किसके पुत्र और किसके पिता हैं ? इनका तत्त्व क्या है ?

किमस्य चक्षुः का मूर्तिः के चास्यावयवाः स्मृताः।
किन्नामधेयः कोऽस्यात्मा एतद्प्रब्रूहि पृच्छताम्॥ 23॥

– इनके चक्षु, मूर्ति और अवयव क्या हैं ? इनका नाम क्या है ? इनका आत्मा कौन है ? यह सब हम आपसे पूछे रहे हैं, बतलाइये।

॥ सूत उवाच ॥
श्रूयतां काल सद्भावः श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
सूर्ययोनिर्निमेषादिः संख्या चक्षुः स उच्यते॥ 24॥

– सूत जी बोले– 'आप लोग काल के सम्बन्ध में विशेष ध्यानपूर्वक सुनिये

और सुनकर हृदय में रखिये। ये 'सूर्य योनिः' (सूर्य से उत्पन्न) निमेषादि (निमेष से शुरु होने वाले) और 'संख्या चक्षुः' कहलाते हैं।

मूर्त्तिरस्य त्वहोरात्रे, निमेषावयवश्च सः।
संवत्सरशतं त्वस्य नाम, चास्य कलात्मकम्॥
साम्प्रतानागतातीत कालात्मा स प्रजापतिः॥ 25॥

– इनकी मूर्ति 'अहोरात्र' (दिन रात) है। इनके अवयव 'निमेषादि' हैं। 'कलात्मक–संवत्सर शत' इनका नाम है। ये साम्प्रत (वर्तमान) अनागत (भविष्य) और अतीत (भूतकाल) काल–रूपी 'प्रजापति' हैं। अर्थात् प्रजापति इन्हीं को कहा जाता है।

पञ्चानां प्रविभक्तानां कालावस्थां निबोधत।
दिनार्धमास मासैस्तु, ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा॥ 26॥

– इनकी कालावस्था को जानिए। वह दिन, पक्ष, मास, ऋतु और अयन – इन पाँच विभागों द्वारा जानी जाती है।

संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु, चतुर्थश्चानुवत्सरः॥ 27॥

वत्सरः पञ्चमस्तेषां कालः स युग संज्ञितः।
तेषां तु तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत॥ 28॥

– पंच वर्षात्मक युग नामक काल क्रमशः– (1) सम्वत्सर (2) परिवत्सर (3) इद्वत्सर (4) अनुवत्सर तथा (5) वत्सर आदि नामों से जाना जाता है। अर्थात् इन पाँचों के समुच्चय को 'युग' कहते हैं। अब मैं इनके 'तत्त्व' को बता रहा हूँ। उस कीर्त्यमान को जानिये।

ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः।
आदित्येयस्त्व सौ सारः कालाग्निः परिवत्सरः॥ 29॥

– 'ऋतु' नामक जिस अग्नि के बारे में पहले बता चुका हूँ, वह 'सम्वत्सर' है। सूर्य से उत्पन्न कालाग्नि नामक तत्त्व (सार) 'परिवत्सर' है।

शुक्ल कृष्णा गतिश्चापि अपां सारमयः खगः।
स इदावत्सरः सोमः पुराणे निश्चयो मतः॥ 30॥

– आकाश में शुक्ल और कृष्ण गतियों से विचरण करने वाला, जलों का सार भूत 'सोम' 'इद्वत्सर' है – ऐसा पुराणज्ञों द्वारा निश्चित किया गया है।

यश्चायं तपते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः।
आशुकर्त्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः॥ 31॥

– उन्नचास शरीरों (रूपों) से लोकों को संतप्त और अनुप्राणित करने वाला 'वायु' (मरुत्) 'वत्सर' कहलाता है।

अहंकाराद्रुदत्रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणस्त्रयः।
स रुद्रो वत्सरस्तेषां विजज्ञे नील लोहितः॥
तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत॥ 32॥

– अहंकारवश रोदन करने वाले 'रुद्र' ब्रह्मा द्वारा तीन भागों में विभक्त हुए, वही नीललोहित रुद्र रुद्रों के वत्सर कहे गये हैं। उनके भी तत्त्व को मैं बताऊँगा, सुनिये।

अङ्ग प्रत्यङ्ग संयोगात् कालात्म प्रपितामहः ।
ऋक् सामयजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः॥ 33॥

– कालात्मा–प्रपितामह, अंग–प्रत्यंग के संयोग से ऋक् साम और यजुष् के उत्पत्ति स्थान एवं पाँचों कालों के स्वामी हैं।

सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः।
प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योनिर्मनीषिभिः॥ 34॥

– वे (पितामह) ही अग्नि, यजुः, सोम, जीवधारी और प्रजापति हैं तथा मनीषियों ने उन्हें ही (सूर्य को ही) अग्नि और सम्वत्सर कहा है।

यस्मात् काल विभागानां मासर्त्वयनयोरपि।
ग्रह नक्षत्र शीतोष्ण वर्षायुः कर्मणां तथा॥

– इन्हीं सूर्य से कालों का विभाग अर्थात् मास, ऋतु, अयन, ग्रह, नक्षत्र, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, आयु, कर्म तथा दिवसों का विभाग होता है।

योजित: प्रविभागानां दिवसानां च भास्कर:॥ 35॥

वैकारिक: प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्र: प्रजापति:।
एकेनैकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तु: पितामह:॥ 36॥

– विकारावस्था में यही ब्रह्मपुत्र, प्रसन्नात्मा प्रजापति एक-एक कर दिवस, मास और ऋतु के प्रवर्त्तक हैं और ये ही पितामह हैं।

आदित्य: सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृत:।
प्रभवश्चाव्ययश्चैव भूतानां तेन भास्कर:॥ 37॥

– ये ही आदित्य, सविता, भानु, जीवन और ब्रह्म सत्कृत कहे जाते हैं। भूतों के उत्पादक और अविनाशी होने के कारण, ये भास्कर हैं।

ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीय: परिवत्सर:।
सोम: सर्वौषधिपतिर्यस्मात् स प्रपितामह:॥ 38॥

– तृतीय परिवत्सर ताराभिमानी है, जो सोम और निखिल-औषधियों का पति है, इसलिए यह भी प्रपितामह है।

आजीव: सर्वभूतानां योगक्षेम कृदीश्वर:।
अवेक्षमाण: सततं बिभर्ति जगदंशुभि:॥ 39॥

– ये सभी जीवों के जीवन और योग-क्षेम करने वाले हैं। ये सदा जागरूक रहते हुए किरणों द्वारा जगत् का पोषण करते हैं।

तिथीनां पर्वसन्धीनां पूर्णिमादर्शयोरपि।
योनिर्निशाकरो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापति:॥ 40॥

– ये ही तिथियों, पर्वसन्धियों, पूर्णिमा और दर्श (अमावास्या) के जनक, निशाकर तथा अमृतात्मा प्रजापति हैं।

तस्मात् स पितृमान् सोम ऋग्यजुश्छंदसात्मक:।
प्राणापान समानानैव्यानोदानात्मकैरपि॥ 41॥

– इसीलिए ये सोम, पितृमान् एवं ऋक् यजुर्वेद के छन्द (मंत्र) स्वरूप हैं। ये प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानात्मक कर्म द्वारा लोक में निखिल प्राणियों की सम्पूर्ण चेष्टाओं के प्रवर्त्तक हैं।

कर्मभि: प्राणिनां लोके सर्वचेष्टा प्रवर्त्तक:।
प्राणापान समानानां वायूनां च प्रवर्त्तक:॥ 42॥

– ये ही संसार में (कर्म के द्वारा) प्राणियों की सारी चेष्टाओं के एवं प्राण, अपान और समान आदि वायुओं (प्राणों) के प्रवर्त्तक हैं।

पञ्चानां चेन्द्रियमनोबुद्धि स्मृति जलात्मनाम्।
समान कालकरण: क्रिया संपादयन्निव॥ 43॥

– इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जल, इन पाँचों के यथाकाल पोषणकर्त्ता और इनकी क्रियाओं के सम्पादक हैं।

सर्वात्मा सर्वलोकानामावह: प्रवहादिभि:।
विधाता सर्वभूतानां क्षमी नित्यं प्रभञ्जन:॥ 44॥

– ये नित्य-प्रभंजन-सर्वात्मा हैं। आवह, प्रवह, आदि के द्वारा सब लोकों के तथा सब भूतों के विधाता एवं पृथ्वी को धारण करने वाले हैं।

योनिरग्रेरपां भूमेरवेश्चन्द्रसमश्च य:।
वायु: प्रजापतिर्भूतं लोकात्मा प्रपितामह:॥ 45॥

– ये ही अग्नि, जल, भूमि, रवि, चन्द्र और सम के उत्पादक हैं। ये ही वायु, सभी जीवों के प्रजापति, लोकात्मा तथा प्रपितामह हैं।

प्रजापतिमुखैर्देवै: सम्यगिष्टफलार्थिभि:।
त्रिभिरेव कपालैस्तु अम्बकैरोषधिक्षये॥
इज्यते भगवान्यस्मात्तस्मात् त्र्यम्बक उच्यते॥ 46॥

– प्रजापति आदि देवगण अपने अभीष्ट फलों को पाने के लिए (औषधियों के क्षीण हो जाने पर) 'त्रिकपाल' और 'त्र्यम्बका' द्वारा भगवान् की पूजा करते हैं, इसलिये ये 'त्र्यम्बक' कहलाते हैं।

गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगती चैव या स्मृता।
त्र्यम्बका नामतः प्रोक्ता, योनयः सवनस्य ताः॥ 47॥

– गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती – 'त्र्यम्बका' नाम से ख्यात हैं। ये 'यज्ञयोनि' अथवा 'सवन' की उत्पादिका हैं।

ताभिरेकत्व भूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः।
त्रिसाधन पुरोडाशास्त्रिकपालः सवैस्मृतः॥ 48॥

– ये ही तीनों छन्द जब अपने पराक्रम से एकत्र हो जाते हैं, तब वे ही त्रिसाधन, पुरोडाश और त्रिकपाल कहे जाते हैं।

इत्येतत्पंचवर्षं हि युगं प्रोक्तं मनीषिभिः।
यच्चैव पञ्चधात्मा वै प्रोक्तः संवत्सरो द्विजैः॥
सैक षट्कं विजज्ञेऽथ मध्वादीनृतपः किल॥ 49॥

– मनीषियों ने इस प्रकार पाँच वर्षों का 'युग' कहा है। द्विजों ने जो इन पाँच प्रकार के सम्वत्सरों को बताया है, उनमें प्रत्येक वसन्त आदि छह ऋतुओं वाले हैं।

ऋतु पुत्रार्तवः पञ्च इति सर्गः समासतः।
इत्येष पवमानो वै प्राणिनां जीवितानि तु॥ 50॥

नदी वेग सभायुक्तं कालो धावति संहरन्।
अहोरात्र करस्तस्मात् स वायुरभवत् पुनः॥ 51॥

एते प्रजानां पतयः प्रधानाः सर्वदेहिनाम्।
पितरः सर्वलोकानां लोकात्मानः प्रकीर्त्तिताः॥ 52॥

– ऋतु पुत्र आर्तवगण पाँच प्रकार के हैं। संक्षेप में यही कथा है। यह वायु प्राणियों के जीवन को कालरूप से संहार करती हुई नदी के वेग की तरह बहने लगती है और उस समय से फिर वह वायु दिन-रात को करने वाली होती है। ये सभी प्रजापति सब देहधारियों में प्रधान, सब लोकों के पिता और लोकात्मा कहे गये हैं।

ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्राद् रुदन् समभवद् भवः।
ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः॥ 53॥

– ध्यान करते हुए ब्रह्मा के मुख से रोते हुए रुद्र उत्पन्न हुए। ये ही ऋषि, विप्र, महादेव, भूतात्मा और प्रपितामह हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणवायोपपद्यते।
आत्मवेशेन भूतानामङ्ग प्रत्यङ्ग संभवः॥ 54॥

– ये ही सभी के ईश्वर और प्रणव के लिए उत्पन्न हुए हैं। ये ही आत्मा रूप से जीवों के अंग-प्रत्यंग की उत्पत्ति के कारण हैं।

अग्निः संवत्सरः सूर्यश्चन्द्रमा वायुरेव च।
युगाभिमानी कालात्मा नित्यं संक्षेपकृद् विभुः॥
उन्मादकोऽनुग्रह कृत् स इद्वत्सर उच्यते॥ 55॥

– ये ही अग्नि, सम्वत्सर, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, युगाभिमानी, कालात्मा, नित्य संहार करने वाले विभु, उन्मादक और अनुग्रह करने वाले हैं। इन्हें ही 'इद्वत्सर' कहा जाता है।

रुद्राविष्टो भगवता जगत्यस्मिन् स्वतेजसा।
आश्रयाश्रय संयोगात् तनुभिर्नामभिस्तथा॥ 56॥

ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रह कारकम्।
द्वितीयं भद्र संयोगं शतं तस्यैक कारकम्॥ 57॥

देवत्वं च पितृत्वं च कालत्वं चास्य यत्परम्।
तस्माद् वै सर्वथा भद्रस्तद् वद्भिरभिपूज्यते॥ 58॥

पतिः पतीनां भगवान् प्रजेशानां प्रजापतिः।
भवनः सर्वभूतानां सर्वेषां नील लोहितः॥
औषधीः प्रतिसन्धत्ते रुद्रः क्षीणाः पुनः पुनः॥ 59॥

इत्येषां यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः।
बहुत्वात् परिसंख्यातु पुत्र पौत्र मनन्तकम्॥ 60॥

– क्रोधाविष्ट होकर ये ही भगवान् इस संसार में अपने तेज से आश्रय और

आश्रयसंयोग के कारण अपने नामों और शरीरों से वर्तमान रहते हैं। तब उन्हीं के पराक्रम से लोकों के अनुकूल कल्याणकारक दूसरी विस्तृत सृष्टि देवों, पितरों, काल तथा अन्यान्यों की हुई। इस कारण उन उत्पन्न लोकों द्वारा वे ही भद्ररूप महादेव पूजे जाते हैं।

ये नील लोहित भगवान् अधीश्वरों के अधीश्वर प्रजाधिपों के प्रजापति, सब जीवों के उत्पादक और क्षीण औषधियों के पुन:-पुन: उत्पादक हैं। इन सबके जो पुत्र हैं, वे प्रमाण में बहुत अधिक हैं। और इनके पुत्र-पौत्र भी अनन्त हैं। इसलिए उनकी गणना करना शक्ति से बाहर है।

युग रूपी महेश्वर पूज्य क्यों ?

॥ वायुरुवाच ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम्।
ओंकारमक्षरं ब्रह्म त्रिवर्णं चाऽऽदित: स्मृतम्॥ 1॥[74]

वायु बोले- इसके आगे अब मैं 'प्रणव' के सम्बन्ध में कहूँगा। ओंकार अक्षर ब्रह्म है। यह तीन वर्णों का है। यह सबके आदि में स्मरण किया जाता है।

यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तथा।
ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम्॥ 2॥

- जो-जो जिसके वर्ण तथा देवता कहे गये हैं, वे भी ओंकार से ही उत्पन्न हुए हैं। ऋक्, यजु: और साम, तथा वायु, अग्नि और जल भी, ओंकार से ही उत्पन्न हुए हैं।

तस्मात् तु अक्षरादेव, पुनरन्ये प्रजज्ञिरे।
चतुर्दश महात्मानो, देवानां ये तु देवता:॥ 3॥

तेषु सर्वगतश्चैव, सर्वग: सर्वयोगवित्।
अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते॥ 4॥

- उस अक्षर से फिर दूसरे भी उत्पन्न हुए। देवों के बीच जो चौदह महात्मा

देवता हैं, उनके भी मध्य जो सबको पाने वाले, सभी जगह जाने वाले और सब योगों को जानने वाले हैं, वे ही लोकों पर अनुग्रह करने के लिए ओंकार के आदि, मध्य और अन्त कहे जाते हैं।

सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभि: सह।
अक्षरान्नि:सृता: सर्वे देव देवान्महेश्वरात्॥ 5॥

इहामुत्र हितार्थाय वर्दान्त परभं परम्।

- सप्तर्षिगण तथा इन्द्र और पितरों के साथ सभी देवगण - इसी अक्षर स्वरूप देवाधिदेव महेश्वर से उत्पन्न हुए हैं। इस लोक तथा उस लोक (पर लोक) में कल्याण के लिए ओंकार को ही 'परम पद' कहा गया है।

पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युग संज्ञित:॥ 6॥

- मैंने पूर्व में ही बता दिया है कि 'काल' का दूसरा नाम 'युग' है। अर्थात् काल 'युग' है और युग ही 'काल' है।

कृतं त्रेता द्वापरं च युगादि: कलिना सह।
परिवर्तमानैस्तैरेव भ्रम माणेषु चक्रवत्॥ 7॥

देवतास्तु तथोद्विग्ना: कालस्य वशमागता:।
न शक्नुवन्ति तन्मानं संस्थापयितुमात्मना॥ 8॥

- कृत (सत्य युग) त्रेता, द्वापर और कलियुग के साथ युग आदि (अन्य काल विभाग) परिवर्तनशील है एवं चक्र की तरह घूमते रहते हैं। इनके कारण देवता गण काल के वशीभूत हो गये; व्यग्रता के कारण स्वयं काल की 'इयत्ता' (सीमा) के परिमाण को निर्धारित नहीं कर पाये।

तदा ते वाग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै।
ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपा:॥ 9॥

समाधाय मनस्तीव्रं सहस्रं परिवत्सरान्।
प्रपन्नास्ते महादेवं भीता: कालस्य वै तदा॥ 10॥

अयं हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः।
कोऽस्य विद्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर॥ 11॥

– तब आदि मन्वन्तर में वे ऋषि, देवगण और इन्द्र आदि मौनावलम्बन कर सहस्त्रों वर्षों तक अपने चंचल मन को एकाग्र करके कठिन तपस्या करने लगे। फिर भी वे काल से भयभीत रहे और अन्त में महादेव की शरण में जाकर पूछने लगे कि इस चार मुख वाले देवेश काल की अगाधता का पार कौन पा सकता है?

अथ दृष्ट्वा महादेवस्तं तु कालं चतुर्मुखम्।
ने भेतव्यमिति प्राह को वः कामः प्रदीयताम्॥ 12॥

– महादेव जी ने उस चतुर्मुख काल पर दृष्टिपात किया और ऋषि इन्द्र देवादि से कहा– डरो मत। बताओ मैं तुम लोगों की कौन-सी कामना पूर्ण करूँ ?

तत्करिष्याम्यहं सर्वं न वृथाऽयं परिश्रमः।
उवाच देवो भगवान् स्वयं कालः सुदुर्जयः॥ 13॥

– मैं आपके लिए सब कुछ करूँगा। आप लोग व्यर्थ में परिश्रम न कीजिए। स्वयं सुदुर्जय कालस्वरूप भगवान् महादेव बोले–

यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते।
एतत्कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम्॥
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुखः॥ 14॥

– यह जो चार जीभों वाला श्वेतमुख दिखायी दे रहा है, यह काल का 'कृत युग' नामक मुख है। इसी मुख को देवों में श्रेष्ठ ब्रह्मा तथा वैवस्वत जानना चाहिए।

यदेतद्रक्त वर्णाभं द्वितीयं वः स्मृतं मया।
त्रिजिह्वं लेलिहानं तु एतत्त्रेतायुगं द्विजाः॥ 15॥

अत्र यज्ञ प्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात्।
ततोऽत्र इज्यते यज्ञस्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्रयः॥
इष्ट्वा चैवाग्रयो विप्राः कालजिह्वा प्रवर्त्तते॥ 16॥

– द्विजगण! यह जो लाल रंग का, लपलपाती हुई तीन जिह्वाओं वाला दूसरा

मुख (मेरे द्वारा) कहा गया है, यह 'त्रेतायुग' है। इस युग में महादेव (महेश्वर) के द्वारा ही यज्ञ करने में लोगों की प्रवृत्ति होती है। इनसे ही यज्ञ का प्रारम्भ होता है। ये ही तीन जिह्वा वाले हैं, ये ही तीन अग्नि हैं। ये अग्नि ही काल की जिह्वायें हैं।

यदेतद्वै मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तापिंगलम्।
द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापरं नाम तद् युगम्॥ 17॥

– यह जो दो जिह्वा वाला, भयंकर, लाल और पिंगल वर्ण वाला मुख है, यह 'द्वापर' नामक युग है। इसमें मैं दो चरणों वाला हो जाऊँगा।

यदेतत् कृष्ण वर्णाभं तुरीयं रक्त लोचनम्।
एक जिह्वं पृथु श्यामं लेलिहानं पुनः पुनः॥ 18॥

ततः कलियुगं घोरं सर्वलोक भयंकरम्।
कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम्॥ 19॥

– यह जो चौथा, काले रंग का लाल नेत्रों वाला मुख है, जिसमें काले रंग की मोटी जिह्वा बार-बार लपलपा रही है – यह सम्पूर्ण लोकों को भयभीत करने वाला घोर 'कलियुग' है। इसे कल्पों का भीषण चौथा मुख जानो।

न सुखं नापि निर्वाणं तस्मिन् भवति वै युगे।
कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन् भविष्यति॥ 20॥

– इस कलियुग में न तो सुख है और न मुक्ति एवं प्रजाजन भी इस युग में काल से ग्रसित होकर रहेंगे।

ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
द्वापरे पूज्यते विष्णुरहं पूज्यः चतुर्ष्वपि॥ 21॥

– कृत युग में ब्रह्मा पूजे जाते हैं। त्रेतायुग में यज्ञ पूजित होता है। द्वापर युग में विष्णु और मैं (महेश्वर) चारों युगों में पूजित रहता हूँ।

ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलास्त्रयः।
सर्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः॥ 22॥

– ब्रह्मा, विष्णु और यज्ञ – ये काल की तीन कलायें (या अंश) हैं। किन्तु चतुर्मूर्त्ति वाले महेश्वर सभी कालों में हैं।

अहं जनो जनयिता वः कालः कालप्रवर्त्तकः।
युगकर्त्ता तथा चैव परं परपरायणः॥ 23॥

– मैं ही 'जन' हूँ। मैं ही आप लोगों का जनक हूँ। मैं ही 'काल' हूँ और मैं ही काल का प्रवर्त्तक भी हूँ। मैं ही 'युगकर्त्ता' और मैं ही 'परम' तथा 'पर परायण' (परमोच्च शक्ति) हूँ।

तस्मात् कलियुगं प्राप्य लोकानां हितकारणात्।
अभयार्थं च देवानामुभयो र्लोकयोरपि॥ 24॥
तदा भवश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः।
तस्माद् भयं न कार्यं च कलिं प्राप्य महौजसः॥ 25॥

– इसलिए कलियुग आ जाने पर लोकों के हित के लिए, और देवताओं को 'अभय' देने के लिए, मैं दोनों ही लोकों में पूज्य रहूँगा। हे महाबली देवगण! आप लोग इस कलियुग को देखकर भयभीत न हों।

॥ देवर्षय ऊचुः॥
महातेजा महाकायो महावीर्यो महाद्युतिः।
भीषणः सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः॥ 27॥

– देवता और ऋषिगण बोले– 'महातेजस्वी, महाशरीर वाला, महाबली और अतिशय दीप्ति वाला यह 'काल' चतुर्मुख कैसे हुआ ?'

॥ महादेव उवाच॥
एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः।
लोक संरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः॥ 28॥

– महादेव बोले– यह 'काल' चार मूर्ति वाला, चार दाढ़ों वाला और चार मुख वाला है। यह लोकों के संरक्षण के लिए सभी का अतिक्रमण करता है। अर्थात् किसी की अपेक्षा नहीं करता।

नासाध्यं विद्यते चास्य सर्वस्मिन् सचराचरे।
कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात्॥ 29॥

– इस चर और अचर संसार में इस 'काल' के लिए कुछ भी 'असाध्य' नहीं है। यह काल समस्त भूतों (प्राणियों) की सृष्टि करता है, फिर यही उन्हें एक-एक करके नष्ट कर डालता है।

सर्वे कालस्य वशणा न कालः कश्चिद् वशे।
तस्मात् तु सर्वभूतानि कालः कलयते सदा॥ 30॥

– सभी काल के वश में हैं, किन्तु काल किसी के भी वश में नहीं है। इसलिए काल ही समस्त भूतों का अनुशासन करता है।

विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येक सप्ततिः।
तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्त युग क्रमात्॥ 31॥

– पूर्व में कहे हुए इकहत्तर युग इस महापराक्रमी काल के 'पद' (डग) हैं (अर्थात् 71 चतुर्युगों को काल का एक डग समझना चाहिए। ये 'युग' बार-बार पुनरावृत्त होते हैं, अतः इन्हें ही मन्वन्तर कहते हैं)

एकं पदं परिक्रम्य पदानामेक सप्ततिः।
यदा कालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः॥ 32॥

– एक-एक डग चलकर जब काल इकहत्तर 'डग' रख लेता है, तब एक मन्वन्तर का 'क्षय' होता है।

एवमुक्त्वा तु भगवान् देवार्षिपितृदानवान्।
नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत॥ 33॥

– भगवान् (शंकर) ने इस प्रकार देव, ऋषि, पितृ और दानवों को समझाया। इस पर सभी ने उन्हें नमस्कार किया। तब भगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये।

एवं स कालो भगवान् देवर्षि पित् दानवान्।
पुनः पुनः संहरते सृजते च पुनः पुनः॥ 34॥

– इस प्रकार भगवान् काल देवता, ऋषि, पितृ और दानवादि का बार-बार सृजन और बार-बार संहार करते रहते हैं।

अतो मन्वन्तरे चैव देवर्षिपितृ दानवैः।
पूज्यते भगवानीशो भयात् कालस्य तस्य वै॥ 35॥

– अतः (इसी कारण) देवता, ऋषि, पितृ और दानवादि, काल के भय के कारण प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् शंकर की पूजा उपासना करते हैं।

शंकर का काल रूप

॥ नारद उवाच॥
कालरूपी त्वयाख्यातः शंभुर्गगन गोचरः।
लक्षणं च स्वरूपं च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि॥ 29॥[75]

देवर्षि नारद ने पुलस्त्य ऋषि से कहा- आपने आकाश में स्थित शिव को 'काल रूपी' कहा है। आप कृपया लक्षणों सहित उनके स्वरूप की व्याख्या करें।

॥ पुलस्त्य उवाच॥
स्वरूपं त्रिपुरघ्नस्य वदिष्ये कालरूपिणः।
येनाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकहितेप्सुना॥ 30॥

– हे मुनि! मैं त्रिपुरारी-शिव के कालस्वरूप की वास्तविकता बताने जा रहा हूँ। उन्होंने लोक की भलाई की इच्छा से ही इस आकाश को व्याप्त किया है।

यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथांशकः।
मेषो राशिः कुजक्षेत्रं तच्छिरः कालरूपिणः॥ 31॥

– सम्पूर्ण अश्विनी तथा भरणी नक्षत्रों एवं कृत्तिका के एक चरण से घिरा हुआ जो क्षेत्र है, जिसे भौम (मंगल) का क्षेत्र कहा जाता है, वह मेष राशि ही कालरूपी शिव का शिर (सिर) है।

आग्नेयांशास्त्रयो ब्रह्मान् प्राजापत्यं कवेर्गृहम्।
सौम्यार्द्धं वृषनामेदं वदनं परिकीर्त्तितम्॥ 32॥

– हे ब्रह्मन्! आग्नेय (कृत्तिका) के तीन चरण, प्राजापत्य (रोहिणी) के चारों चरण तथा सौम्य (मृग-शिरा) के दो चरणों से घिरा हुआ कवि (शुक्र) का क्षेत्र (जो कि वृष राशि है वह) कालरूपी शिव का मुख है।

मृगार्धमार्द्रादित्याशांस्त्रयः सौम्य गृहंत्विदम्।
मिथुनं भुजयोस्तस्य गगनस्थस्य शूलिनः॥ 33॥

– मृगशिरा के शेष दो चरण, सम्पूर्ण आर्द्रा और पुनर्वसु के तीन चरण युक्त बुध की (प्रथम) स्थिति स्थान मिथुन राशि आकाशास्थ शिव जी की दोनों भुजायें हैं।

आदित्यांशश्च पुष्यंच आश्लेषा राशिनोगृहम्।
राशिः कर्कटको नाम पार्श्वे मख विनाशिनः॥ 34॥

– आदित्य (पुनर्वसु) का अन्तिम चरण, सम्पूर्ण पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रों वाला चन्द्रमा का क्षेत्र जो कि कर्क राशि है, वह यज्ञ विनाशक शिव के दोनों पार्श्व (बगलें) हैं।

पित्र्यर्क्षं भगदैवत्यमुत्तरांशश्च केसरी।
सूर्य क्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन् हृदयं परिगीयते॥ 35॥

– हे ब्रह्मन्! पित्र्यर्क्ष (सम्पूर्ण मघा), सम्पूर्ण पूर्वा-फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी का प्रथम चरण, सूर्य की सिंह राशि भगवान् शंकर का हृदय कही जाती है।

उत्तरांशास्त्रयः पाणिश्चित्रार्धं कन्यकात्वियम्।
सोम पुत्रस्थ सद्मैतद् द्वितीयं जठरं विभोः॥ 36॥

– उत्तरा फाल्गुनी के तीन चरण, सम्पूर्ण हस्त नक्षत्र एवं चित्रा के प्रथम दो चरण, बुध की द्वितीय राशि कन्या – शिव का 'जठर' है।

चित्रांशद्वितयं स्वातिर्विशाखायांशकत्रयम्।
द्वितीयं शुक्र सदनं तुला नाभि रुदाहृता॥ 37॥

– चित्रा के शेष दो चरण, स्वाति के चारों चरण एवं विशाखा के तीनों

चरणों से युक्त शुक्र का द्वितीय क्षेत्र तुला राशि महादेव की नाभि है।

विशाखांशमन् राधा ज्येष्ठा भौमगृहंत्विदम्।
द्वितीयं वृश्चिको राशिर्मेढ्रं कालस्वरूपिणः॥ 38॥

– विशाखा का एक चरण, सम्पूर्ण अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र, मंगल का द्वितीय क्षेत्र वृश्चिक राशि कालरूपी शिव का मेढ़ू (उपस्थ) है।

मूलं पूर्वोत्तरांशश्च देवाचार्यगृहं धनुः।
ऊरु युगलमीशस्य अमरर्षे प्रगीयते॥ 39॥

– हे देवर्षि! सम्पूर्ण मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ की प्रथम चरण वाली धनु राशि जो वृहस्पति का क्षेत्र है, महेश्वर के दोनों 'ऊरु' (जंघायें) हैं।

उत्तरांशास्त्रयो ऋक्षं श्रवणं मकरो मुने।
धनिष्ठार्धं शनिक्षेत्रं जानुनी परमेष्ठिनः॥ 40॥

हे मुनि! उत्तराषाढ़ के शेष तीन चरण, सम्पूर्ण श्रवण नक्षत्र और धनिष्ठा के पहले दो चरण जो कि शनि का क्षेत्र 'मकर राशि' है, वह परमेष्ठी शिव के दोनों जानु (घुटने) हैं।

धनिष्ठार्धं शतभिषा प्रौष्ठपद्यांशकत्रयम्।
सौरेः सद्भापरमिदं कुंभो जंघे च विश्रुते॥ 41॥

– धनिष्ठा के शेष दो चरण, सम्पूर्ण शतभिषा, और पूर्वा भाद्रपद के तीन चरण वाली कुंभ राशि जो कि शनि का द्वितीय गृह है, वह शिव की दोनों जंघायें हैं।

प्रौष्ठपद्यांशमेकं तु उत्तरा रेवती तथा।
द्वितीयं जीवसदनं मीनस्तु चरणावुभौ॥ 42॥

– पूर्वाभाद्रपद का शेष एक चरण, सम्पूर्ण उत्तराभाद्रपद और सम्पूर्ण रेवती नक्षत्रों वाला वृहस्पति का द्वितीय गृह मीन राशि शिव के दोनों चरण हैं।

एवं कृत्वा कालरूपं त्रिनेत्रो यज्ञं क्रोधान्मार्गणैराजधान।
विद्धश्चासौ वेदना बुद्धिमुक्तः खे संतस्थौ तारकाभिश्चितांगः॥ 43॥

– इस प्रकार कालरूप धारण करके शिव ने क्रोधपूर्वक हरिण रूप धारी यज्ञ को बाणों से मारा। उसके बाद बाणबिद्ध होकर भी किसी प्रकार की वेदना की अनुभूति न करता हुआ वह यज्ञ ताराओं से घिरे शरीर वाला होकर आकाश में स्थित हो गया।

नक्षत्र – पुरुष वर्णन

मूलर्क्षं चरणौ विष्णोर्जङ्घे द्वे रोहिणी स्मृते।
द्वे जानुनी तथाश्विन्यौ संस्थिते रूपधारिणः॥ 3॥[76]

– मूल नक्षत्र भगवान् विष्णु के दोनों चरणों का, रोहिणी नक्षत्र दोनों जंघाओं का और अश्विनी नक्षत्र दोनों घुटनों का रूप धारण करके स्थित हैं।

आषाढ़े द्वे द्वयं चोर्वोर्गुह्यस्थं फाल्गुनी द्वयम्।
कटिस्थाः कृत्तिकाश्चैव वासुदेवस्य संस्थिताः॥ 4॥

– पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नामक दो नक्षत्र वासुदेव के दोनों ऊरुओं में, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी नामक दोनों नक्षत्र गुह्य प्रदेश में तथा कृत्तिका नक्षत्र कटि भाग में स्थित है।

प्रौष्ठपद्या द्वयं पार्श्वे कुक्षिभ्यां रेवती स्थिता।
उरः संस्था त्वनुराधा श्रविष्ठा पृष्ठ संस्थिता॥ 5॥

– पूर्वा भाद्रपदा तथा उत्तरा भाद्रपदा दोनों पार्श्वों में रेवती दोनों कुक्षियों में, अनुराधा हृदय में तथा धनिष्ठा नक्षत्र पृष्ठ देश में स्थित है।

विशाखा भुजयोर्हस्तः करद्वयमुदाहृतम्।
पुनर्बसुरथां गुल्यो नखाः सार्प तथोच्यते॥ 6॥

– दोनों भुजाओं के स्थान में विशाखा नक्षत्र है। हस्त नक्षत्र को दोनों हाथ कहा गया है। पुनर्वसु नक्षत्र अंगुलियाँ तथा आश्लेषा नक्षत्र 'नख' हैं।

ग्रीवास्थिता तथा ज्येष्ठा, श्रवणं कर्णयोः स्थितम्।
मुख संस्थस्तथा पुष्यः स्वातिर्दन्ताः प्रकीर्त्तिताः॥ 7॥

– ग्रीवा में ज्येष्ठा, दोनों कानों में श्रवण तथा मुख में पुष्य नक्षत्र स्थित है। दाँतों को स्वाति नक्षत्र कहा गया है।

हनू द्वे वारुणश्चोक्तो, नासा पैत्र उदाहृतः।
मृगशीर्षं नयनयो, रूपधारिणि तिष्ठति॥ 8॥

– शतभिषा नक्षत्र दोनों 'हनुएँ' तथा मघा को नासिका कहा गया है। नक्षत्रों का रूप धारण करने वाले भगवान् के दोनों नेत्रों में मृगशिरा नक्षत्र का निवास है।

चित्रा चैव ललाटे तु भरणी तु तथा शिरः।
शिरोरुहस्था चैवार्द्रा नक्षत्रांगमिदं हरेः॥ 9॥

– चित्रा ललाट में, भरणी सिर में तथा आर्द्रा नक्षत्र केश में रहता है। यह भगवान् विष्णु का 'नक्षत्र-शरीर' है।

विष्णु का आधिदैविक स्वरूप

'शिशुमार चक्र'

पुराणों में ज्योतिश्चक्र-वर्णन के प्रसंग में 'शिशुमार चक्र' का उल्लेख हुआ है। कहा गया है कि यह भगवान् विष्णु का आकाश स्थित कालरूप है। भौतिक-काल चक्र इसी 'शिशुमार के द्वारा संचालित होता है।'[77] विष्णु-पुराण और श्रीमद् भागवत आदि पुराणों में इस पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। तदनुसार-

आकाश में 'शिशुमार' (गिरगिट या गोधा) की आकृति जैसा एक तारापुंज दिखायी देता है। इसे 'शिशुमार चक्र' कहते हैं। इसमें चौदह तारे है।[78] रात्रि के समय इसका दर्शन करने से मनुष्य दिन में जो कुछ पापकर्म करता है, उनसे मुक्त हो जाता है तथा आकाश मण्डल में जितने तारे इसके आश्रित हैं, उतने ही अधिक वर्ष वह जीवित रहता है।[79]

श्रीमद्भागवत के अनुसार यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका

मुख नीचे की ओर है। इसकी पूँछ के सिरे पर 'ध्रुव' स्थित है। पूँछ के मध्य भाग में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछ की जड़ में धाता और विधाता हैं। इसके कटि प्रदेश में 'सप्तर्षि' हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओर को सिकुड़कर कुण्डली मारे हुए है।

ऐसी स्थिति में अभिजित् से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त जो उत्तरायण के चौदह नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने भाग में हैं और पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ पर्यन्त जो दक्षिणायन के चौदह नक्षत्र हैं, वे बायें भाग में हैं। इसकी पीठ में 'अजवीथी' (मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नाम के तीन नक्षत्रों का समूह) है और उदर में 'आकाशगंगा' है। इसके दायें और बायें कटि-तटों में पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं। पीछे के दायें और बायें चरणों में आर्द्रा तथा आश्लेषा नक्षत्र हैं। दाहिने तथा बायें नथुनों में क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढ़ा हैं। दाहिने तथा बायें नेत्रों में श्रवण और पूर्वाषाढ़ा एवं दाहिने तथा बायें कानों में धनिष्ठा तथा मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायन के आठ नक्षत्र बायीं पसलियों में और विपरीत क्रम से मृगशिरा आदि उत्तरायण के आठ नक्षत्र दायीं पसलियों में हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा – ये दो नक्षत्र क्रमशः दायें और बायें कंधों के स्थान पर हैं। इसकी ऊपर की थूथनी में 'अगस्त्य', नीचे की ठोड़ी में नक्षत्र रूप 'यम' मुखों में मंगल, लिंग प्रदेश में शनि, ककुद् में वृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनीकुमार प्राण और अपान में बुध, गले में राहु, समस्त अंगों में केतु और रोमों में तारागण स्थित है।[80]

यह भगवान् विष्णु का सर्वदेवमय स्वरूप है। (शिशुमार के रूप में) ग्रह नक्षत्र और तारागणों के रूप में भगवान् का आधिदैविक रूप प्रकाशित हो रहा है।

विष्णु पुराण के शिशुमार चक्र वर्णन में किंचित् भिन्नता है। तदनुसार –

'उत्तानपाद' उसकी ऊपर की ठोड़ी (हनु) है और 'यज्ञ' नीचे की ठोड़ी है। धर्म ने उसके मस्तक पर अधिकार कर रखा है। उसके हृदय देश में 'नारायण' है। पूर्व के दोनों चरणों में अश्विनीकुमार हैं। जंघाओं में वरुण और अर्यमा हैं। सम्वत्सर उसका शिश्न है। मित्र ने उसके अपान देश को आश्रित कर रखा है। अग्नि, महेन्द्र, कश्यप, और ध्रुव पुच्छ भाग में स्थित हैं। शिशुमार के पुच्छ भाग में स्थित ये अग्नि आदि 4 तारे कभी अस्त नहीं होते।[81]

मुनि पाराशर का कथन है- सूर्य का आधार ध्रुव है। ध्रुव का आधार शिशुमार है तथा शिशुमार के आश्रय श्री नारायण हैं। उस शिशुमार के हृदय में श्री नारायण स्थित हैं जो समस्त प्राणियों के पालन कर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष हैं-

हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः।
विभर्त्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः॥ 25॥

विशेष -'शिशुमार चक्र' कोरी कल्पना अथवा भावात्मक-प्रवाद नहीं है, बल्कि एक 'सत्य' है जिसे विज्ञान की कसौटी पर कसने से अनेक गूढ़ रहस्यों के उद्घाटित होने की संभावना है। इसका एक मंत्र भी है जिसका तीनों संध्याओं में जप करने से मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं -

नमो ज्योर्तिलोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषा याभिधीमहि इति॥[82]

द्वादश - पत्रक - योग

'द्वादश-पत्रक-योग' वामन-पुराण के इकसठवें अध्याय में वर्णित है। इसका उपदेश पितामह ब्रह्मा ने सनत्कुमार के लिए किया है :-

शिखा संस्थं तु ओंकारं मेषोऽस्य शिरसि स्थितः।
मासो वैशाख नामा च प्रथमं पत्रकं स्मृतम्॥ 54॥[83]

भगवान् वासुदेव की शिखा में स्थित ओंकार (ॐ) उनके सिर पर स्थित 'मेष राशि' तथा वैशाख मास - प्रथम पत्रक है।

न कारो मुखसंस्थो हि वृषस्तत्र प्रकीर्त्तितः।
ज्येष्ठ मासश्च तत्पत्रं द्वितीयं परिकीर्त्तितम्॥ 55॥

मुख में स्थित 'न' अक्षर, वहीं पर विद्यमान 'वृष राशि' तथा ज्येष्ठ मास - यह द्वितीय पत्रक है।

मोकारो भुजयोर्युग्मं, मिथुनस्तत्र संस्थितः।
मासो आषाढ़ नामा च तृतीयं पत्रकं स्मृतम्॥ 56॥

दोनों भुजाओं में स्थित 'मो' अक्षर, वहीं पर स्थित 'मिथुन राशि' एवं आषाढ़ मास - यह योग का तृतीय-पत्रक है।

भकारं नेत्रयुगलं तत्र कर्कटकः स्थितः।
मासः श्रावणः इत्युक्तश्चतुर्थं पत्रकं स्मृतम्॥ 57॥

दोनों नेत्रों में स्थित 'भ' अक्षर, 'कर्क राशि' और श्रावण मास-यह चतुर्थ-पत्रक है।

गकारं हृदयं प्रोक्तं सिंहो वसति तत्र च।
मासो भाद्रस्तथा प्रोक्तः पंचमं पत्रकं स्मृतम्॥ 58॥

हृदय में स्थित 'ग' अक्षर, 'सिंह राशि' और भाद्रपद मास - इसे पंचम-पत्रक कहा गया है।

वकारं कवचं विद्यात् कन्या तत्र प्रतिष्ठिता।
मासश्चाश्वयुजो नाम षष्ठं तत् पत्रकं स्मृतम्॥ 59॥

भगवान् के 'कवच' में 'व' अक्षर जानना चाहिए। वहाँ पर 'कन्या राशि' स्थित है और मास का नाम 'आश्विन' है। यह षष्ठ-पत्रक है।

तेकारमस्त्रग्रामं च तुलाराशिः कृताश्रयः।
मासश्च कार्त्तिको नाम सप्तमं पत्रकं स्मृतम्॥ 60॥

उनके अस्त्र समूह के रूप में विद्यमान् 'ते' अक्षर 'तुला राशि' और कार्त्तिक मास - यह सप्तम-पत्रक है।

वाकारं नाभि संयुक्तं स्थितस्तत्र तु वृश्चिकः।
मासो मार्गशिरो नाम त्वष्टमं पत्रकं स्मृतम्॥ 61॥

नाभि संयुक्त 'वा' अक्षर, 'वृश्चिक राशि', और मार्गशीर्ष-मास - अष्टम-पत्रक है।

सुकारं जघनं प्रोक्तं तत्रस्थश्च धनुर्धरः।
पौषेति भदितो मासो नवमं परिकीर्त्तितम्॥ 62॥

जघन (जंघा) रूप में विद्यमान 'सु' अक्षर, 'धनु राशि' और पौष मास - यह नवम-पत्रक है।

देकारश्चोरुयुगलं मकरोऽप्यत्र संस्थितः।
माघो निगदितो मासः पत्रकं दशमं स्मृतम्॥ 63॥

'अरु युगल' में विद्यमान 'दे' अक्षर, 'मकर राशि' और माघ मास - यह दशम पत्रक है।

वाकारो जानुयुग्मं च कुंभस्तत्रादि संस्थितः।
पत्रकं फाल्गुनं प्रोक्तं तदेकादशमुत्तमम्॥ 64॥

उनके दोनों घुटनों के रूप में विद्यमान 'वा' अक्षर, 'कुंभ राशि' और फाल्गुन मास - यह एकादश पत्रक है।

पादौ यकारो मीनोऽपि स चैत्रे वसते मुने।
इदं द्वादशमं प्रोक्तं पत्रं वै केशवस्य हि॥ 65॥

हे मुनि! दोनों चरणों के रूप में विद्यमान 'य' अक्षर, 'मीन राशि' और चैत्र मास - यह भगवान् केशव का द्वादश-पत्रक है।

द्वादशारं तथा चक्रं षण्णभि द्वियुतं तथा।
त्रिव्यूहमेक मूर्त्तिश्च तथोक्तः परमेश्वरः॥ 66॥

एतत् तवोक्तं देवस्य रूपं द्वादश पत्रकम्।
यस्मिञ् ज्ञाते मुनिश्रेष्ठ न भूयो मरणं भवेत्॥ 67॥

- हे मुनि श्रेष्ठ! परमेश्वर का 'चक्र' द्वादश 'अरों', द्वादश नाभियों तथा तीन व्यूहों से युक्त है। यह एक प्रकार की परमेश्वर की मूर्त्ति है। मैंने तुम्हें भगवान् के इस द्वादश पत्रक स्वरूप (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का ज्ञान कराया। इस 'पत्रक' को भली-भाँति जान लेने पर 'मरण' नहीं होता।

विशेष - 'द्वादश-पत्रक योग' एक गूढ़ रहस्य है, जो कालात्मका विष्णु के द्विभुजी स्वरूप को मूर्त्त तो करता ही है, साथ ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर - इस त्रिव्यूह की एकात्मकता भी प्रमाणित करता है।

अनुषंग पाद

अथर्ववेद के काल सूक्त

'अथर्ववेद' चारों वेदों में चतुर्थ माना जाता है। अथर्ववेद-संहिता के उन्नीसवें काण्ड के अन्तर्गत क्रमांक 53 और 54 पर दिये हुए दो सूक्त 'काल' से सम्बन्धित हैं। इन दोनों सूक्तों में 'काल' की जो महिमा बतायी गयी है, वह दृष्टव्य तथा विचारणीय है।

(1) काल-सूक्त (प्रथम, क्र. 53)

[ऋषि-भृगु/देवता-काल/छन्द-त्रिष्टुप्-5 निचृत् पुरस्ताद् बृहती, 6-10 अनुष्टुप]

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य
चक्रा भुवनानि विश्वा॥ 1॥

- कालरूपी अश्व, विश्वरूपी रथ का वाहक है। वह सात किरणों और सहस्र आँखों वाला है। वह 'जरा रहित' और प्रचुर पराक्रम सम्पन्न है। समस्त लोक उसके चक्र हैं। उस (अश्व या रथ) पर बुद्धिमान ही आरोहण करते हैं।

सप्त चक्रान् वहति काल
एष सप्तास्य नाभीरमृतंन्वक्षः।
स इमा विश्वा भुवना न्यञ्जत्
कालः स ईयते प्रथमो नु देवः॥ 2॥

– वह काल सात चक्रों का वाहक है। उन चक्रों की सात नाभियाँ हैं तथा वह अक्ष (धुरा) अमृत-अनश्वर है। वह 'प्रथम देव' (काल) सभी भुवनों को प्रकट करता हुआ सतत गतिशील है।

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहिस्तस्तं
वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्
कालं तमाहुः परमे व्योमन्॥ 3॥

– विश्व ब्रह्माण्ड रूप भरा हुआ कुम्भ (घट) काल के ऊपर स्थापित है। सन्त (ज्ञानीजन) उस काल को (दिवस-रात्रि आदि) विभिन्न रूपों में देखते हैं। वह काल इन दृश्यमान प्राणियों के सामने प्रकट होकर उन्हें अपने में समाहित कर लेता है। मनीषीगण उस काल को विकारों से रहित, आकाश के समान (निर्लेप) बताते हैं।

स एव सं भुवनान्याभरत्
स एव सं भुवनानि पर्यैत्।
पिता सन्न भवत् पुत्र एषां
तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः॥ 4॥

– वह काल समस्त भुवनों का पोषण करने वाला तथा सभी में श्रेष्ठ रीति से संव्याप्त है। वही भूतकाल में इन प्राणियों का पिता, और अगले जन्म में इनका पुत्र हो जाता है। इस काल से उत्तम कोई भी 'तेज' नहीं है।

कालोऽमूं दिवमजनयत्
काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्यं, चेषितं ह वि तिष्ठते॥ 5॥

– काल ने ही इस दिव्य लोक को उत्पन्न किया और इसी ने सभी प्राणियों की आश्रय भूता भूमि को उत्पन्न किया है। भूत, भविष्य और वर्तमान, सभी इस अविनाशी काल के आश्रित रहते हैं।

कालो भूतिमसृजत, काले तपति सूर्यः।
काले ह विश्वा भूतानि, काले चक्षुर्विपश्यति॥ 6॥

– काल ने ही इस सृष्टि का सृजन किया है। काल की प्रेरणा से ही सूर्य देव इस संसार को प्रकाशित करते हैं। समस्त प्राणी इसी काल के आश्रित हैं। नेत्र भी इसी काल के आश्रित होकर विविध पदार्थों को देखते हैं।

काले मनः काले प्राणः
काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः॥ 7॥

– काल में ही मन, काल में ही प्राण तथा काल में ही सभी नाम समाहित हैं जो समयानुसार प्रकट होते रहते हैं। काल की अनुकूलता से ही समस्त प्रजाजन आनन्दित होते हैं।

काले तपः काले ज्येष्ठं
काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो
यः पितासीत् प्रजापतेः॥ 8॥

– काल में ही तपः शक्ति, काल में ही महानता और काल में ही 'ब्रह्म' (अथवा ब्रह्मविद्या) सन्निहित है। काल ही समस्त (स्थावर जंगम विश्व ब्रह्माण्ड) का ईश्वर, समस्त प्रजा का पालक तथा सबका पिता है।

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्॥ 9॥

– यह संसार काल द्वारा प्रेरित, उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ तथा उसी के आश्रय में प्रतिष्ठित भी है। काल ही अपनी ब्राह्मी चेतना को विस्तृत करके, परमेष्ठी (प्रजापति) को धारण करता है।

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत॥ 10॥

– सृष्टि के आरम्भ में काल ने सर्वप्रथम प्रजापति का सृजन किया, तत्पश्चात् प्रजाजनों की रचना की। काल 'स्वयंभूः' (स्वयं उत्पन्न) है। सबके दृष्टा कश्यप काल से प्रादुर्भूत हुए तथा काल से ही 'तप' (तपः शक्ति) उत्पन्न हुई।

(2) काल सूक्त (द्वितीय, क्र. 54)

[ऋषि–भृगु/देवता–काल/छन्द–अनुष्टुप् 2 त्रिपदार्षी गायत्री, 5 त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टि]

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदितो सूर्यः काले निविशते पुनः॥ 1॥

– काल से 'आपः' (जल), ज्ञान, तपः शक्ति तथा दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं। काल की सामर्थ्य से सूर्य उदित होता है। पुनः उसी (काल) में प्रविष्ट भी हो जाता है।

कालेन वातः पवते, कालेन पृथिवी मही।
द्यौर्मही काल आहिता॥ 2॥

– काल की प्रेरणा से 'वायु' प्रवाहित होती है। काल से यह विशाल पृथ्वी गतिमान् हो रही है। विशाल दिव्य लोक भी काल के आश्रय में ही स्थित है।

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा।
कालादृचः समभवन् यजुः काला दजायत॥ 3॥

– पूर्व काल में भूत, भविष्य (तथा वर्तमान) काल के ही द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। काल से ही ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के मंत्र प्रकट हुए हैं।

कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम्।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः॥ 4॥

– काल ने ही क्षयरहित यज्ञ भाग को देवत्व संवर्द्धक शक्तियों के निमित्त

प्रेरित किया है। काल से ही गन्धर्व और अप्सराओं का प्रादुर्भाव हुआ। समस्त लोक काल में प्रतिष्ठित हैं।

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधितिष्ठतः।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्
विधृतीश्च पुण्याः। सर्वांल्लोकानभिजित्य
ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः॥ 5॥

– अंगिरा और अथर्वा ऋषि अपने उत्पादनकर्त्ता इस काल में ही अधितिष्ठित हैं। इहलोक, परलोक और पुण्य लोकों तथा पवित्र मर्यादाओं को जीतकर वह कालदेव ब्रह्मज्ञान से युक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है।

विशेष – वेदों के भाष्यकार सायणाचार्य का मत है कि इन दोनों सूक्तों के माध्यम से 'काल' का परमात्म रूप प्रतिपादित किया गया है। उनका कथन है कि 'काल' परमेश्वर स्वरूप ही है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं (– काल सिद्धान्तदर्शिनी, पृ.–3) इन दोनों सूक्तों के द्वारा कालरूप परमात्मा की स्तुति की गई है।

औपनिषद – मत

श्वेताश्वतरोपनिषद् 'काल' की सत्ता तो स्वीकार करता है, किन्तु उसे विष्णु–पुराण या श्रीमद् भागवत की तरह 'परब्रह्म' अथवा उसका अन्यतम स्वरूप स्वीकार नहीं करता। तत्कालीन विचारधारा काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, कर्म, पंचमहाभूत एवं जीवात्मा को 'जगत्' का कारण मानती थी। किन्तु श्वेताश्वर उपनिषद् का कथन है कि ये सातों पदार्थ जड़ हैं और चेतन के अधीन हैं, इस कारण 'जगत् के कारण' नहीं हो सकते।

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वात्मभावा –
दात्माप्यनीशः सुख दुःख हेतोः॥ 2॥[84]

व्याख्या – वेदादि शास्त्रों में अनेक कारणों का वर्णन आता है। कहीं तो 'काल' को कारण बताया है; क्योंकि किसी न किसी समय पर ही वस्तुओं की उत्पत्ति देखी जाती है, जगत् की रचना और प्रलय भी काल के ही अधीन सुने जाते हैं।

कहीं स्वभाव को कारण बताया जाता है; क्योंकि बीज के अनुरूप ही वृक्ष की उत्पत्ति होती है – जिस वस्तु में जो स्वाभाविक शक्ति है, उसी से उसका कार्य उत्पन्न होता जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुगत शक्तिरूप जो स्वभाव है, वह कारण है।

कहीं कर्म को कारण बताया है; क्योंकि कर्मानुसार ही जीव भिन्न-भिन्न योनियों में भिन्न-भिन्न स्वभाव आदि से युक्त होकर उत्पन्न होते हैं।

कहीं आकस्मिक घटना (होनहार) या 'भवितव्यता' को कारण बताया है।

कहीं पाँचों महाभूतों को और कहीं जीवात्मा को जगत् का कारण बताया गया है।

विचार करने से समझ में आता है कि काल से लेकर पंचमहाभूतों तक बताये हुए जड़ पदार्थों में से कोई भी जगत् का कारण नहीं है। वे अलग-अलग तो क्या, सब मिलकर भी जगत् के कारण नहीं हो सकते; क्योंकि ये सब जड़ होने के कारण 'चेतन' के अधीन हैं। इनमें स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति नहीं है।

जिन जड़ वस्तुओं के मेल से कोई नयी चीज़ उत्पन्न होती है, वह उसके संचालक चेतन आत्मा के ही अधीन और उसी के 'भोगार्थ' होती है। इनके सिवा 'पुरुष' अर्थात् जीवात्मा भी जगत् का कारण नहीं हो सकता; क्योंकि वह सुख दुःख के हेतुभूत प्रारब्ध के अधीन हैं, वह भी स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं कर सकता।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि,
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥ 3॥[85]

व्याख्या – इस प्रकार आपस में विचार करने पर जब युक्तियों द्वारा और

अनुमान से वे (ऋषिगण) किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके, तब वे सब 'ध्यान योग' में स्थित हो गये। अर्थात् अपने मन और इन्द्रियों को बाहर के विषयों से हटाकर परब्रह्म को जानने के लिए उन्हीं का चिन्तन करने में तत्पर हो गये। ध्यान करते-करते उन्हें परमात्मा की महिमा का अनुभव हुआ। उन्होंने उन परमदेव परब्रह्म पुरुषोत्तम की स्वरूपभूत अचिन्त्य दिव्य शक्ति का साक्षात्कार किया, जो अपने ही गुणों – सत्व, रज, और तम से ढकी है, अर्थात् जो देखने में त्रिगुणमयी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में तीनों गुणों से परे है। तब वे इस निर्णय पर पहुँचे कि 'काल' से लेकर आत्मा तक जितने कारण पूर्व में बताये गये हैं उन समस्त कारणों के जो अधिष्ठाता – स्वामी हैं, अर्थात् वे सब जिनकी आज्ञा और प्रेरणा पाकर, जिनकी उस शक्ति के किसी एक अंश को लेकर अपने-अपने कार्यों के करने में समर्थ होते हैं, वे एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही इस जगत् के वास्तविक कारण हैं, दूसरा कोई नहीं है।

पौराणिक मत

ब्रह्म पुराण

– ब्रह्म पुराण अष्टादश पुराणों में पहला माना जाता है। इसके प्रवक्ता लोमहर्षण सूत और श्रोता नैमिषारण्य के मुनिगण हैं।

कालः पचति भूतानि, सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि।
यस्मिंस्तु पच्यते कालः, तत्र वेदेह कश्चन॥[86]

– 'काल' स्वयं अपने द्वारा, समस्त भूतों (जीवधारियों) को अपने भीतर लीन कर लेता है। यह कोई नहीं जानता कि 'काल' किसमें लीन हो जाता है। उसके (काल के) ऊपर, नीचे, तिरछे तथा मध्य में कोई कुछ ग्रहण नहीं कर सकता है। ये समस्त लोक उसी में वास करते हैं। उससे बाहर कुछ भी नहीं है। यह उसी भांति आगे की ओर जाया करता है जैसे धनुष की डोरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है। यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है, तो भी यह कारण के अन्त तक प्राप्त नहीं हो पाता है, क्योंकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म तथा स्थूल वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ पैर, आँख-सिर तथा मुख कान है। वह सबको

आवृत्त करके स्थित है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। वह समस्त भूतों के भीतर स्थित होते हुए भी 'अदृश्य' है।

'कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव।
कालमूलमिदं ज्ञात्वा कुरु स्थैर्यमतोऽर्जुन॥ 56॥[87]

नद्यः समुद्रा गिरयः सकला च वसुन्धरा।
देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरीसृपाः॥ 57॥
सृष्टाः कालेन, कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम्।
कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वाशममवाप्नु हि॥ 58॥
कालस्य सर्वभूतेषु ईदृशी गतिः

–'काल' ही प्राणियों की उत्पत्ति तथा विनाश करता है। संसार को 'कालमूलक' जानकर धैर्य धारण करो। काल ने ही नदी, समुद्र, पर्वत, सम्पूर्ण पृथ्वी, देव, मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सरीसृपों की सृष्टि की और ये सब पुनः काल ही में विलीन हो जायेंगे। सम्पूर्ण जगत् को 'कालरूप' जानकर शान्ति धारण करो। सभी प्राणियों में काल की ऐसी ही गति है।

भवन्ति भव कालेषु पुरुषाणां पराक्रमाः॥ 64॥

– जब काल अनुकूल होता है, तब लोग अत्यन्त वीर और पराक्रमी माने जाते हैं, किन्तु काल के विपरीत हो जाने पर वे ही लोग पराक्रमहीन से प्रतीत होने लगते हैं।

पद्म – पुराण

'पद्म–पुराण' महापुराणों के क्रम में दूसरा है। पद्म पुराण के प्रवक्ता लोमहर्षण सूत के पुत्र 'उग्रश्रवा' तथा श्रोता शौनकादि महर्षिगण हैं। पद्म पुराण में 'पाद्म–कल्प' के अनुसार पुराण वाचन किया गया है।

तदनुसार सूर्य–पत्नी छाया के गर्भ से शनैश्चर नामक पुत्र तथा तपती और विष्टि नामक दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। तपती ने तो नदी रूप धारण कर लिया, किन्तु विष्टि अपने भयंकर स्वरूप के कारण 'काल' का रूप धारण करके स्थित हुई।[88]

रुद्र का 'शर्व' नामक रूप प्रलयकाल में संसार का संहार करता है।[89]

ब्रह्मा की भी जब आयु समाप्त हो जाती है, तब 'काल' सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर की आयु पूर्ण हुई जानकर जगत् का संहार करने के लिए 'महाप्रलय' आरम्भ करता है।[90]

कला–काष्ठा आदि भेद से जो कालचक्र चल रहा है, उसी के द्वारा संसार की सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्य होते हैं।[91]

सृष्टि की इच्छा रखने वाले भगवान् मधुसूदन ने योग निद्रा को प्राप्त होकर माया के साथ रमण किया। उससे कालात्मा को जन्म दिया जो कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, पक्ष और मास आदि के रूप में उपलब्ध होता है।[92]

श्री विष्णु पुराण

'विष्णु पुराण' को अष्टादश–पुराणों के क्रम में तृतीय–पुराण माना जाता है। यह पुराण, पुराणों के पाँचों लक्षणों से युक्त है। अतः इसे विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस पुराण के प्रवक्ता महर्षि पाराशर और श्रोता मैत्रेय हैं। इस पुराण में 'वाराह कल्प' का वृत्तान्त वर्णित है।

विष्णु–पुराण के अनुसार विष्णु रूपी परब्रह्म के उपाधि रहित (परम) स्वरूप से 'प्रधान' और 'पुरुष' – ये दो रूप हुए। उसी रूप के जिस अंश के द्वारा प्रधान और पुरुष (क्षोभित होकर) संयुक्त या वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तरण को ही 'काल' कहा गया है। यह 'काल' वस्तुतः परब्रह्मा ही है जो इस जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार का सम्पूर्णकर्त्ता है। काल रूप भगवान् अनादि और अनन्त हैं, अतः सृष्टि, स्थिति और संहार की प्रक्रिया भी अनवरत रूप से निरन्तर चलती रहती है।[93]

कला काष्ठा निमेषादि, दिनर्त्वयन हायनैः
काल स्वरूपो भगवानपापो हरिरव्ययः॥ 79॥[94]

– कला, काष्ठा, निमेष, दिन, ऋतु, अयन और वर्ष रूप से 'कालस्वरूप', निष्पाप, अविनाशी श्री हरि ही विराजमान हैं। अर्थात् ये सब श्री भगवान् के ही नाना रूप हैं।

संक्षेप में श्री विष्णु ही 'काल रूप' से इस जगत् के नियन्ता, तथा कर्त्ता–धर्त्ता हैं।

शिव पुराण

'शिव पुराण' अष्टादश महापुराणों में चौथा है। इसके प्रवक्ता लोमहर्षण सूत और श्रोता ऋषि-मुनिगण हैं।

- शिव पुराण में 'शिव' को परब्रह्म परमेश्वर माना गया है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, शिव के ही अंश हैं। तदनुसार 'जीव' की पाँच कलाएँ हैं- कला, विद्या, राग, काल और नियति। इन्हें 'कलापंचक' कहते हैं जो यहाँ पाँच तत्त्वों के रूप में प्रकट होती हैं उसे 'कला' कहते हैं। जो कुछ-कुछ कर्तृत्व में हेतु बनती है और कुछ तत्त्व का साधन होती है, उसे 'विद्या' कहते हैं। जो विषयों में आसक्ति पैदा करती है, उसे 'राग' कहते हैं।

जो भाव पदार्थों और प्रकाशों का भासनात्मक रूप से क्रमश: अवच्छेदक होकर सम्पूर्ण भूतों का आदि कहलाता है, वही 'काल' है।

यह मेरा कर्त्तव्य है, और यह नहीं है - इस प्रकार नियंत्रण करने वाली जो विभु की शक्ति है, उसका नाम 'नियति' है। ये पाँचों ही जीव को स्वरूप को आच्छादित करने वाले आवरण हैं, इसलिए 'पंच कंचुक' कहे जाते हैं।[95]

श्रीमद्भागवत

पुराणों में, श्रीमद्भागवत का पाँचवाँ स्थान है। यद्यपि इस पुराण को व्यास रचित मानने में लोग शंका करते हैं, और उसे 'बोपदेव' की रचना प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं तथापि उत्तरी भारत में प्रचलित श्रीमद्भागवत एक पवित्र और पूज्य 'पुराण' माना जाता है। इस पुराण में 'काल' के सम्बन्ध में सर्वाधिक विचार किया गया है।

श्रीमद्भागवत के प्रवक्ता व्यास-पुत्र शुकदेव जी तथा श्रोता हस्तिनापुर नरेश महाराज परीक्षित् हैं।

तदनुसार 'काल' भगवान से अभिन्न है। अर्थात् भगवान ही काल हैं (2.5.14)। भगवान् ने एक से अनेक (बहुत) होने की इच्छा उत्पन्न होने पर अपने स्वरूप में 'काल' को स्वीकार किया है (2.5.21)। भगवान् ने ही अपनी शक्ति से

काल को प्रेरित किया कि वह तीनों गुणों में 'क्षोभ' उत्पन्न करके 'महत्तत्व' को जन्म दे (2.5.22)। पंचमहाभूतों की उत्पत्ति और विकृति भी काल के ही कारण हुई (2.5.27)।

विराट् पुरुष से ब्रह्मा ने जन्म लिया और ब्रह्मा ने 'काल' की कल्पना की (2.6.23)। 'काल' परमात्मा का स्वरूप है (2.6.41)।

'काल' गुणों को क्षोभित करता है (2.9.3)। जब तीनों गुण काल से क्षोभित होते हैं, तब पंचमहाभूत, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहंकार और महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इस 'काल' को 'सर्ग' कहा जाता है (2.10.3) और विराट् पुरुष से उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा जो विभिन्न प्रकार की चराचर सृष्टि होती है, उस काल को 'विसर्ग' कहते हैं (2.10.3)। प्रतिपद नाश की ओर बढ़ने वाली सृष्टि को एक मर्यादा में स्थिर रखने वाली (विष्णु की) शक्ति या कालावधि 'स्थान' कहलाती है (2.10.4)। इसी अवधि में अपने भक्तों पर विष्णु द्वारा जो कृपा की जाती है, वह अवधि 'पोषण' कहलाती है (2.10.4)।

स्वयंभू आदि मनु, जितने समय तक रहकर प्रजापालन करते हैं, वह काल एक मनु का अन्तर या 'मन्वन्तर' कहलाता है (2.10.4)। जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके 'शयन' करते हैं, तब 'जीव' उनमें लीन हो जाता है। यह काल 'निरोध' कहलाता है (2.10.6)।

द्रव्य, कर्म, काल और स्वभाव की सत्ता भगवान् के ही कारण है (2.10.12)। काल रूपी भगवान् 'कालाग्निस्वरूप रुद्र' बनकर इस जगत् को अपने में लीन कर लेते हैं (2.10.43)।

भगवान् की कालशक्ति से क्षोभित होकर 'माया' ने 'चिदाभास रूप बीज' धारण किया और काल की ही प्रेरणा से 'महत्तत्त्व' प्रकट हुआ (3.5.26.27) फिर चिदाभास, गुण और काल के अधीन उस महत्तत्त्व में विश्वसृजन हेतु 'रूपान्तरण' हुआ (3.5.28)।

जब भगवान् ने देखा कि आपस में संगठित न होने के कारण महत्तत्त्व आदि शक्तियाँ विश्व रचना के कार्य में असमर्थ हैं, तब भगवान् ने अपनी कालशक्ति को स्वीकार किया और एक साथ ही महत्तत्त्व, अहंकार, पंचभूत, पंचतन्मात्रा और मन

सहित ग्यारह इंद्रियों – इन तेईस तत्त्वों में प्रविष्ट होकर जीवों के सोये हुए 'अदृष्ट' को जाग्रत किया, परस्पर विलग हुए और सभी को आपस में मिला दिया। जिससे अधिपुरुष विराट् की उत्पत्ति हुई (3.6.1-4)।

भगवान् सम्पूर्ण प्राणियों के सूक्ष्म शरीरों को अपने में लीन करके जब आधारभूत जल में शयन करते हैं तब अपनी 'कालशक्ति' को जाग्रत रखते हैं ताकि सृष्टिकाल आने पर वे पुनः जाग्रत हो जायें (3.8.11)।

कालशक्ति ही भगवान् को जीवों के कर्मों की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित करती है (3.8.12)।

'सूक्ष्मतत्व' कालाश्रित रजोगुण से क्षुभित होकर 'पद्म' के रूप में भगवान् के नाभिदेश से निकला और कमलकोश के रूप में जल को देदीप्यमान कर दिया (3.8.13-14)।

'काल' भगवान का चक्र है जो प्राणियों को भयभीत करता हुआ उनकी आयु को क्षीण करता रहता है (3.8.20)।

प्रमाद की अवस्था में पड़े हुए जीवों की जीवन-आशा को जो सदा सावधान रहकर बड़ी शीघ्रता से काटता रहता है, वह बलवान् काल भगवान का रूप है (3.8.17)।

ब्रह्मा जी भी भगवान् के 'कालरूप' से डरते रहते हैं (3.8.18)।

पहले यह सारा विश्व भगवान की माया से लीन होकर 'ब्रह्मरूप' से स्थित था। उसी को अव्यक्त मूर्तिकाल के द्वारा भगवान् ने पुनः पृथक रूप से प्रकट किया है (3.10.12)।

जगत् का प्रलय; काल, द्रव्य तथा गुणों के द्वारा तीन प्रकार से होता है (3.10.14)।

नारद – पुराण

मुख्य अष्टादश पुराणों के क्रम में नारद पुराण को छठवें स्थान पर माना जाता है। इस पुराण के प्रवक्ता ब्रह्मा के मानस-पुत्र 'सनक' तथा श्रोता देवर्षि नारद हैं। इस पुराण में 'बृहत् कल्प' के अनुसार कथाएँ कही गईं हैं। तदनुसार –

भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वव्यापी तथा निरंजन हैं। उन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को व्याप्त कर रखा है। स्वयं प्रकाश जगन्मय महाविष्णु ने 'आदि सृष्टि' के समय भिन्न-भिन्न गुणों का आश्रय लेकर अपनी तीन मूर्त्तियों को प्रकट किया। पहले भगवान् ने अपने दाहिने अंग से जगत् की सृष्टि के लिए प्रजापति ब्रह्मा जी को प्रकट किया। फिर अपने मध्य-अंग से जगत् का संहार करने वाले 'रुद्र' नामधारी शिव को उत्पन्न किया। साथ ही इस जगत् का पालन करने के लिए उन्होंने अपने बायें अंग से अविनाशी विष्णु को अभिव्यक्त किया। आदि सृष्टि के समय लोक रचना के लिए उद्यत हुए भगवान् महाविष्णु के प्रकृति, पुरुष और काल – ये तीन रूप प्रकट होते हैं। वे शुद्ध, अक्षर और अनन्त परमेश्वर ही 'काल रूप' में स्थित हैं।[97]

मार्कण्डेय पुराण

'मार्कण्डेय पुराण' अष्टादश-पुराणों के क्रम में सातवाँ हैं। इस पुराण के प्रवक्ता मार्कण्डेय और श्रोता जैमिनी हैं।

मार्कण्डेय-पुराण में स्पष्टतः 'काल' की कोई चर्चा नहीं की गई है। तथापि अध्याय-96 में दिये 'अग्निस्तोत्र' से मार्कण्डेय-पुराण का 'काल-विषयक' मन्तव्य प्रकाश में आ जाता है। तदनुसार 'अग्नि से ही इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि हुई है (जातवेदस्त्वयैवेदं विश्वं सृष्टं महाद्युते), अग्नि ही समस्त भूतों का पोषण करने के लिए भूत, भविष्यत और वर्तमान का रूप धारण करता है (पोषाय सर्वभूतानां भूत भव्य भवो ह्यसि) अग्नि ही हिरण्य गर्भ है (हिरण्यरेतास्त्वं), अग्नि ही मुहूर्त्त, क्षण, त्रुटि और लव रूपी काल है (त्वं मुहूर्त्तं क्षणश्च त्वं त्वं त्रुटिस्त्वंतथा लव) अग्नि ही कला, काष्ठा, निमेषादि रूप में परिमाणात्मक अनन्त काल है (कला काष्ठा निमेषादि रूपेणासि जगत्प्रभो, त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान्) और अग्नि ही उत्तम सत्व, सम्पूर्ण प्राणियों का हृदय कमल, अनन्त ब्रह्म, विश्वव्यापी तथा दिन-रात इत्यादि निखिल काल स्वरूप है।[98]

(नोट- ऋग्वेद में भी 'अग्नि' को 'परब्रह्म परमेश्वर' का वाचक माना गया है।)

अग्नि पुराण

'अग्नि पुराण' अष्टादश पुराणों में आठवाँ है। इसे 'ईशान कल्प' का पुराण

माना जाता है। इस पुराण के प्रवक्ता 'अग्नि' और श्रोता ब्रह्मर्षि वसिष्ठ हैं।[99]

तदनुसार भगवान् विष्णु, कालाग्नि तथा रुद्र-एक दूसरे से अभिन्न हैं।

भगवान् हिरण्य गर्भ ने जल में तैरती हुई पृथ्वी और दसों दिशाओं की यथोचित स्थिति की तत्पश्चात् काल, मन, वाणी, काम, क्रोध और रति आदि को उत्पन्न किया।[100]

'काल' ध्रुव के पुत्र हैं। ये लोकान्तकारी हैं।

भविष्य पुराण

भविष्य पुराण अष्टादश महापुराणों में 'नवम पुराण' माना जाता है। यह पुराण 'अघोर कल्प' का वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। इस पुराण में 'सूर्य' को ही इस जगत् का कर्त्ता-धर्त्ता तथा संहारक प्रतिपादित किया गया है। तदनुसार-

कालो ह्येष महाबाहुर्निबोधोत्पत्ति लक्षणः।
य एष मण्डले ह्यस्मिंस्तेजोभिः पूरयन् महीम्॥[101]

-सूर्य ही काल एवं उत्पत्ति स्वरूप हैं। सूर्य के मण्डल के तेज से सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो रही है।

त्वं कालः सृष्टिकर्त्ता च हर्त्ता त्राता प्रभुस्तथा।[102]

-सूर्य ही काल है। सूर्य ही इस सृष्टि का कर्त्ता, संहारक, रक्षक तथा एकमात्र स्वामी है।

सूर्य के व्योम नामक आयुध में स्थित दस विश्वेदेवों में 'काल' भी एक विश्वदेव है।

स्वयंभू पुरुष की तीन अवस्थाएँ होती हैं -

सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्था स्वयंभुवः।
सत्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः॥ 8॥[103]

- पुरुष सहस्त्रमूर्धा वाला है। उस स्वयंभू की तीन अवस्थाएँ होती हैं। 'ब्रह्मत्व' में सत्व और रजस् तथा 'कालत्व' में रजस् और तमस् होता है।

सात्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्त स्वयंभुवः।
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे चापि संक्षिपेत्॥ 9॥[104]

- स्वयंभू के 'पुरुषत्व' में सात्विक गुणवृत्त होता है। वह ब्रह्मत्व में लोकों का सृजन किया करता है और 'कालत्व' की दशा में उसका संक्षेप करता है।

पुरुषत्वे उदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रिकाल संप्रवर्त्तते॥ 10॥

- जब वह 'पुरुषत्व' की अवस्था में स्थित रहता है, तब 'उदासीन' रहता है। इस प्रकार अपने आपको तीन प्रकार से विभाजित करके तीन काल में संप्रवृत्त रहता है।

सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम्॥ $10^{1/2}$॥

- इन तीनों से वह स्वयं ही सृजन, ग्रसन और वीक्षण करता है।

(विशेष - ब्रह्मा रूप से सृजन, विष्णु रूप से वीक्षण और काल रूप से ग्रसन करता है।)

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण

'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' अष्टादश महापुराणों के क्रम में दसवाँ है। इस पुराण में 'रथन्तर कल्प' का वृत्तान्त है और श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म माना गया है। इसके प्रवक्ता सौति (लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा) तथा श्रोता शौनक आदि ऋषिगण हैं। तदनुसार श्रीकृष्ण ही इस सम्पूर्ण जगत् और सृष्टि के मूल कर्त्ता-धर्त्ता हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा जब सृष्टि प्रारम्भ हुई तब उनके दाहिने नेत्र से आठ भैरव उत्पन्न हुए, जिनमें 'काल' भी एक भैरव था। वह 'नारायण' (श्रीकृष्ण) का अंगभूत (प्रधान अंश) है। वह बिना श्रीकृष्ण की अनुमति के किसी की मृत्यु का कारण नहीं बनता। 'काल' की प्रेरणा से ही मृत्यु कन्या और उसके 64 पुत्र प्राणियों पर अपना प्रभाव डालते हैं। काल की पत्नी 'मृत्यु कन्या' है। इसके अतिरिक्त सन्ध्या, रात्रि और दिन को भी काल की तीन पत्नियाँ बताया गया है। प्रकृति खण्ड के प्रथम अध्याय में जरा और मृत्यु को काल की पुत्रियाँ कहा गया है। दूसरे अध्याय में 'काल' को 'नित्य'

कहा गया है। अध्याय 5 के श्लोक 15 के अनुसार 'काल संख्या' नामक एक देवी है जिनके बिना संख्या करने वाले लोग संख्या नहीं कर सकते। कर्म भोग का सारा निबन्ध काल के सूत्र में बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दु:ख, भय, शोक और अमंगल - सभी काल के अधीन हैं। [105]

नरसिंह - पुराण

'नरसिंह पुराणम्' अष्टादश महापुराणों में से तो नहीं है, किन्तु कुछ विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण अवश्य माना जाता है। इस पुराण-संहिता को 'उपपुराण' कहा जा सकता है। इस पुराण के प्रवक्ता लोमहर्षण सूत हैं तथा श्रोता मुनि भरद्वाज तथा अन्य ऋषिगण हैं।

तदनुसार भगवान् विष्णु अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्म तत्व हैं, सदा रहने वाले सनातन पुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत् के आदिकारण हैं, परन्तु उनका न तो आदि है, न अन्त ही। वे किसी अन्य से उत्पन्न नहीं हैं, अत: 'स्वयंभू' हैं, सम्पूर्ण प्राणियों को प्रकट करते हैं। वे विभु, अचिन्त्य, नित्य और कार्य-कारण स्वरूप हैं। सम्पूर्ण जगत् के निवासी होने के कारण 'वासुदेव' कहलाते हैं। सम्पूर्ण चराचर उन्हीं से व्याप्त है, अत: वे 'विष्णु' कहलाते हैं। वे 'विज्ञान स्वरूप', परब्रह्म, पुरुष (आत्मा) तथा आदि-अन्त रहित 'काल' हैं (काल-मनाद्यन्तम्)। [106]

भगवान् विष्णु के इसी 'कालस्वरूप' के द्वारा ब्रह्मा की तथा पृथ्वी, पर्वत, समुद्र चराचर जीवों की आयु का परिमाण नियत किया जाता है-

कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ।
तेन तस्य निबोधत्वं परिमाणोपपादनम्॥ 4॥ [107]
अन्येषां चैव भूतानां चराणामचराश्च ये।
भू भूभृत् सागरादीनामशेषाणां च सत्तम॥ 5॥

वराह पुराण

'वराह पुराण' अष्टादश-पुराणों में बारहवें क्रम पर है। अर्थात् बारहवाँ पुराण माना जाता है। इस पुराण के प्रवक्ता भगवान् 'वराह' तथा श्रोता पृथ्वी देवी हैं। इस पुराण में 'मानव कल्प' की कथाएँ कही गईं हैं। तदनुसार-

परमेश्वर के 'संकल्प' से इस जगत् की रचना हुई है, अत: इस कारण ही सृष्टि को 'कल्प' कहा जाता है। [108]

'काल' भगवान् सूर्य के रथ की धुरी है। [109]

स्कन्द पुराण 'केदार खण्ड'

अखण्डोयं तु य: काल:, कला काष्ठादि नामक:।
त्वत्स्वरूपमहं मन्ये, व्यक्तो नित्य: सनातन:॥ [110]

- कला, काष्ठा इत्यादि नामों से प्रसिद्ध यह 'काल' अखण्ड, व्यक्त, नित्य, सनातन तथा परब्रह्मस्वरूप है।

परिप्लुतां जले पृथ्वीं, दिशो वै दशधाकरोत्।
तत्र प्रथमत: कालं, मनो वाचं तत: परम्॥ [111]

- सृष्टि के प्रारम्भ में जल में (डूबी हुई) पृथ्वी को स्थापित किया गया, दस दिशायें कल्पित की गई और सर्वप्रथम 'काल', मन वाणी इत्यादि की उत्पत्ति की गई।

मास: पक्षो ह्यहोरात्रमृतुस्त्वयन रूपक:।
सम्वत्सर: पर: काल: कला काष्ठात्मक: कलि:॥
सत्यं त्रेता द्वापरश्च तथा स्वायंभुव: स्मृत:॥ [112]

- मास, पक्ष, अहोरात्र, ऋतु, अयन, सम्वत्सर, पर, काल, कला, काष्ठा, कलि, सत्य युग, त्रेता, द्वापर तथा स्वायंभुव मनु - इत्यादि नाम भगवान् शिव के पर्यायवाची हैं।

वामन पुराण

'वामन पुराण' अष्टादश पुराणों के क्रम में चौदहवाँ पुराण है। इस पुराण में 'कूर्म-कल्प' का वृत्तान्त दिया हुआ है। इसके प्रवक्ता महर्षि पुलस्त्य और श्रोता देवर्षि नारद हैं।

वामन पुराण के अनुसार भगवान् शिव ही 'कालरूप' हैं - 'काल रूपी महेश्वर:' (अ.-5/श्लोक-27)। वे 'शर्व' नाम से आकाश में स्थित हैं - 'कालरूपी

त्वयाख्यात: शम्भुर्गगन गोचर:।' (अ.-5/श्लोक-29)।

पाँचवें अध्याय के श्लोक-30 से लेकर 61 तक जो वर्णन दिया हुआ है, तदनुसार सम्पूर्ण राशि चक्र भगवान् शिव का ही मूर्त्त रूप है।

कूर्म पुराण

'कूर्म पुराण' अष्टादश पुराणों में पन्द्रहवाँ है। इसके मूल प्रवक्ता भगवान् कूर्म और श्रोता इंद्रद्युम्न-मुनि तथा अन्य ऋषि-मुनि हैं। कूर्म-पुराण के अनुसार -

- 'अव्यक्त' (तत्त्व) से काल, प्रधान तथा परम-पुरुष उत्पन्न हुए। उनसे यह समस्त जगत् पैदा हुआ, इसलिए यह जगत् 'ब्रह्ममय' है।[113]

- प्रधान और पुरुष - ये ही दो तत्त्व कहे गये हैं। अनादि उत्कृष्ट काल को ही उन दोनों का परम संयोजक कहा गया है।[114]

- प्रधान, पुरुष और काल - ये तीनों तत्त्व अनादि, अन्तरहित, अव्यक्त (परम तत्त्व) में स्थित हैं। वह (परम तत्त्व) तदात्मक (प्रधान आदि का प्रेरक होते हुए भी) तद्भिन्न (उनसे सर्वथा असंस्पृष्ट) है, वह (परम तत्त्व) मेरा (ईश्वर का) ही रूप है, यह विद्वान लोग ही जानते हैं। जो महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त समस्त संसार को उत्पन्न करती है, वह सभी देहधारियों को मोहित करने वाली प्रकृति कही गई है। जो प्रकृतिस्थ होकर प्रकृति के गुणों का उपभोग करता है, वह पुरुष है। अहंकार (अहम् तत्त्व) से विमुक्त होने के कारण वह पुरुष पच्चीसवाँ तत्त्व कहा गया है।

प्रकृति के प्रथम विकार को महान् आत्मा (महत्तत्त्व) कहते हैं। उस विज्ञान शक्ति से सम्पन्न विज्ञाता (अहम् अर्थात् अभिमान का मूल कारण) अहंकार उत्पन्न होता है। वही एक महान् आत्मा अहंकार कहलाता है। तत्त्व चिंतकों के द्वारा वह 'जीव' तथा 'अन्तरात्मा' - इस नाम से कहा गया है।[115]

जीवन में उसी के द्वारा सुख एवं दु:खादि सभी का अनुभव होता है। वह विज्ञान स्वरूप (विविध सांसारिक ज्ञान का मूल) है। उस अहंकार का उपकारक मन है। उससे अविवेक उत्पन्न होता है और फिर उस अविवेक से पुरुष का संसार बनता है। प्रकृति से 'काल' का सम्पर्क होने से वह अविवेक उत्पन्न होता है।

'काल' ही प्राणियों की सृष्टि करता है और 'काल' ही प्रजाओं का संहार करता है। सभी काल के वशीभूत हैं, काल किसी के वश में नहीं है।[116]

वह सनातन काल अन्त: प्रविष्ट होकर इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन करता है। इस काल को भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ तथा पुरुषोत्तम कहा जाता है। मनीषियों ने मन को सभी इन्द्रियों से उत्कृष्ट एवं मन से अधिक उत्कृष्ट अहंकार को, और अहंकार से उत्कृष्ट 'महान्' (महत्तत्त्व) को बतलाया है। महत् से उत्कृष्ट अव्यक्त, अव्यक्त से उत्कृष्ट पुरुष तथा पुरुष से उत्कृष्ट भगवान् 'प्राण' हैं। यह सम्पूर्ण संसार उसी से है। प्राण से 'पर तर' व्योम है और व्योम से अतीत अग्नि ईश्वर है।[117]

इस संसार में मुझ अव्यक्त, व्योम रूप महेश्वर को छोड़कर कोई भी स्थावर जंगमात्मक तत्त्व नित्य नहीं है। वहीं मैं मायावी तथा मायामय देव 'काल' के संसर्ग से सम्पूर्ण संसार की सदा सृष्टि करता हूँ और फिर संहार करता हूँ। मेरे सान्निध्य में ही यह काल (तत्त्व) सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है। वेद का यह कथन है कि अनन्तात्मा ही उस 'काल' को इस कार्य में नियोजित करता है।[118]

मत्स्य पुराण

'मत्स्य-पुराण' अष्टादश पुराणों में सोलहवाँ पुराण माना जाता है। इस पुराण में 'सत्य कल्प' का वृत्तान्त दिया हुआ है। इस पुराण के प्रवक्ता भगवान् 'मत्स्य' तथा श्रोता वैवस्वत मनु हैं।[119] मत्स्य पुराण भी 'पंचलक्षण युक्त' है, इस कारण इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

मत्स्य पुराण के अनुसार 'काल' धर्म-अधर्म के विधान को जानने वाला, सभी धर्मों का प्रवर्त्तक, जगत् का स्वामी, प्रजा का नियमन करने वाला, यम, धर्मराज मृत्यु और अन्तक है। चूँकि उसके द्वारा प्राणियों की क्षण, कला आदि 'काल गणना' की जाती है, इसलिए तत्त्वदर्शी लोग उसे 'काल' नाम से पुकारते हैं-

कालं कलार्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभि:॥ 5॥[120]

गरुड़ पुराण

'गरुड़ पुराण' अष्टादश-पुराणों में सत्रहवाँ पुराण माना जाता है। इस पुराण

के प्रवक्ता स्वयं भगवान् विष्णु और श्रोता पक्षीराज गरुड़ हैं। यह पुराण कल्प से सम्बन्धित है। हिन्दू परिवारों में किसी की मृत्यु हो जाने पर 'गरुड़ पुराण' के नाम से जो पुराण सुना जाता है, वह इस पुराण का अंशमात्र है। वस्तुत: गरुड़ पुराण में भी अन्य पुराणों की भाँति 'पुराण' के पाँचों लक्षण पाये जाते हैं। तदनुसार –

– भगवान् काल 'ध्रुव' नामक वसु के पुत्र हैं। ये लोकों का संहार करते हैं।

– भगवान् विष्णु ही पुरुष एवं काल रूप में विद्यमान हैं।

– जिस प्रकार एक बालक क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार व्यक्त रूप में भगवान् विष्णु और अव्यक्त रूप में 'काल' एवं पुरुष (निराकार ब्रह्म) क्रीड़ा करते हैं।

– मनुष्य नाना प्रकार के सांसारिक कार्यों में इतना व्यस्त रहता है कि वह 'काल' के बारे में तनिक भी नहीं जान पाता ।

– 'काल' एक गहरा, अथाह महासागर है जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् डूबता-उतराता रहता है।

– मनुष्य के लिए प्रतिक्षण भय है। काल बीत रहा है, किन्तु वह जल में पड़े गलते हुए कच्चे घड़े के समान दिखायी नहीं देता।

– यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धन है, ये बन्धु-बान्धव मेरे हैं – इस प्रकार से मनुष्य एक बकरे की तरह 'मैं मैं' करता रहता है और देखते ही देखते 'कालरूपी' भेड़िया उसे मार डालता है। [121]

ब्रह्माण्ड पुराण

'ब्रह्माण्ड पुराण' को अष्टादश-महापुराणों में अन्तिम माना जाता है। इस पुराण का सम्बन्ध 'भविष्य कल्प' से जोड़ा जाता है। इस पुराण के प्रवक्ता लोमहर्षण सूत तथा श्रोता नैमिषारण्य-निवासी ऋषिगण हैं। तदनुसार-

सत्त्वं विष्णु: रजो ब्रह्मा तमो रुद्र: प्रजापति:॥ 6॥

-विष्णु सतो गुण हैं, ब्रह्मा रजो गुण हैं और रुद्र तमो गुण हैं।

विष्णु जब रजो गुणी हो जाते हैं तब 'ब्रह्मा' बनकर सृष्टि करते हैं। सतो गुणी रहने पर सृष्टि की स्थिति और पालन करने वाले विष्णु बन जाते हैं। वहीं विष्णु तमो गुण का आश्रय ले लेने पर रुद्र बनकर संहार करते हैं।

जब विष्णु तमो गुण के प्रकाशक होते हैं तब 'काल रूप' से संसार की व्यवस्था करते हैं।

तम: प्रकाशको विष्णु: कालत्वेन व्यवस्थित:॥

परमेश्वर 'ब्रह्मत्व' में सृजन करता है। 'कालत्व' में संक्षय करता है और पुरुषत्व में उदासीन रहता है (ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षयत्यपि। पुरुषत्वे उदासीन: तिस्रोऽवस्था: स्वयंभुव: ॥ 19॥) [122]

हरिवंश पुराण

'हरिवंश पुराण' महाभारत का 'खिलभाग' (परिशिष्ट) माना जाता है। तथापि यह एक स्वतंत्र महापुराण के लक्षणों से युक्त है। इसके प्रवक्ता महर्षि वैशम्पायन और श्रोता हस्तिनापुर नरेश जनमेजय हैं। तदनुसार –

चन्द्रदेव संसार में काल को प्रवर्त्तित करते हुए दिन और रात का परिवर्तन करते रहते हैं। [123]

भगवान् विष्णु से, अवतार धारण करने की प्रार्थना के लिए पृथ्वी ने 'काल' को अपने आगे रखा था। [124]

वायु पुराण

'काल' यद्यपि अमूर्त्त है, तथापि वायु पुराण के प्रवक्ता लोमहर्षण सूत ने वायु देवता के व्याज से, काल का जो स्वरूप व्यक्त किया है, वह अपने आपमें अद्‌भुत तो है ही, विचारणीय और गंभीर चिन्तन का विषय भी है।

इकतीसवें अध्याय के 'देशवंश वर्णन' के प्रसंग में, ऋषिगण अचानक प्रश्न कर बैठते हैं कि सब जीवों का हरण करने वाले ये भगवान् 'काल' कौन हैं ? किसके पुत्र हैं और किसके पिता हैं ? इनके तत्त्व, स्वरूप, चक्षु, मूर्त्ति, अवयव

आदि कौन से हैं ? इनका क्या नाम है ? कौन इनकी आत्मा है - इत्यादि।

इन कठिन प्रश्नों का उत्तर, लोमहर्षण ने जिस चतुराई से दिया वह श्लाघनीय है। तदनुसार भगवान् काल 'सूर्य योनि:' अर्थात् सूर्य से उत्पन्न हुए हैं। इनका आदि 'निमेष' है। ये 'संख्या चक्षु' कहलाते हैं। 'अहोरात्र' इनकी मूर्त्ति है। 'निमेष' इनका अवयव है। कलास्वरूप 'सम्वत्सरशत' इनका नाम है। ये वर्तमान, भविष्य और भूत काल रूप से 'प्रजापति' हैं। इनका अवस्था भेद - दिन, पक्ष, मास, ऋतु और अयन नामक पाँच भागों में विभाजित है। इनमें प्रथम संवत्सर, द्वितीय परिवत्सर, तृतीय इद्वत्सर, चतुर्थ अनुवत्सर और पंचम 'युग' नामक वत्सर कहलाता है।

इनका 'कीर्त्यमान तत्व' यह है-

ऋतु नामक अग्नि 'सम्वत्सर' है। सूर्य से उत्पन्न 'कालाग्नि' परिवत्सर है। आकाश में विचरण करने वाला, जलों का सारभूत और सतत् शुक्ल-कृष्ण गति वाला 'सोम' इद्वत्सर है। जो उन्नचास शरीरों से लोकों को संतप्त करते हैं और अनुप्राणित करते रहते हैं, वे वायु 'वत्सर' हैं।

अहंकारवश रोदन करने वाले रुद्र, ब्रह्मा द्वारा तीन भागों में विभक्त हुए, वही 'नील लोहित रुद्र' रुद्रों के 'वत्सर' कहे गये हैं।

'कालात्मा' प्रपितामह अंग-प्रत्यंग के संयोग से ऋक्, साम और यजु: के उत्पत्ति स्थान तथा पाँचों कालों के स्वामी हैं। वे ही अग्नि यजु:, सोम, भूत और प्रजापति हैं।

विद्वानों ने सूर्य को ही अग्नि और सम्वत्सर कहा है। इन्हीं सूर्य से कालों का विभाग - मास, ऋतु, अयन, ग्रह, नक्षत्र, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, आयु, कर्म तथा दिवसों का विभाग होता है।

विकारावस्था में ये ही प्रसन्नात्मा ब्रह्म-पुत्र प्रजापति, एक-एक कर दिवस मास और ऋतु के प्रवर्त्तक हैं और ये ही पितामह हैं।

तृतीय परिवत्सर सोम जो कि निखिल औषधियों का स्वामी है, ताराभिमानी है। इसलिए ये भी प्रपितामह है। ये सभी जीवों के योग-क्षेम करने वाले हैं। ये सदा

जागरुक रहते हुए किरणों के द्वारा जगत् का पोषण करते हैं। तिथि, पर्वसन्धि, पूर्णिमा, अमावस्या के ये ही उत्पादक, निशाकर और प्रजापति हैं। इसीलिए ये सोम पितृमान एवं ऋक्-यजुर्वेद के स्वरूप हैं।

ये प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानात्मक कर्म द्वारा लोक में निखिल प्राणियों की सम्पूर्ण चेष्टाओं के प्रवर्त्तक हैं। ये ही प्राण, अपान और समान वायु के प्रवर्त्तक हैं। [125]

भगवान् श्रीराम की 'काल-मीमांसा' [126]

भगवान् श्रीराम उस समय सोलहवें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे। गुरु के सान्निध्य में विद्या-अध्ययन पूर्ण कर लेने के बाद अचानक उनके मन में तीर्थ यात्रा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपने पिता राजा दशरथ से अनुमति लेकर सभी तीर्थों की यात्रा सम्पन्न की और लौटने पर वे एक 'विरक्त' जैसे रहने लगे। इससे राजा दशरथ को बड़ी चिन्ता हुई। कालान्तर में महर्षि विश्वामित्र अपने यज्ञानुष्ठान की रक्षा हेतु राम और लक्ष्मण को लेने आये। राजा दशरथ ने राम को राज-सभा में बुलाया और उनकी विरक्ति का कारण जानना चाहा। तब श्रीराम ने संसार की अनित्यता पर प्रकाश डालते हुए 'काल' के स्वरूप और स्वभाव की जो व्याख्या की वह विशेष रूप से मननीय है। वह संक्षेपत: प्रस्तुत है-

श्रीराम कहते हैं- जैसे 'वडवाग्नि' उमड़े हुए समुद्र को सोखती है, उसी प्रकार यह 'सर्वभक्षी-काल' भी उत्पन्न हुए जगत् को अपना ग्रास बना लेता है॥ 1॥

भयंकर काल रूपी महेश्वर इस सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंच को निगल जाने के लिए सदा उद्यत रहते हैं, क्योंकि सारी वस्तुएँ उनके लिए सामान्य रूप से ग्रास बना लेने के योग्य हैं॥ 2॥

युग, वर्ष और कल्प के रूप में काल ही प्रकट है। इसका वास्तविक रूप कोई नहीं देख सकता। वह सब संसार को अपने वश में करके बैठा है॥ 3॥

संसार में जो रमणीय, शुभ कर्म करने वाले तथा उच्चता या गौरव में सुमेरु पर्वत के भी गुरु थे, उन सबको काल ने उसी तरह निगल लिया है, जैसे गरुड़ सर्पों

को निगल जाते हैं॥ 4॥

यह काल बड़ा निर्दय, कठोर, क्रूर, कर्कश, कृपण और अधम है। संसार में अब तक ऐसी कोई वस्तु नहीं हुई, जिसे यह काल उदरस्थ न कर ले॥ 5॥

इस काल का विचार सदा सबको निगल जाने का ही रहता है। यह एक को निगलता हुआ भी दूसरे को चबा जाता है॥ 6॥

अब तक असंख्य लोग इसकी उदर-दरी में प्रवेश कर चुके हैं, तो भी यह महाखाऊ काल तृप्त नहीं होता॥ 7॥

यह रात्रि रूपी भौंरों से भरी हुई और दिन रूपी मंजरियों से सुशोभित वर्ष, कल्प और कला रूपिणी लताओं की निरन्तर सृष्टि करता रहता है, किन्तु कभी थकता नहीं॥ 8॥

यह काल धूर्तों का शिरोमणि है। इसे कितना ही तोड़ा जाय, टूटता नहीं। जलाने पर भी जलता नहीं, और दृश्य होने पर भी दिखता नहीं। यह 'मनोराज्य' की भांति फैला हुआ है। एक ही निमेष में किसी वस्तु को उत्पन्न कर देता है और पलभर में किसी भी वस्तु का पूर्णत: विनाश कर डालता है॥ 9॥

काल केवल अपना ही पेट भरने में संलग्न रहने के कारण तिनका, धूल, इन्द्र, सुमेरु, पत्ता और समुद्र - सबको अपने अधीन करने - निगल जाने के लिए उद्यत रहता है॥ 10॥

केवल इस काल में ही पर्याप्त क्रूरता भरी है, लोभ भी इसी के भीतर डेरा डाले हुए है। सारा का सारा दुर्भाग्य भी इसी में निवास करता है तथा दु:सह चपलता भी इसी में उपलब्ध होती है॥ 11॥

यह काल 'महाकल्प' नामक वृक्षों से देवता, मनुष्य और असुर आदि प्राणी समूह रूपी फलों के भार को गिराता हुआ सा खड़ा है॥ 12॥

सैकड़ों महाकल्प बीत जाने पर भी यह काल न तो खिन्न होता है, न किसी के द्वारा समादृत होता है, न कहीं आता है, न जाता है, न अस्त होता है, और न इसका उदय ही होता है॥ 13॥

यौवनरूपी कमलिनी को संकुचित करने के लिए यह (काल) चन्द्रमा के समान आयुरूपी गजराज का मस्तक विदीर्ण करने के लिए सिंह के सदृश है॥ 14॥

इस संसार में तुच्छ या महान् कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसे यह कालरूपी चोर चुरा न ले जाता हो॥ 15॥

यह काल ही व्यावहारिक अवस्था में संसार का कर्त्ता, भोक्ता और संहार करने वाला और स्मरणकर्त्ता आदि सभी पदों पर प्रतिष्ठित होता है॥ 16॥

किसी ने भी बुद्धि कौशल द्वारा इस काल के रहस्य का निश्चय नहीं किया है। पुण्य और पाप के फलभोग के अनुसार सुन्दर और कुरूप धारण करने वाले समस्त शरीरों को काल ही उत्पन्न करता, काल ही उनकी रक्षा करता और काल ही सहसा उनका संहार कर देता है॥ 17॥

इस प्रकार इस जगत् में सर्वत्र काल का ही विलास देखा जाता है। मनुष्यों में तो काल का बल प्रसिद्ध ही है॥ 18॥

इस काल की पत्नी है 'चण्डी' - (अत्यन्त कोपवती कालरात्रि), जो बड़ी चतुराई से चलती है। इसे काल ने संसार रूपी वन में विहार करने के लिए नियुक्त किया है। इसके साथ सारी मात्रिकाएँ (डाकिनी-शाकिनी आदि) रहती हैं।

यह कालरात्रि बाघिन के समान प्राणीसमूह का विनाश करने वाली है॥19॥

काल के धनुष का नाम है -'अभाव या संहार।' वह निरन्तर टंकार करता रहता है। उससे दु:खरूपी बाणों की झड़ी लगी ही रहती है। वह धनुष सब ओर स्फुरित होता रहता है॥ 20॥

यह कालरूपी राजकुमार संसार में दौड़ते हुए प्राणियों के पीछे दौड़ता है और उनको बाणों से विदीर्ण करता रहता है। इस काल से बढ़कर शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं है। यही सबसे अधिक विलास करने में प्रवीण है और समस्त लक्ष्य भेदियों से ऊपर उठकर शोभा पाता है॥ 21॥

यह जो कुछ भी विस्तृत जग-मण्डल दिखायी देता है, वह उस काल की नृत्यशाला है। इसमें वह खूब जी भरकर नृत्य करता है। जैसे बालक गीली मिट्टी को लेकर नाना प्रकार के खिलौने बनाते हैं, उसी प्रकार यह काल भी बारम्बार चौदह

भुवन, विभिन्न वन, लोक-लोकान्तर, जीव-समुदाय तथा उनके नाना प्रकार के आचार-विचारों की सृष्टि करता है। उन आचार-विचारों की प्रवृत्ति सत्ययुग और त्रेता में अचल तथा द्वापर और कलि में चल होती है। इन सबकी सृष्टि करने में काल कभी थकता नहीं॥ 22॥

काल निर्दयों का राजा है। वह किसी भी आर्त प्राणी के ऊपर दया नहीं करता। सम्पूर्ण भूतों पर दया करने वाला उदार पुरुष तो इस संसार में दुर्लभ हो गया है। काल प्राणियों की परम्परा को नित्य कहीं अज्ञात स्थान में लिये जाता है। सत्ता मात्र ही जिसका स्वरूप है, वह काल आकाश को भी खा जाता है। समष्टि अहंकार रूप कला को प्राप्त होकर सबके भीतर निवास करने वाला यह काल का भी कालरूप परमात्मतत्त्व सबसे महान् है॥ 23॥ [127]

भगवान् श्रीकृष्ण की काल मीमांसा

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में अध्याय छठवें से अध्याय अट्ठाईस तक श्रीकृष्ण-उद्धव का सम्वाद वर्णित है। इस सम्वाद में भगवान् श्रीकृष्ण ने 'काल' की जो मीमांसा प्रस्तुत की है, वह अपना अलग महत्त्व रखती है। तदनुसार-

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति,
ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः।
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य -
शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य॥ 14॥ [128]

- देवगण कहते हैं- 'ब्रह्मा आदि जितने भी शरीरधारी हैं, वे सत्त्व, रज, तम - इन तीनों गुणों के परस्पर विरोधी त्रिविध भावों की टक्कर से जीते-मरते रहते हैं। वे सुख-दुःख के थपेड़ों से बाहर नहीं हैं और ठीक वैसे ही आपके वश में हैं, जैसे 'नथे हुए बैल' अपने स्वामी के वश में होते हैं। आप उनके लिए भी 'कालस्वरूप' हैं। उनके जीवन का आदि-मध्य और अन्त, आपके ही अधीन है। इतना ही नहीं, आप प्रकृति और पुरुष से भी परे स्वयं पुरुषोत्तम हैं। आपके चरण कमल हम लोगों का कल्याण करें।

अस्यासि हेतु रुदयास्थिति संयमाना -
मव्यक्त जीव महतामपि कालमाहुः।
सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः -
कालो गभीररय उत्तम पूरुषस्त्वम्॥ 15॥

- आप इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के परम कारण हैं, क्योंकि शास्त्रों ने ऐसा कहा है कि आप प्रकृति, पुरुष और महत्तत्व के भी नियंत्रण करने वाले 'काल' हैं। शीत, ग्रीष्म और वर्षा काल रूप तीन नाभियों वाले सम्वत्सर के रूप में सबको क्षय की ओर ले जाने वाले 'काल' आप ही हैं। आपकी गति अबाध और गंभीर है। आप स्वयं पुरुषोत्तम हैं। [129]

देवताओं के द्वारा ऐसा कहे जाने और वापस लौट जाने के बाद उद्धव तथा श्रीकृष्ण का सम्वाद प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण दत्तात्रेय के कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं-

विसर्गाद्याः श्मशान्ता भावा देहस्य नात्मनः।
कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्त वर्त्मना॥ 48॥

- यद्यपि जिसकी गति नहीं जानी जा सकती, उस काल के प्रभाव से चन्द्रमा की कलाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं, तथापि चन्द्रमा तो चन्द्रमा ही है, वह न घटता है और न बढ़ता है। वैसे ही जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जितनी भी अवस्थाएँ हैं, सब शरीर की हैं, आत्मा से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ।
नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम्॥ 49॥

- जैसे आग की लपट अथवा दीपक की लौ, क्षण-क्षण में उत्पन्न और नष्ट होती रहती है - उनका यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, परन्तु दिखायी नहीं देता, वैसे ही 'जल प्रवाह के समान वेगवान काल' के द्वारा क्षण-क्षण में प्राणियों के शरीर की उत्पत्ति और विनाश होता रहता है, परन्तु अज्ञानतावश वह दिखायी नहीं पड़ता।

गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति।
न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः॥ 50॥

– जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का जल खींचते और समय (काल) आने पर उसे बरसा देते हैं, वैसे ही योगी पुरुष इन्द्रियों के द्वारा समय (काल) आने पर विषयों का ग्रहण करता है और समय आने पर उनका त्याग (दान) भी कर देता है। किसी भी समय उसे किसी भी (इन्द्रिय के) विषय में आसक्ति नहीं होती।

संसार कूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम्।
ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः॥ 41॥ [130]

– यह जीव संसार रूपी कुएँ में गिरा हुआ है। विषयों ने इसे अन्धा बना दिया है। 'काल रूपी अजगर' ने इसे अपने मुँह में दबा रखा है। अब भगवान को छोड़कर इसकी रक्षा करने में कौन समर्थ है?

आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात्।
अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत्॥ 42॥

– जिस समय जीव समस्त विषयों से विरक्त हो जाता है, उस समय वह स्वयं ही अपनी रक्षा कर लेता है। इसलिए बड़ी सावधानी के साथ यह देखते रहना चाहिए कि सारा जगत् 'कालरूपी अजगर' से ग्रस्त है।

एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया।
संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः॥ 16॥

– एकमात्र भगवान् नारायण ने अपनी माया द्वारा पूर्व में रची हुई सृष्टि को (प्रलयकाल उपस्थित होने पर) अपनी 'कालशक्ति' के द्वारा नष्ट कर दिया, उसे अपने में लीन कर लिया।

एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः।
कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु॥

सत्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः॥ 18॥ [131]

– और सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद से शून्य अकेले ही शेष रह गये। वे सबके अधिष्ठान हैं, सबके आश्रय हैं, परन्तु स्वयं अपने आश्रय – अपने ही आधार से रहते हैं, उनका कोई दूसरा आधार नहीं है। वे प्रकृति और पुरुष दोनों के

नियामक, कार्य और कारणात्मक जगत् के आदिकारण परमात्मा अपनी शक्ति 'काल' के प्रभाव से सत्त्व-रज आदि समस्त शक्तियों को साम्यावस्था में पहुँचा देते हैं।

अथैषां कर्म कर्तृणां भोक्तृणां सुख दुःखयोः।
नानात्वमथ नित्यत्वं लोक कालागमात्मनाम्॥ 14॥ [132]
मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्ति की यथा।
तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः॥ 15॥
एवमप्यंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः।
कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत्॥ 16॥

– यदि तुम कदाचित् कर्मों के कर्त्ता और सुख दुःखों के भोक्ता जीवों को अनेक तथा जगत्, काल, वेद और आत्माओं को नित्य मानते हो; साथ ही समस्त पदार्थों की स्थिति प्रवाह से नित्य और यथार्थ स्वीकार करते हो तथा यह समझते हो कि घट-पट आदि बाह्य आकृतियों के भेद से उनके अनुसार ज्ञान ही उत्पन्न होता है और बदलता रहता है, तो ऐसे मत के मानने से बड़ा अनर्थ हो जायेगा। क्योंकि इस प्रकार जगत् के कर्त्ता आत्मा की नित्य सत्ता और जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्ति भी सिद्ध न हो सकेगी। यदि कदाचित् ऐसा स्वीकार भी कर लिया जाये तो देह और सम्वत्सरादि कालावयवों के सम्बन्ध से होने वाली जीवों के जन्म-मरण आदि अवस्थाएँ भी नित्य होने के कारण दूर न हो सकेंगी, क्योंकि तुम देहादि पदार्थ और काल की नित्यता स्वीकार करते हो।

लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्प जीविनाम्।
ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्ध परायुषः॥ 30॥ [133]

– सारे लोक और लोकपालों की आयु भी केवल एक कल्प है। इसलिए मुझसे भयभीत रहते हैं। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं ब्रह्मा भी मुझसे भयभीत रहते हैं, क्योंकि उनकी आयु भी काल से सीमित केवल दो 'परार्ध' है।

काल आत्माऽऽगमो लोकः स्वभावो धर्म एव च।
इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति॥ 34॥

– जब माया के गुणों में 'क्षोभ' होता है, तब मुझ आत्मा को ही काल,

जीव, वेद, लोक, स्वभाव और धर्म आदि अनेक नामों से निरूपित किया जाता है।

परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन्।
काल सूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात्॥ 12॥[134]

– जो योगी वायु आदि चार भूतों के परमाणुओं को मेरा ही रूप समझकर चित्त को 'तदाकार' कर देता है, उसे 'लघिमा' सिद्धि प्राप्त हो जाती है– उसे परमाणुरूप काल के समान सूक्ष्म वस्तु बनने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है।

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् काल विग्रहे।
स् ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञ चोदनाम॥ 15॥

– जो त्रिगुणमयी माया के स्वामी मेरे 'कालस्वरूप' विश्व की धारणा करता है, वह शरीरों और जीवों को अपनी इच्छानुसार प्रेरित करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। यह 'ईशित्व' नामक सिद्धि है।

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम्।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः॥ 10॥[135]

– गतिशील पदार्थों में मैं 'गति' हूँ। अपने अधीन करने वालों में मैं 'काल' हूँ। गुणों में मैं उनकी साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान पदार्थ हैं, उनमें मैं उनका स्वाभाविक गुण हूँ।

संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाभिजित्॥ 27॥

– सदा सावधान रहकर जागने वालों में मैं सम्वत्सर नामक काल हूँ। ऋतुओं में वसन्त हूँ। मासों में मार्गशीर्ष हूँ और नक्षत्रों में अभिजित् हूँ।

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः।
कृत्य कृत्याः प्रजा जात्याः तस्मात् कृतयुगं विदुः॥ 10॥[136]

– जिस समय 'कल्प' का प्रारम्भ हुआ था और पहला सत्ययुग चल रहा था, उस समय सभी मनुष्यों का 'हंस' नामक एक ही वर्ण था। उस युग में सब लोग जन्म से ही कृतकृत्य होते थे इसीलिए उसका एक नाम 'कृतयुग' प्रसिद्ध हुआ।

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृष रूपधृक्।
उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्त किल्बिषाः॥ 11॥

– उस युग में केवल 'प्रणव'(ॐ) ही वेद था और तप, शौच, दया और सत्य रूप चार चरणों से युक्त में ही वृषभ रूपधारी धर्म था। उस समय के निष्पाप एवं परम तपस्वी मुझ हंस स्वरूप शुद्ध परमात्मा की उपासना करते थे।

त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात् त्रयी।
विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः॥ 12॥

– त्रेता युग शुरू होने पर मेरे हृदय से, श्वास-प्रश्वास के द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद रूपी त्रयी विद्या प्रकट हुई और उस त्रयी विद्या से होता, ऊध्वर्यु और उद्गाता के कर्म रूप तीन भेदों वाले 'यज्ञ' के रूप से मैं प्रकट हुआ।

नित्यदा ह्यंग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च।
कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते॥ 42॥[137]

– काल की गति सूक्ष्म है। उसे साधारणत: देखा नहीं जा सकता। उसके द्वारा प्रतिक्षण शरीरों की उत्पत्ति और नाश होते रहते हैं। सूक्ष्म होने के कारण ही प्रति क्षण होने वाले जन्म-मरण नहीं दिखायी पड़ते।

यथार्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः।
तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः॥ 43॥

– जैसे काल के प्रभाव से दिये की लौ, नदियों के प्रवाह अथवा वृक्ष के फलों की विशेष-विशेष अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, वैसे ही समस्त प्राणियों की आयु, अवस्था आदि भी बदलती रहती है।

निषेक गर्भजन्मानि बाल्य कौमार्य यौवनम्।
वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव॥ 46॥

– गर्भाधान, गर्भवृद्धि, जन्म, बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु – ये नौ अवस्थाएँ शरीर की हैं जो काल के कारण होती हैं।

कालस्तु हेतुः सुख दुःखयोश्चेत्।
किमात्मनस्तत्र तदात्म कोऽसौ।
नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत् स्यात्
क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम्॥ 56॥

– यदि ऐसा माने कि काल ही सुख-दुःख का कारण है तो आत्मा पर उसका क्या प्रभाव ? क्योंकि काल तो आत्मस्वरूप ही है। जैसे आग, आग को नहीं जला सकती और बर्फ, बर्फ को नहीं गला सकता, वैसे ही आत्मस्वरूप 'काल' अपनी आत्मा को ही सुख-दुःख नहीं पहुँचा सकता। फिर किस पर क्रोध किया जाये ? आत्मा शीत, उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से सर्वथा अतीत है।

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत्।
गुण प्रवाह एतस्मिन् उन्मज्जति निमज्जति॥ 15॥

– मैं काल रूप से कर्मों के अनुसार 'फल' का विधान करता हूँ। इस गुण प्रवाह में पड़कर जीव कभी डूब जाता है, और कभी ऊपर आ जाता है– कभी उसकी अधो-गति होती है और कभी उसे पुण्यवश उच्च-गति प्राप्त हो जाती है।

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः।
सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत् त्रितयं त्वहम्॥ 19॥[138]

– इस 'प्रपंच' का उपादान कारण प्रकृति है। परमात्मा अधिष्ठान है और इसको प्रकट करने वाला 'काल' है। व्यवहार काल की यह त्रिविधता वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप है और मैं वही शुद्ध ब्रह्म हूँ।

सर्गः प्रवर्त्तते तावत् पौर्वापर्येण नित्यशः।
महान् गुण विसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम्॥ 20॥

– जब तक परमात्मा की ईक्षणशक्ति अपना काम करती रहती है, जब तक उनकी पालन प्रवृत्ति बनी रहती है, तब तक जीवों के कर्म भोग के लिए कारण कार्य रूप से अथवा पिता-पुत्रादि के रूप से यह सृष्टि चक्र निरन्तर चलता रहता है।

विरण्मयाऽऽसाद्यमानो लोक कल्प विकल्प कः।
पंचत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह॥ 21॥

– यह 'विराट्' ही विविध लोकों की सृष्टि, स्थिति और संहार की लीला भूमि है। जब मैं कालरूप से इसमें व्याप्त होता हूँ, प्रलय का संकल्प करता हूँ, तब यह भुवनों के साथ विनाश रूप विभाग के योग्य हो जाता है।

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते।
धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते॥ 22॥
अप्सु प्रलीयते गन्ध, आपश्च स्वगुणे रसे।
लीयते ज्योतिषि रसो, ज्योती रूपे प्रलीयते॥ 23॥
रूपं वायौ सच स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे।
अम्बरं शब्द तन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु॥ 24॥
योनि र्वैकारिके सौम्य लीपते मनसीश्वरे।
शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः॥ 25॥
स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः।
तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत् काले लीयतेऽव्यये॥ 26॥

– उसके लीन होने की प्रक्रिया यह है कि प्राणियों के शरीर अन्न में, अन्न बीज में, बीज भूमि में और भूमि गन्ध तन्मात्रा में लीन हो जाती है।

गन्ध जल में, जल अपने गुण रस में, रस तेज में और तेज रूप में लीन हो जाता है।

रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में तथा आकाश शब्द तन्मात्रा में लीन हो जाता है। इन्द्रियाँ अपने कारण देवताओं में और अन्ततः राजस अहंकार में समा जाती हैं। राजस अहंकार अपने नियन्ता सात्विक अहंकार रूप मन में, शब्द तन्मात्रा पंचभूतों के कारण तामस अहंकार में और सारे जगत् को मोहित करने में समर्थ त्रिविध-अहंकार महत्तत्त्व में लीन हो जाता है। ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति प्रधान महत्तत्त्व अपने कारण गुणों में लीन हो जाता है।

गुण अव्यक्त प्रकृति में और प्रकृति अपने प्रेरक अविनाशी 'काल' में लीन हो जाती है।

कालो मायामये जीवे, जीव आत्मनि मय्यजे।
आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापाय लक्षणः॥ 27॥

– 'काल' मायामय जीव में और जीव मुझ अजन्मा आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा किसी में लीन नहीं होता, वह उपाधिरहित अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है। वह जगत् की सृष्टि और लय का अधिष्ठान एवं अवधि है।

द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः।
श्रद्धावस्थाऽऽकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि॥ 30॥[139]

– द्रव्य, देश, फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा अवस्था, देव-मनुष्य-तिर्यगादि शरीर और निष्ठा – ये सभी त्रिगुणात्मक हैं।

देहेन्द्रिय प्राण मनोऽभिमानो,
जीवोऽन्तरात्मा गुण कर्म मूर्त्तिः।
सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः,
संसार आधावति कालतन्त्रः॥ 16॥[140]

– देह, इन्द्रिय, प्राण और मन में स्थित आत्मा ही जब उनका अभिमान कर बैठता है, उन्हें अपना स्वरूप मान लेता है– तब उसका नाम 'जीव' हो जाता है। उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा की मूर्त्ति है – गुण और कर्मों का बना हुआ लिंग शरीर। उसे ही कहीं सूत्रात्मा कहा जाता है और कहीं 'महत्तत्त्व'। उसके और भी बहुत से नाम हैं। वही 'कालरूप' परमेश्वर के अधीन होकर जन्म-मृत्यु रूप संसार में इधर-उधर भटकता रहता है।

अर्थ-वेद की कालावधारणा

'अर्थवेद' या अर्थशास्त्र, अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है। मतान्तर से यह 'ऋग्वेद' का उपवेद है। इसका प्रतिपाद्य-विषय-वार्ता, (कृषि-वाणिज्य), अर्थ (धन) देने वाली जीविका, लोकव्यवहार और विज्ञान है। सम्पत्ति शास्त्र, राजनीति, शासन, दण्डनीति, वर्णाश्रम विभाग इत्यादि अर्थवेद के ही विषय हैं। प्राचीन अर्थशास्त्र ग्रन्थ, शास्त्रार्थ चन्द्रोदय, सम्पत्तिशास्त्र, नीतिप्रभा, काश्यपीय दण्ड नीति, शुक्रनीति कामन्दकीय नीतिसार, कौटिल्य अर्थशास्त्र इत्यादि हैं। चाणक्य सूत्र, वृद्ध-चाणक्य, पंचतन्त्र, हितोपदेश इत्यादि नीति-ग्रन्थ इसी 'अर्थवेद' या 'अर्थशास्त्र' की विभिन्न शाखाएँ हैं। 'काल' शब्द को इन ग्रन्थों में किन अर्थों में

ग्रहण किया गया है, यह दृष्टव्य है-

(1) *कालवित् कार्यं साधयेत्॥ चाणक्य सूत्र 107॥*

समय की गतिविधि जानने वाले को चाहिए कि वह अनुकूल-समय आने पर तत्काल अपना कार्य सिद्ध करे।

(2) *कालातिक्रमात् काल एव फलं पिबति॥ चा.सू. 108॥*

एक के बाद दूसरे कार्य को तुरन्त प्रारम्भ कर देना चाहिए। अन्यथा विलम्ब करने पर कार्य के फल को 'काल' ग्रहण कर लेता है।

(3) *क्षणं प्रति काल-विक्षेपं न कुर्यात् सर्वकृत्येषु॥ चा. सूत्र 109॥*

एक क्षण के लिए भी 'काल विक्षेप' (अनावश्यक विलम्ब) न करे।

(4) *नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत॥ चा.सू. 112॥*

नीति के जानकार को चाहिए कि वह किसी कार्य के आरम्भ में देश-काल का विचार भलीभाँति कर ले।

(5) *नास्त्यनन्तरायः काल-विक्षेपे॥ चा.सू. 152॥*

अवसर चूक जाने पर कार्य में अवश्य ही बाधा उपस्थित हो जाती है।

(6) *यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले॥ चा.सू.271॥*

समय आने पर 'लपसी' भी प्राणरक्षक साबित होती है।

(7) *समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवंति॥ चा.सु. 273॥*

एक ऐसा भी समय आता है जब 'प्रभुत्व' आवश्यक-प्रयोजन बन जाता है। अर्थात् ऐश्वर्य की आवश्यकता अनुभव होने लगती है।

(8) *नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति॥ चा.सू. 323॥*

'नक्षत्रों' या उनके 'नक्षत्रकाल' से भावी सिद्धि या असिद्धि की जानकारी (सूचना) मिल जाती है।

(9) *न त्वरितस्य नक्षत्र-परीक्षा॥ चा.सू. 324॥*

अपने कार्य की सिद्धि चाहने वाले व्यक्ति को, ऐन मौके पर नक्षत्र-परीक्षा करके अपने भाग्य को दाँव पर नहीं लगाना चाहिए।

(10) *राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम्॥ चा.सू.371॥*

व्यक्ति को चाहिए कि वह हमेशा 'राजा' (या शासक) से भयभीत (अथवा उसकी तरफ से सावधान) बना रहे।

वृद्ध चाणक्य (चाणक्य नीति दर्पण)

लगभग सौ वर्ष पूर्व, हिन्दू-समाज में 'वृद्ध-चाणक्य' या 'चन्नाइके' पढ़ने-पढ़वाने का प्रचलन था। यह छोटा सा ग्रन्थ 'चाणक्य-नीति-दर्पण' के नाम से वर्तमान में भी उपलब्ध है। इसके नीति-सम्बन्धी सुभाषित आज भी पसंद किये जाते हैं। इस ग्रन्थ के 'काल-सम्बन्धी' कुछ श्लोक प्रस्तुत हैं -

(1) *जानीयात् प्रेषणे भृत्यान्, बान्धावान् व्यसनागमे।*
मित्रं चापत्तिकाले तु, भार्यां च विभवक्षये॥ 11॥

काम में लग जाने पर सेवकों की, दु:ख पड़ने पर बान्धवों की, आपत्तिकाल में मित्रों की और वैभव का नाश हो जाने पर पत्नी की परीक्षा हो जाती है। (अ.-1, श्लोक-11)

(2) *दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जन:।*
सर्पो दशति काले तु, दुर्जनस्तु पदे-पदे॥ 4॥

दुर्जन और साँप, दोनों में से साँप अच्छा है, क्योंकि साँप तो केवल एक बार डसता है, और दुर्जन पग-पग पर, डसता रहता है। (अ.-3, श्लोक-4)

(3) *कामधेनुगुणा विद्या, ह्यकाले फलदायिनी।*
प्रवासे मातृ-सदृशी, विद्यागुप्त धनं स्मृतम्॥ 5॥

'विद्या' में कामधेनु जैसे गुण होते हैं। विद्या 'अकाल' में भी फल देती है। अर्थात् असमय में भी काम आती है। विदेश में माता के समान पालन करती है। विद्या एक प्रकार से 'गुप्तधन' है। (अ.-4, श्लोक-5)

(4) *क: काल: कानि मित्राणि, को देश: कौव्ययागमौ।*
कस्याहं का चमेशक्तिरिति-चिंत्यं मुहुर्मुहु:॥ 18॥

किस काल में क्या करना चाहिए, मित्र कौन है, देश कौन है, लाभ-व्यय क्या है, मैं किसका हूँ, मेरी शक्ति कितनी है, इन बातों पर हमेशा विचार करना चाहिए। (अ.-4, श्लोक-18)

(5) *कालो पचति भूतानि, काल: संहरते प्रजा:।*
काल: सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रम:॥ 7॥

काल सब प्राणियों को खा जाता है, काल सारी सृष्टि का नाश कर देता है, जब 'प्रलय' हो जाता है तब काल ही ऐसा है जो जागता रहता है। 'काल' को टाला नहीं जा सकता। (अ.-6, श्लोक-7)

(6) *इन्द्रियाणि च संयम्य, बकवत् पंडितो नर:।*
देशकाल बलं ज्ञात्वा, सर्व कार्याणि साधयेत्॥ 17॥

विद्वान् पुरुष को चाहिए कि इन्द्रियों का संयम करके देश और काल के बल को समझकर, बगुले के समान सारे कार्यों को साधे। (अ.-6, श्लोक-17)

(7) *गूढ मैथुन चारित्वं काले-काले च संग्रहम्।*
अप्रमत्तमविश्वासं पंचशिक्षेच्च वायसात्॥ 19॥

छिप कर मैथुन करना, समय-समय पर संग्रह करना, सदैव सावधान रहना और किसी पर विश्वास न करना - ये पाँच गुण कौए से सीखना चाहिए। (अ.-6, श्लोक-19)

(8) *वृद्धकाले मृता भार्या, बन्धुहस्तगतं धनम्।*
भोजनं च पराधीनं, तिस्र: पुंसां विडंबना॥ 9॥

बुढ़ापे में भारी पत्नी, बन्धु के हाथ में गया धन, और दूसरों के आधीन भोजन, ये तीनों बातें पुरुषों के लिए अत्यन्त दु:खदायी होती हैं। (अ.-8, श्लोक-9)

(9) *प्रातर्द्यूत प्रसंगेन, मध्याह्ने स्त्री प्रसंगत:।*
रात्रौ चौर प्रसंगेन, कालोगच्छति धीमताम्॥ 11॥

बुद्धिमान पुरुषों का प्रात:काल जुआ की कथा से, मध्याह्न स्त्री-प्रसंग से, और रात्रि चौर कथा से व्यतीत होता है। दूसरे पक्ष में, प्रात: का समय महाभारत की कथा से, मध्याह्न रामायण की कथा से और रात्रि श्रीमद्भागवत की कथा से व्यतीत होता है। (अ.-9, श्लोक-11)

(10) *एकाहारेणसन्तुष्ट:, षट्कर्म निरत: सदा।*
ऋतु कालाभिगामी च, स विप्रो द्विज उच्यते॥ 12॥

जो ब्राह्मण एक बार के भोजन से संतुष्ट रहता है, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान लेना और दान देना - ये षटकर्म करता है, तथा केवल ऋतुकाल में ही अपनी भार्या का संग करता है, उसे 'द्विज' कहा जाता है। (अ.-11, श्लोक-12)

(11) *साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूताहि साधव:।*
कालेन फलते तीर्थं, सद्य: साधु समागम:॥ 8॥

साधु तीर्थ रूप होते हैं, अत: उनका दर्शन मात्र 'पुण्य लाभ' कराता है। साधुओं की संगति से समय भी तीर्थ का पूरा फल देता है। (अ.-12, श्लोक-8)

(12) *गते शोको न कर्त्तव्यो, भविष्यं नैव चिन्तयेत्॥*
वर्तमानेन कालेन, प्रवर्त्तन्ते विचक्षणा:॥ 2॥

जो वस्तु चली गई, उसके लिए श्लोक नहीं करना चाहिए। भविष्य के लिए भी चिंतित नहीं होना चाहिए। चतुर और बुद्धिमान लोग 'वर्तमान काल' की स्थिति पर विचार करके अपना कदम आगे बढ़ाते हैं। (अ.-13, श्लोक-2)

(13) *अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या,अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।*
यत्सार भूतं तदुपासनीयं हंसो यथाक्षीरमिवाम्बु मध्यात्॥ 10॥

शास्त्र अगणित हैं। विद्याएँ भी बहुत हैं। काल (अपने पास का समय) बहुत थोड़ा है और विघ्न-बाधाएँ बहुत हैं। अत: हमें जितना कुछ 'सार

स्वरूप' लगे उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। जैसे कि हंस पानी में मिले दूध को ग्रहण कर लेता है, और पानी छोड़ देता है। (अ.-16, श्लोक-10)

(14) *कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिण: कस्यापदोऽस्तंगता:।*
स्त्रीभि: कस्य न खण्डितं भुविमन:, को नाम राजा प्रिय:।
क: कालस्य न गोचरत्वमगमत्, कोऽर्थी गतो गौरवम्।
को वा दुर्जन दुर्गुणेषु पतित: क्षामेणयात: पथि॥ 4॥

कौन है जो धन पाकर गर्वित नहीं हुआ ? ऐसा कौन विषयी है जिसकी आपदाएँ नष्ट हुईं ? ऐसा कौन है जिसका मन स्त्रियों के द्वारा खण्डित न हुआ हो ? कौन है जो सदैव राजाओं का 'प्रिय' रहा हो ? कौन है जो 'काल की दृष्टि' से बच पाया हो ? ऐसा 'याचक' कौन है जिसकी याचना से उसका गौरव बढ़ा हो ? तथा ऐसा कौन है जो दुष्टों की संगति में पड़कर भी संसार-पथ में 'निर्दोष' होकर चल पाया हो ? (अ.-17, श्लोक-4)

(15) *न निर्मिता केन न दृष्ट पूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरंगी।*
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य, वनाश काले विपरीत बुद्धि:॥ 5॥

सोने की 'मृगी' न पहले किसी ने रची और न देखी। कभी सुनने में भी नहीं आया कि स्वर्ण मृग होता है। फिर भी श्रीराम के मन में उसके प्रति तृष्णा जाग्रत हुई। कहा भी है कि जब विनाशकाल आता है, तो बुद्धि विपरीत हो जाती है। (अ.-17, श्लोक-5)

धनुर्वेद की कालावधारणा

'चरणव्यूह' नामक ग्रन्थ के अनुसार 'धनु-वेद' यजुर्वेद का उपवेद है। धनुर्वेद के आदि प्रवक्ता महादेव जी है जिन्होंने इसका सर्वप्रथम उपदेश परशुराम जी को किया था। प्राप्त धनुर्वेद संहिता के प्रवक्ता राजर्षि वसिष्ठ हैं जो महर्षि विश्वामित्र को इस संहिता का उपदेश कर रहे हैं। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत 'काल' के कुछ समयवाचक अवयवों की अनिवार्य-उपयोगिता पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित कराया गया है।

तदनुसार धनुर्विद्या के आचार्य को निर्देश दिया गया है कि वह अपने शिष्यों को धनुर्विद्या की शिक्षा देने से पूर्व 'काल' के निम्नलिखित अवयवों का ध्यान अवश्य रखे –

(1) धनुर्विद्या-शिक्षण का मुहूर्त्त, हस्त, पुनर्वसु पुष्य, रोहिणी, तीनों उत्तराओं, अनुराधा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रों के काल में ही रखे।

(2) सारे कार्य जन्म के तथा तीसरे, छठे, सातवें, दशवें, ग्यारहवें, चन्द्रमा काल में करावे।

(3) तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी और द्वादशी – ये छै तिथियाँ शुभ हैं।

(4) शस्त्रारम्भ में रवि, शुक्र और गुरु – ये तीन वार शुभ हैं। [141]

यदि सरकण्डे के बाण बनाना हो, तो सरकण्डों का चयन (ग्रहण) मार्गशीर्ष-मास शरत्काल अथवा वृश्चिक राशि के सूर्य काल में करना चाहिए॥ 58॥ [142]

बाण के फलों पर 'पायन' (विषलेपन) करना हो तो सरकण्ठे की उस जड़ का लेप करे जो 'स्वाति नक्षत्र' में पड़ी बूँदों से पीले रंग की हो गई हो। इसकी पहिचान यह है कि उक्त जड़ बिना हवा चले ही अपने आप हिलती रहती है। इस जड़ का लेप बाण के घाव को 'असाध्य' बना देता है॥ 69॥ [143]

'लक्ष्य वेध' का अभ्यास करना हो तो सूर्य के उदय काल से मध्याह्न काल तक पश्चिम की तरफ निशाना साधे, और अपराह्न से सायं तक पूर्व की ओर निशाना लगाने का अभ्यास करे। निशाना किसी भी दिशा में लगाना हो, इस बात का अवश्य ध्यान रखे कि सूर्य लक्ष्य साधक के पीठ पीछे अथवा दाहिनी तरफ रहे॥ 104॥ [144]

विद्याभ्यास के लिए वर्जित दिन को 'अनध्याय' कहते हैं। आजकल इसे अवकाश या छुट्टी कहा जाता है।

धनुर्विद्या का शिक्षण या अभ्यास इन तिथियों या कालों में नहीं करना चाहिए –

1. अष्टमी, अमावस और चौदस की तिथियों में। ये तीनों तिथियाँ वर्जित हैं। पूर्णमासी तिथि में आधे दिन तक अभ्यास नहीं करना चाहिए॥ 111॥ [145]

2. बिना समय के बादल गरज रहे हों, अथवा आकाश में बादल छाये हों तो अभ्यास नहीं करना चाहिए॥ 112॥

3. अनुराधा से लेकर सोलहवें नक्षत्र तक के काल में सूर्य की स्थिति हो तो वह अनभ्यास काल होता है। अर्थात् इस को 'अकाल' कहा जाता है॥ 113॥

4. आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक – ये पाँचों मास अभ्यास के लिए शुभ हैं॥ 114॥

5. अरुणोदय वेला (सूर्योदय काल) में यदि बादल गरज रहे हों तो उस दिन 'अनध्याय' होता है ॥ 15॥

वसिष्ठ जी का कथन है कि हस्त नक्षत्र में रविवार हो तो 'जलपीपल' के कन्द का लेपन करना चाहिए। इससे 'कायर' धनुर्धारी भी शूरों के अभिमान को चूर-चूर कर देता है। [146]

यदि रविवार को पुष्य नक्षत्र हो और 'सिद्ध योग' हो तो 'अपामार्ग' की जड़ लेकर रख ले। फिर जब किसी दिन युद्ध का अवसर आये तो उस दिन अपने शरीर पर लेपन कर ले। इससे शत्रु द्वारा चलाये गये अस्त्र-शस्त्रों का घाव नहीं लगता है।

रविवार के दिन 'औंधाहूली', शंखाहूली, छुईमुई, वनमोगरा, कमोदिनी, सहदेई, मूंज और आक के पत्ते, विष्णुक्रान्ता – इन सभी को ग्रहण करके हाथ में बाँधे अथवा शरीर पर लेपन करे तो अस्त्र-शस्त्र तथा साँप आदि का भय नहीं रहता।

हस्त नक्षत्र में 'छछूंदरी' का चूरा (चूर्ण) लेकर रखे। उसके प्रभाव से हिंसक पशु निकट नहीं आते।

पुष्य-रविवार को 'पाढर' की जड़ उखाड़कर मुँह में रख लेने से देह नहीं फटती, घाव नहीं लगते।

युद्ध के समय यदि राहु सहित योगिनी पीछे की तरफ हो तो धनुर्धारी अकेला ही बहुत से शत्रुओं को मार गिराता है।

योगिनी ज्ञान

प्रतिपदा और नवमी तिथि को प्रथम आधे प्रहर में राहु-संहिता योगिनी होती है। यह पूर्व दिशा में स्थित होती है॥ 1 ॥ [147]

द्वितीया और दसवीं तिथि के पाँचवें आधे प्रहर में राहु सहित योगिनी पश्चिम दिशा में उदय होती है॥ 2॥

तृतीया और एकादशी के तीसरे आधे याम में राहु सहित योगिनी दक्षिण में घूमती है॥ 3॥

चतुर्थी और द्वादशी के सातवें आधे याम में उत्तर दिशा में रहती है॥ 4॥

पंचमी और त्रयोदशी के आठवें आधे प्रहर में नैऋत्य कोण में रहती है॥ 5॥

षष्ठी और चतुर्दशी तिथि में दूसरे आधे याम में वायुकोण में चलती है॥ 6॥

सप्तमी और पूर्णिमा के चौथे आधे प्रहर में ईशान कोण में रहती है॥ 7॥

अष्टमी और अमावस को छठे आधे याम में अग्निकोण में दिखायी देती है।

राहु-सहित योगिनी की स्थिति के ये ही लक्षण हैं॥ 8॥

जिस योद्धा के (जन्म से) छठे स्थान में क्रूर ग्रह रवि, मंगल और शनि राहू केतू आदि पापग्रह पड़े हों, वह युद्ध में लड़ने पर भी सफल नहीं होता॥ 60॥ [148]

गान्धर्व वेद और काल

'गान्धर्व वेद' सामवेद का उपवेद है। यह उपवेद 'गान्धर्व वेद' नाम से अब उपलब्ध नहीं है। तथापि इस वेद के 'उपजीवी ग्रन्थ' भरत मुनि के नाट्यशास्त्र, मतंगमुनि के 'बृहद्देशी' नारदमुनि के 'संगीत मकरन्द' और शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' इत्यादि अनेक नाम रूपों में उपलब्ध है और भारतीय-संगीत में आधार ग्रन्थ माने जाते हैं।

'काल' को कोई छू नहीं सकता, देख नहीं सकता। तथापि गान्धर्व वेद के

आचार्यों ने 'काल' को अपने ढंग से छूने का, उसे बाँधने का, उसे देखने का तथा उसे सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में प्रदर्शित करने का सफल प्रयास किया है। वह केवल संगीतकारों का ही दु:साहस है कि उन्होंने 'काल' पर अपना अधिकार करने या उसे अनुशासन में लाने का यथासंभव सफल प्रयास किया है।

गान्धर्व वेद ने, काल के समानार्थी 'ताल' शब्द को जन्म दिया है। काल शब्द का जन्म 'कल' धातु से और 'ताल' का जन्म 'तल' धातु से हुआ है। इनमें से 'कल' धातु गत्यर्थक और 'तल' धातु प्रतिष्ठार्थक है। इन दोनों में ही 'घञ्' प्रत्यय लगाकर 'काल' और 'ताल' का रूप सिद्ध किया गया है। काल का अर्थ पदार्थों को गति प्रदान करके उन्हें 'अन्त' की ओर ले जाना है, तथा 'ताल' का अर्थ प्रतिष्ठा (या एक निश्चित स्वरूप) प्रदान करना है।

नरहरि चक्रवर्ती का कथन है कि 'ताल' समय का 'साम्य' रखने वाला, समय का बोधक, कालिक न्यूनाधिक्य नष्ट करने वाला, संगीत में प्रतिष्ठा उत्पन्न करके मुख्य आधार बनाने वाला होता है -

समयस्य समत्वेन व्यञ्जकत्वेन चाधिकम्।
तालयत्येष संगीतं य: स तालो निगद्यते॥
तालयति-प्रतिष्ठापयति। तल प्रतिष्ठायांधातु:। [149]

वस्तुत: 'ताल' एक 'काल चक्र' है, जो गायन, वादन तथा नृत्य को एक निश्चित स्वरूप, सुडौलता तथा प्रतिष्ठा प्रदान करता है। इसे समझने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण 'जल' (या किसी भी द्रव पदार्थ) तथा बर्तन का दिया जा सकता है। द्रव पदार्थ में मात्रा और भार तो होता है, किन्तु आकार नहीं होता। उसे जैसे भी बर्तन में डाला जाये, वह वैसा ही आकार धारण कर लेता है। उसके मात्रा-भार में कोई अन्तर नहीं आता।

ठीक इसी प्रकार गान-क्रिया, वादन-क्रिया और नृत्य-क्रिया, 'तालहीन अवस्था' में एक द्रव या तरल पदार्थ के समान होती है। जैसे, मिट्टी को सानकर जब हम किसी खिलौने के 'साँचे' में ढालते हैं तो वह मिट्टी एक निश्चित आकार प्राप्त करके अभीष्ट खिलौना (या मूर्ति) बन जाती है। ठीक इसी प्रकार 'ताल' रूपी साँचे के द्वारा गान-वादन या नृत्य क्रिया एक सुडौल रूप धारण कर लेती है।

एक अन्यतम उदाहरण 'छन्द' का दिया जा सकता है। जैसे 'चौपाई' नामक छन्द के आधार पर अनगिनती चौपाईयाँ बना ली जाती हैं, ठीक इसी प्रकार 'ताल' नामक छन्द संगीत को एक छन्दात्मक आधार प्रदान करता है।

'ताल' का एक अध्यात्मिक रूप भी है। महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है कि 'वीणा वादन' के तत्त्व को जानने वाला, श्रुति और जाति के ज्ञान में निपुण तथा 'ताल' का जानकर - आगे चल कर सीधे 'मोक्षमार्ग' को प्राप्त करते हैं-

वीणा वादन तत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन, मोक्षमार्गं सगच्छति॥ [150]

दामोदर पण्डित के अनुसार 'त' शिवरूपी और 'ल' पार्वती रूपी वर्ण हैं। शिव और शक्ति के 'समायोग' से जो शब्द बना वह 'ताल' है। [151]

तकारः शंकरः प्रोक्तः, लकारः पार्वतीस्मृतः।
शिवशक्ति समायोगात् ताल इत्यभिधीयते॥

पं. अहोबल के अनुसार- 'जगत् का हरण करने वाला काल', जब 'ताल' का रूप धारण कर लेता है, तो उसके कार गायन, वादन और नृत्य में विशेष प्रकार का सुख उत्पन्न होता है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय (प्रलय) इसी 'ताल' से ही होती है। कृमि, कीट, पशु इत्यादि की गति भी ताल से ही होती है। जो-जो जड़-चेतन जगत् के कर्म हैं, वे सब ताल के अनुसार ही होते हैं। सूर्यादि ग्रहों की गति भी ताल से ही होती है। ब्रह्मा का एक 'कल्प' भी ताल के अनुसार ही समाप्त होता है। क्रियाओं से परिच्छिन्न (नापा हुआ) काल ही 'ताल' कहलाता है।'

यतः प्रतिष्ठितं सर्वं काले, ताल इति स्मृतः।

- सम्पूर्ण जगत में 'काल' की प्रतिष्ठा 'ताल' के अनुसार है।

तकारः शिव जन्मा स्यादकारो विष्णुरुच्यते।
लकारो मारुतः प्रोक्तस्ताले देवा वसन्त्यमी॥ [152]

- तकार शिवरूपी, अकार विष्णु रूपी एवं लकार वायु रूपी है। इस प्रकार 'ताल' में तीनों देवों का निवास है। 'भरत कल्पलता मंजरी' के अनुसार भगवान्

शिव से नाद, नाद से मन और मन से जो काल उत्पन्न हुआ- वह 'ताल' नाम से प्रसिद्ध हुआ -

शभोरुत्पद्यते नादा, नादादुत्पद्यते मनः।
मनसो जायते कालः, सकालस्ताल संज्ञकः॥

- वैष्णव संगीत शास्त्र पृ.-104/मृदंग तबलाप्रभाकर/पृ.-9.

लगभग सभी प्राचीन संगीत ग्रन्थों में 'ताल' को इसी आध्यात्मिक रूप में देखा गया है।

'ताल' का निर्माण दोनों करतलों के संयोग और वियोग, एवं दश-प्राणों के समुचित मेल से होता है :-

हस्तद्वयस्य संयोगे, वियोगे चापि वर्तते।
व्याप्यमानो दश प्राणैः स कालः ताल संज्ञकः॥

ताल के 'दश-प्राण' निम्नलिखित है -

कालो मार्गः क्रियाङ्गानि ग्रहो जातिः कलालयाः।
यति प्रस्तार कश्चेति, ताल प्राणाः दशस्मृताः॥

(1) काल (2) मार्ग (3) क्रिया (4) अंग (5) ग्रह (6) जाति (7) कला (8) लय (9) यति (10) प्रस्तार।

काल - गान, वादन या नृत्य क्रिया में व्यतीत होने वाला समय। इसे इस प्रकार समझाया गया है -

क्षणादिरूपो यः कालः स प्राणत्वेन कीर्त्यते।
गीतादेस्तु मितिं कुर्वन् स एवायाति तालताम्॥ [153]

- जो काल 'क्षणादिरूप' है। वही प्राण रूप में जाना जाता है। वही काल जब गीत-नृत्य आदि की 'माप' करता है, जब 'तालता' को प्राप्त होता है।

अर्थात् जो काल 'क्षण' रूप है और गीत आदि का 'माप' करता है, वही संगीत में प्रयोज्य काल है, और 'ताल' रूप प्राप्त करता है।

‘क्षण’ रूपी काल कैसा होता है इसकी जानकारी ‘आञ्जनेय’ नामक आचार्य देते हैं–

पदमपत्रशतैकैकच्छेद कालः क्षणः स्मृतः।
लवः क्षणैरष्टभिः स्यात्काष्ठा स्यादष्टभिर्लवैः॥
स्यान्निमेषोष्ट काष्ठाभिः निमेषैरष्टभिः कला।
कला द्वयाच्चतुर्भागः स एव त्रुटिरुच्यते॥
चतुर्भागद्वयेनैव विन्दोरर्धं प्रकीर्त्तितम्।
अणुद्वयाद्द्रुतः प्रोक्तः, तद्द्वयाच्च लघुः स्मृतः॥
लघुद्वयात्तु वक्रः स्यात् लत्रयेण प्लुतो मतः।
इति तालगतिः प्रोक्ता तालज्ञैः पूर्वसूरिभिः॥ [154]

– कमल के सौ पत्रों को सुई से एक साथ छेदने पर जो समय लगता है, वह ‘क्षण’ काल है। आठ क्षण काल का एक ‘लव’, आठ लव की एक काष्ठा, आठ काष्ठा का एक निमेष, आठ निमेष की एक कला, दो कलाओं के 1/4 भाग को एक त्रुटि, दो त्रुटि के 1/4 भाग को एक ‘विन्द्वर्ध’ या अणु, दो अणु का एक द्रुत, दो द्रुत का एक लघु, दो लघु का एक गुरु तथा तीन लघु का एक प्लुत होता है।

ये संगीत में प्रयोज्य ‘कालावयव’ हैं। आजकल व्यवहार में मात्र – अणुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु और प्लुत का प्रयोग होता है। इन्हें ही ‘संगीत’ में प्रयोज्य ‘काल’ कहते हैं। यह ‘ताल’ का ‘प्रथम प्राण’ है।

‘काल’ का दूसरा ‘प्राण’ मार्ग है। मार्ग का सामान्य अर्थ ‘राह’ या ‘रास्ता’ है।‘मार्ग’ अर्थात् ‘ताल’ के प्रयोग, अथवा उसे वर्तने का रास्ता। शास्त्रकारों ने मार्ग चार प्रकार का बतलाया है –‘ध्रुव मार्ग, चित्र मार्ग, वार्तिक मार्ग तथा दक्षिण मार्ग’।

अथ मार्गाश्च चत्वारो ध्रुवश्चित्रश्च वार्तिकः। [155]

आचार्य शार्ङ्गदेव ने ताल के मार्ग चार बतलाये हैं, किन्तु भरतमुनि ने मात्र तीन मार्गों पर विचार किया है और वे क्रमशः चित्र, वार्तिक और दक्षिण मार्ग हैं। तदनुसार धुव्र मार्ग में एक, चित्र में दो, वार्तिक में चार और दक्षिण मार्ग में आठ मात्राओं से एक ‘पाद भाग’ (कला) का निर्माण होता है। इसीलिए चित्रमार्ग में ‘यथाक्षर’ (या एककल) वार्तिक मार्ग में द्विकल और दक्षिण मार्ग में ‘चतुष्कल’ ताल का प्रयोग होता है।

‘मार्ग’ और उसके चारों भेद, उस युग में प्रचलित थे, जबकि भारतीय संगीत विशुद्ध रूप से ‘भारतीय’ था और उस पर ‘देशी’ तथा (बाद में) ‘ईरानी संगीत’ का प्रभाव नहीं पड़ पाया था। वर्तमान में ‘मार्ग’ की अवधारणा में अन्तर आ गया है। [156]

प्राचीन अवधारणा के अनुसार ‘मार्ग’ के चारों भेदों को इस प्रकार समझा जा सकता है –

(1) ध्रुव मार्ग– मान लीजिए कि ‘ताल चक्र’ का एक आवर्तन चार मात्राओं (या चार संख्याओं) का है – तो ‘ध्रुव मार्ग’ में संख्याओं की गिनती एक समान गति में एक–दो–तीन चार क्रम से यथावत् चलती जायेगी, इसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा –

1. 2. 3. 4.	1. 2. 3. 4	1.2. 3. 4	1. 2. 3. 4
×	×	×	×

(2) चित्र मार्ग – इस मार्ग में मात्राएँ तो चार ही रहेंगी, किन्तु प्रत्येक मात्रा का ‘अक्षर काल’ 10–10 हो जायेगा। इसकी ‘लय’ द्रुत (तेज) हो जायेगी।

क्रियायें	1.	2.	3.	4
अक्षरकाल	× ।।।।।।।।।	× ।।।।।।।।।	× ।।।।।।।।।	× ।।।।।।।।।

(3) वार्तिक मार्ग – इस मार्ग में ताल की मात्राएँ आठ और अक्षर काल प्रति क्रिया पर दस–दस होगा।

क्रियायें	1.	2	3.	4	5.	6	7.	8
अक्षरकाल	10.	10	10.	10	10.	10	10.	10

(4) दक्षिण मार्ग – इस मार्ग में ताल की मात्राएँ सोलह और प्रत्येक मात्रा का अक्षर काल 10–10 होगा –

क्रियायें	1. 2. 3. 4.	5. 6. 7. 8.	9. 10. 11. 12.	13. 14. 15. 16.
अक्षरकाल	10. 10. 10. 10.	10. 10. 10.10.	10.10. 10. 10.	10. 10. 10. 10.

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत विख्यात पखावजी मृदंगाचार्य ‘कुदऊँ सिंह’ ने मार्ग के चारों भेदों को इस प्रकार से समझाया है –

'अथ मारग भेद । तहाँ ताल के मार्ग चार हैं –

एक, मन्दतर कहै – 'ठा की ठा'।

दूसरा, मन्द कहै – 'ठा'।

तीसरा, सीघ्र (शीघ्र) कहै – 'दुगुन'।

चौथा, शीघ्रतर कहै – 'दून की दून'।

उन्नीसवीं शताब्दी के ही 'संगीत दर्पण' के रचयिता (दतिया के) बिहारी लाल भट्ट ने भी 'मार्ग' के उपर्युक्त चार लक्षण बतलाये हैं – 'तहाँ ताल के मार्ग चार हैं – एक मन्दतर कहैं 'ठा' की 'ठा'। और दूसरा मन्द कहैं – 'ठा'। तीसरा शीघ्र कहैं 'दुगुन' और चौथा शीघ्रतर कहैं 'दून की दुगुन'।'

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 'ठा' संस्कृत भाषा के 'स्था' (या स्थाय) शब्द का देशी रूप है। इसका अर्थ वह 'लय' है जिसे गायक, वादक या नर्तक सर्वप्रथम स्थापित करता है।

दरअसल 'मार्ग' शब्द उस 'गति' या चाल का द्योतक है, जिसके अनुसार एक गायक या वादक अपना गायन-वादन प्रस्तुत करता है।

ताल का तीसरा प्राण 'क्रिया' है। पूर्व आचार्यों ने किसी 'ताल' को अभिव्यक्त करने के लिए जो नियम बनाये हैं, उनमें से 'क्रिया' प्रमुख है। सामान्य व्यक्ति 'ताल' का अर्थ, ताल की मात्राओं की निश्चित गणना, या निर्धारित मात्राओं के चक्रीय आवर्तन के रूप में ग्रहण करता है। यह सच है कि ताल की मात्राएँ निश्चित तथा पूर्व निर्धारित होती हैं, किन्तु ताल केवल मात्राओं का चक्र नहीं होता। उसका 'ताल स्वरूप', ताल खण्डों या ताल-विभागों द्वारा निर्मित होता है। ये 'खण्ड' विभिन्न कालमानों से निर्मित रहते हैं। इन्हें प्रदर्शित करने के लिए दोनों हाथों का पारस्परिक संयोग-वियोग या एक दूसरे पर आघात (या 'पात') करना पड़ता है। अथवा दोनों हाथों से कुछ निश्चित संकेत करने पड़ते हैं। इन्हें ही 'क्रिया' कहते हैं।[157]

क्रिया दो प्रकार की है – नि:शब्द क्रिया और सशब्द क्रिया।

नि:शब्द क्रिया चार प्रकार की की जाती है – (क) आवाप (ख) निष्क्राम

(ग) विक्षेप और (घ) प्रवेशक।

(क) *आवापो दक्षिणे पार्श्वे पताकोऽधस्तलेन च॥*

इस क्रिया में हाथ को 'पताका मुद्रा' में दाहिनी ओर ले जाकर हथेली को उलटा करना पड़ता है। शार्ङ्गदेव के अनुसार हाथ ऊँचा करके उंगलियों का 'कुंचन' करना पड़ता है।

(ख) *उत्तानेन पताकेन वामे निष्क्रामको भवेत्॥ 30॥*

– अपने बायें पार्श्व में 'पताका हस्त' को ऊँचा उठाना 'निष्क्राम-क्रिया' है।

(ग) *ऊर्ध्वंगम पताकेन विक्षेपोऽधस्तलेन च ॥ 31॥*

– उलटी हथेली को पताका मुद्रा में ऊपर ले जाने को 'विक्षेप-क्रिया' कहते हैं।

(घ) *उसे देशे-पताका स्यात् कुञ्चनेन प्रवेशक:॥ 32॥*

– पताका मुद्रा बनाकर वक्ष:स्थल तक ले जाकर कुंचित करना (सिकोड़ना) 'प्रवेशक-क्रिया' है।

'सशब्द क्रिया' भी चार प्रकार की होती है- (च) ध्रुव (छ) शम्पा (ज) ताल और (झ) सन्निपात।

(च) *ध्रुव: शब्दस्य पात: स्यात् छोटिका शब्द पूर्वक:॥ 34॥*

– 'ध्रुव क्रिया' में चुटकी बजाकर हाथ को नीचे गिराना पड़ता है।

(छ) *शम्पा दक्षिण हस्ते तु यदा वामेन ताडनम॥ 35॥*

– दायीं हथेली पर बायीं हथेली से आघात करना 'शम्पा-क्रिया' है।

(ज) *ताडनं दक्षिणे नैव तालो वाम करे पुन:॥ 36॥*

– बायीं हथेली पर दायीं हथेली से आघात करना 'ताल-क्रिया' है।

(झ) सन्निपात

उभर्याश्च समायोगे संनिपातोऽमिधीयते॥ 37॥

– दोनों हथेलियों से परस्पर आघात करना 'सन्निपात क्रिया' है।

– उपर्युक्त नि:शब्द और सशब्द-क्रियाओं के द्वारा 'ताल' के अवयवों को अभिव्यक्त किया जाता है।

ताल का चौथा प्राण 'अंग' है। ताल के 'अंग' वस्तुत: 'कालावयव' हैं, जिनके कारण ताल का मूर्त रूप स्पष्ट होता है। ये अंग संख्या में सात हैं –

(1) अनुद्रुत (2) द्रुत (3) द्रुत विराम (4) लघु (5) लघु विराम (6) गुरु और (7) प्लुत।

(1) अनुद्रुत – यदि ताल की एक मात्रा को चार ह्रस्वाक्षरों के तुल्य माना जाये तो अनुद्रुत का 'काल' एक ह्रस्वाक्षर के बराबर होता है। ताल लिपि में अनुद्रुत को 'अर्धचन्द्र' के चिह्न से व्यक्त करते हैं। अनुद्रुत का देवता वायु है। 'अनुद्रुत' के काल की पहिचान तीतुर की बोली में व्यतीत होने वाले काल से की जा सकती है। गणित की दृष्टि 1/4 मात्रा अनुद्रुत होती है।

(2) द्रुत – यह काल-मान दो 'अनुद्रुत' के बराबर होता है। इसे 'वलय' (गोलाकार) से व्यक्त करते हैं। द्रुत का देवता वरुण है। इसकी पहचान 1/2 मात्रा या 'चिरवा' (गौरैया चिड़िया के नर) की बोली से की जा सकती है।

(3) द्रुत विराम– इसका कालमान तीन अनुद्रुत के बराबर होता है। एक द्रुत और एक अनुद्रुत का सम्मिलित काल 'द्रुत विराम' कहलाता है। इसे 'पौन' (3/4) मात्रा समझना चाहिए। द्रुत विराम का देवता रुद्र है। इसकी पहिचान बगुला की बोली के कालमान से की जा सकती है। इसका चिह्न द्रुत के ऊपर शिखा है।

(4) लघु – पूर्वकाल में लघु का कालमान पाँच ह्रस्वाक्षरों के उच्चारण काल के तुल्य माना जाता था। वर्तमान में चार ह्रस्वाक्षरों के बराबर रह गया है। इसका चिह्न 'दण्डाकार' या खड़ी पाई है। लघु के देवता हरि (विष्णु) हैं। यह पूरी एक मात्रा के बराबर है। इसकी पहिचान पपीहा की बोली के कालमान से की जा सकती है।

(5) लघु विराम– लघु विराम के देवता 'प्रजापति' हैं। यह डेढ़ मात्रा के तुल्य

होता है। इसका चिह्न 'लघु के ऊपर शिखा' है। इसकी पहिचान कोयल की बोली के कालमान से की जा सकती है। एक लघु और एक द्रुत का सम्मिलित काल 'लघु विराम' होता है।

(6) गुरु – गुरु के देवता भी 'हरि' हैं। गुरु का चिह्न तीन तरफ वक्र रेखा (या अवग्रह) है। इसका कालमान दो लघुओं के बराबर है अर्थात् एक लघु का आघात और एक लघु का ठहराव। इसकी पहिचान कौआ की बोली से की जा सकती है।

(7) प्लुत– प्लुत का कालमान एक गुरु और एक लघु के तुल्य होता है। यह तीन मात्रा के बराबर होता है। इसका चिह्न गुरु के ऊपर शिखा है। कुक्कुट या मुर्गे की बोली एक प्लुत के तुल्य होती है। 'ओम्कार' का सामान्य उच्चारण भी एक प्लुत के बराबर होता है।

इन सभी तालांगों के अन्यतम लक्षण भी हैं – अतिसूक्ष्मघात को अनुद्रुत, सूक्ष्मघात को द्रुत, पूर्णघात को लघु, धाताक्षेप को गुरु 'धाताक्षेप कर भ्रम' को 'प्लुत' की संज्ञा दी गई है।

प्राचीन 'तालों' का निर्माण इन्हीं सात अंगों के आधार पर किया गया है। उदाहरणार्थ वर्तमान में प्रचलित त्रिताल (या तीन ताल) के अंग बताने के लिए हमें उसका स्वरूप प्रथम एक लघु, फिर एक गुरु और अन्त में एक लघु कहना पड़ेगा, जिसका अर्थ होगा 4 + 8 + 4 = 16 मात्राएँ। इन अंगों की प्रारम्भिक मात्रा पर 'ताली' देने से तीन ताल में क्रमश: पहली, पाँचवीं और तेरहवीं मात्रा पर ताली का आघात होगा। इन अंगों के कारण एक समान मात्रा वाले अनेक ताल उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे–

एक लघु, एक लघु और एक गुरु = 16 मात्रा

एक लघु, एक लघु विराम, एक लघु विराम = 16 मात्रा इत्यादि।

ताल का पाँचवाँ प्राण 'ग्रह' है। ग्रह का अर्थ यहाँ पर ग्रहण करना है। जिस मात्रा से गीत, वाद्य या नृत्य का प्रारम्भ किया जाता है, उसे 'ग्रह' कहते हैं। 'ग्रह' चार प्रकार के हैं– (1) सम (2) विषम (3) अतीत और (4) अनागत।

(1) सम ग्रह– यदि गीत और ताल एक साथ शुरु हो तो उसे 'सम ग्रह' कहते है।

(2) विषम – यदि गीत और ताल के शुरू होने में अन्तर हो तो वह विषम ग्रह होता है।

(3) अतीत – ताल की प्रारम्भिक मात्रा निकल जाने के बाद यदि गीत शुरू होता है तो वह 'अतीत' कहलाता है।

(4) अनागत– ताल की प्रारम्भिक मात्रा के पूर्व से यदि गीत शुरू होता है तो वह 'अनागत' ग्रह कहलाता है।

ग्रह की उपर्युक्त अवधारणाएँ पूर्वकाल की हैं। वर्तमान में तो ये 'अस्पष्ट' सी हो चुकी हैं। केवल एक ग्रह 'सम' रह गया जो ताल की पहली मात्रा माना जाता है। गीत में जिस मात्रा पर 'झटका' सा लगता है, उसे 'सम' मानते हैं, और वहीं से ताल का प्रारम्भ होता है।

'ताल' का छठा प्राण 'जाति' है। ये जातियाँ पाँच होती हैं और लघु से सम्बन्ध रखती हैं। यदि एक लघु के काल में चार ह्रस्वाक्षरों का उच्चारण किया जाये तो जाति 'चतुरस्र' कहलाती है।[158]

यदि एक लघु के काल में तीन अक्षरों का उच्चारण किया जाये तो जाति 'त्र्यस्र' होती है।

यदि एक लघु के काल में पाँच अक्षरों का उच्चारण किया जाये तो जाति 'खण्ड' कहलाती है।

यदि एक लघु के काल में सात अक्षरों का उच्चारण किया जाये तो जाति 'मिश्र' कहलाती है।

यदि एक लघु के काल में नौ, ग्यारह, तेरह अक्षरों का उच्चारण किया जाये तो जाति को 'संकीर्ण' कहते हैं।

मतान्तर से लघु की आठ जातियाँ होती हैं – (1) एकाकी (एक अक्षर) (2) पक्षिणी (दो अक्षर) (3) त्र्यस्र (तीन अक्षर) (4) चतुरस्र (चार अक्षर) (5) खण्ड (पाँच अक्षर) (6) ऋतु (छै अक्षर) (7) मिश्र (सात अक्षर) और संकीर्ण (नौ या अधिक अक्षर)।

ताल का सातवाँ प्राण 'कला' है।

सामान्य अर्थ में 'कला' अँग्रेजी के आर्ट शब्द का बोधक है। चन्द्रमा के घटने-बढ़ने का क्रम भी 'कला' कहलाता है। जीवन में काम आने वाली 64 क्रियायें भी कला कहलाती हैं, किन्तु गान्धर्व या संगीत में 'कला' का अर्थ 'लघु' की मात्रा का 'अपकर्षण' होता है। उदाहरणार्थ यदि हम किसी ताल की प्रत्येक मात्रा को एक-एक मात्रा का अतिरिक्त विलंब दें तो ताल की प्रत्येक मात्रा 'द्विकल' हो जायेगी। दो मात्रा का विलंब देने पर 'त्रिकल' और तीन मात्रा का विलंब देने पर 'चतुष्कल' हो जायेगी। इस रीति से हम चाहे जितनी कलाएँ बढ़ा कर 'ताल' को विलंबित रूप दे सकते हैं।

मतान्तर से प्रत्येक मार्ग में आठ कलाएँ होती हैं – ध्रुवका, कृष्णा, सर्पिणी, पद्मिनी, क्षिप्ता, विर्सजनी, पाता और पताका।

ये कलाएँ वस्तुत: पूर्वोक्त 'क्रिया' से सम्बन्ध रखती हैं, इसलिए यहाँ अप्रासांगिक हैं।

ताल का आठवाँ प्राण 'लय' है।

वस्तुत: काल और लय एक ही चीज हैं। तथापि दोनों में अन्तर बताने के लिए यह कहना जरूरी है कि 'क्रिया के बाद जो विश्रान्ति है, वह लय है।'

क्रियानन्तर विश्रान्ति: लय:॥ 59॥

दूसरे शब्दों में, ताल या मात्राओं की गति को 'लय' कहते हैं। सही परिभाषा यह है कि जब हम दोनों हाथों से एक समान गति में ताली बजाते हैं, तो दो तालियों के मध्य में जो काल व्यतीत होता है वह 'लय' कहलाता है। अर्थात् दो आघातों का अन्तराल, अथवा दो मात्राओं के बीच की दूरी, 'लय' कहलाती है।[159] लय तीन प्रकार की है-

(1) मध्य लय- लगभग आधे सैकण्ड का काल 'मध्य लय' कहलाता है। यह लय तेज या धीमी न होकर 'मध्य' होती है।

(2) विलंबित लय-मध्य लय से धीमी लय को विलंबित लय कहते हैं।

(3) द्रुत लय - मध्य लय से तेज लय को द्रुत लय माना जाता है।

सम्पूर्ण संगीत इन्हीं तीनों लयों में गाया-बजाया जाता है।

ताल का नौवाँ प्राण 'यति' है।

'लय प्रवृत्ति नियमो यति:' अर्थात् लय की प्रवृत्ति बतलाने वाला नियम, यति कहलाता है। यति पाँच प्रकार की होती है -

(1) समा (2) स्रोतोगता (3) मृदंगा (4) पिपीलिका और गोपुच्छा।

समायति - यदि हम दो या चार से विभाजित संख्या वाले अक्षर समूहों को समान बलाघातपूर्वक एक जैसा उच्चारण करें तो यति समा कहलाती है। जैसे-

जन गण मन अधिनायक जय हे।

अक्षरों के इस क्रम में 'समा' यति है।

स्रोतोगता- अक्षरों, स्वरों या पाटाक्षरों का गुम्फन जब किसी स्रोत या झरने की तरह किया जाता है, तो यति 'स्रोतोगता' कहलाती है। जैसे-

तिरकिट तकता धिन धग तिट धिडा नधा
तिरकिट धातिरकिट तक तातिरकिटतक

इसमें पाटाक्षरों का गुम्फन झरने की तरह है।

मृदंगा यति - जब तबला या मृदंग के बोलों की रचना 'मृदंग' के आकार में की जाये तो वह 'मृदंगा यति' होती है। जैसे-

तिरकिटतक तक तिरकिट, धा गदींऽकऽत्त
धाऽ धिरधिर किटतक तातिरकिट तक

मृदंग के दोनों मुख छोटे और कूबड़ बड़े घेर का होता है। तदनुसार उपर्युक्त युक्ति यति में प्रथम अठगुने बोल, फिर बीच में दुगने बोल और अन्त में अठगुने बोल रखे गये हैं। अर्थात् पहले द्रुत लय, फिर विलंबित और अन्त में पुन: द्रुत लय के बोल।

ताल का दसवाँ प्राण 'प्रस्तार' है।

ताल के लघु-गुरु और प्लुत इत्यादि अंगों के आधार पर अन्य तालों की रचना करना, उनका प्रस्तार क्रम निश्चित करना, इत्यादि 'प्रस्तार' कहलाता है। चूँकि प्रस्तार का विवेचन अप्रासंगिक है, अत: इस सम्बन्ध में विचार करना अनुपयुक्त होगा।

एक लघु (या मात्रा) काल में सोलह स्वरों अक्षरों या पाटाक्षरों का स्पष्ट उच्चारण करके दिखाना - केवल संगीत में पाया जाता है। काल का इतना सूक्ष्म और गणितीय विभाजन कर पाना अन्य किसी शास्त्र में नहीं पाया जाता।

आयुर्वेद और काल

'आयुर्वेद' भारतीय चिकित्सा-शास्त्र है। इसे 'ऋग्वेद' का 'उपवेद' माना जाता है, किन्तु चरक-सुश्रुत और भावप्रकाश इत्यादि ग्रन्थों में 'आयुर्वेद' को 'अथर्ववेद' का उपवेद स्वीकार किया गया है। चूँकि ये तीनों ग्रन्थ चिकित्सा-शास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, अत: 'आयुर्वेद' को अथर्ववेद का उपवेद मानने में कोई दोष नहीं है।

'अष्टांग-हृदय' आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। विद्वज्जन इसे छठी-शताब्दी की रचना मानते हैं। इस ग्रन्थ के रचनाकार वागभट्ट के अनुसार सम्पूर्ण-चिकित्सा-पद्धति 'काल' पर आधारित है। यदि चिकित्सक को काल का समुचित ज्ञान नहीं है, या रोग अथवा रोगी की 'अवस्था' (काल) पर विचार किये बिना चिकित्सा की जाती है तो चिकित्सा विफल हो जाती है। अतएव चिकित्सा शास्त्र में 'काल' को विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

वागभट्ट ने आयुर्वेद में प्रयुक्त काल को दो प्रकार का माना है -

(1) क्षणादि काल और (2) व्याध्यवस्था काल - इन दोनों कालों का उपयोग औषधि के प्रयोग में होता है।[160]

काल का अर्थ समय है। रोगी को औषध के देने में समय का विचार किया जाता है। यह काल 'सम्वत्सर' और रोगी की अवस्था के भेद से दो प्रकार का है।

इसी को 'नित्यग' (अर्थात् साम्वत्सरिक) तथा 'आवस्थिक' (या अवस्था भेद जन्य) कहा जाता है।

'नित्यग' काल लव, त्रुटि, मुहूर्त्त, याम, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और सम्वत्सर आदि का 'परिग्रह' है। क्षणादिकाल के सम्बन्ध में कहा गया है [161]–

पूर्वाह्णे वमनं देयं मध्याह्ने तु विरेचनम्।
मध्याह्ने किंचिदावृत्ते वस्तिं दद्यात् विचक्षणः॥

– अर्थात् दिन के पूर्वभाग में 'वमन', मध्य भाग में 'विरेचन' तथा मध्याह्न का थोड़ा–सा समय निकल जाने पर 'वस्ति' देना चाहिए।

साम्वत्सरिक काल उत्तरायण और दक्षिणायन भेद से दो प्रकार का, शीत, उष्ण और वर्षा भेद से तीन प्रकार का, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर भेद से छै प्रकार का, मास भेद से बारह प्रकार का, पक्ष भेद से कृष्ण व शुक्ल पक्ष, भेदानुसार चौबीस प्रकार का एवं प्रहर भेद से अनेक प्रकार का है। इस साम्वत्सरिक काल को 'क्षणिक' भी कहते हैं। इस काल में 'प्राग् भक्त और अभक्त आदि का भी विचार किया जाता है।'

'आवस्थिक काल' रोगी (अथवा रोग की) अवस्था से सम्बन्ध रखता है। कहा गया है कि–

'आतुरावस्थास्वपि तु कार्याकार्यं प्रति कालाकाल संज्ञा; तद्यथा – अस्यामवस्थायामस्य भेषजस्याकालः, कालः पुनरन्यस्येति।' [162]

– अर्थात् रोगी की जैसी अवस्था हो, उसके अनुसार ही कार्य, अकार्य, काल तथा अकाल का विचार करके औषधि देनी चाहिए। यथा–

'नवज्वर' में कषाय नहीं देना चाहिए। छै दिन के बाद ज्वर में 'कषाय–कल्पना' देनी चाहिए। तात्पर्य यह कि रोग और रोगी की जैसी अवस्था हो, उसके अनुसार ही (काल–अकाल) का विचार करते हुए औषधि देनी चाहिए।

आत्रेय आदि महर्षियों का कथन है कि मनुष्य यदि अपनी पूर्ण आयु तक स्वस्थ रहना चाहता है, अथवा दीर्घायु चाहता है, तो उसे अपनी 'दिनचर्या' पर

विशेष ध्यान देना चाहिए।

ब्रह्मो मूहूर्त्त उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

– अर्थात् 'आयु' एवं स्वास्थ्य की रक्षा के लिए 'ब्राह्म मुहूर्त्त' में सोकर उठना चाहिये।

'ब्राह्म मूहूर्त्त' रात्रि के चौदहवें भाग को कहते हैं। अर्थात् सूर्योदय से दो घटी पूर्व का समय 'ब्राह्म मुहूर्त्त' कहलाता है। पुराणों में इसकी बड़ी महिमा गायी गई है। तदनुसार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा जी ने अपने शरीर के द्वारा असुर, देवता, पितृगण तथा मनुष्यों की सृष्टि की और जिस गुण का शरीर धारण करके सृष्टि की, उस शरीर को त्यागते गये। फलतः तमोगुण शरीर से असुर, सतोगुण शरीर से देवता आंशिक सतोगुण शरीर से पितृगण तथा रजोगुण प्रधान शरीर से 'मनुष्यों' की सृष्टि हुई। इन चारों शरीरों के त्यागने पर क्रमशः रात्रि, दिन, संध्या तथा ज्योत्स्ना की उत्पत्ति हुई। अतः रात्रि में असुर, दिन में देवता, संध्या में पितृगण तथा ज्योत्स्ना में मनुष्य बलवान रहते हैं। [163]

ज्योत्स्ना ब्राह्म मुहूर्त्त है। अतः इस मुहूर्त्त में सोकर उठने, नित्यक्रिया से निवृत्त होने एवं 'स्वाध्याय' करने से मनुष्य को अच्छे स्वास्थ्य दीर्घायु तथा बुद्धिबल में वृद्धि का पूर्ण लाभ मिलता है। संभवतः इसी कारण आयुर्वेद ब्राह्म मुहूर्त्त में सोकर उठने का निर्देश करता है।

दिनचर्या का विशेष अर्थ 'आचार' होता है। आचार के दो भेद हैं– आहार और विहार। आहार का स्पष्ट अर्थ भोजन करना है। विहार दो प्रकार का होता है– (1) नियत काल और (2) अनियत काल। नियत काल दो प्रकार का है– दैनन्दिन या प्रतिदिन करने योग्य तथा 'आर्तव' अर्थात् प्रत्येक ऋतु के अनुसार।

दिन का अर्थ, यहाँ दिन और रात दोनों हैं। 'चर्या' का अर्थ 'चरण' या कर्त्तव्य होता है।

कहा गया है कि जो मनुष्य स्वस्थ हो और जिसे 'अजीर्ण' न हो, वह तो ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे, लेकिन जो अजीर्ण से पीड़ित हो या रोगी हो, वह न उठे।

'ब्राह्मो मूहूर्त्त उत्तिष्ठेत् जीर्णाजीर्ण निरूपयन्'

इस सम्बन्ध में 'सुश्रुत' में कहा गया है कि 'रसशेषे शयीत च' अर्थात् पेट में अजीर्ण-भोजन के शेष रहते सोना चाहिए तथा - 'दिवा स्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्ण प्रशान्तये' अर्थात् सभी प्रकार के अजीर्ण को शान्त करने के लिए दिन में भी सोये। केवल नीरोग मनुष्य ही ब्राह्म मुहूर्त्त में सोकर उठे।

ऋतुचर्या

मुख्य ऋतुएँ - शीत, ग्रीष्म और वर्षा, तीन प्रकार की हैं, किन्तु अयन भेद के कारण ऋतुओं को छै प्रकार का माना जाता है- बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर।

'विषुव काल' के अनुसार प्रथम ऋतु 'वसन्त' है, किन्तु मकरसंक्रान्ति के सिद्धान्त से प्रथम ऋतु शिशिर मानी गई है। तदनुसार शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं के पूर्णकाल को 'उत्तरायण' तथा वर्षा, शरद और हेमन्त ऋतुओं के काल को 'दक्षिणायन' कहते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार 'उत्तरायण' 'आदानकाल' है। इस काल में 'सूर्य' प्रतिदिन मनुष्यों का 'बल' ग्रहण कर लेता है। 'अयनं उत्तरं सावितुरुत्तरमार्ग प्रति पत्तिरुत्तरायणम् आदानं तत् जानीयात्। आदानमिति च अन्वर्थमिति प्रति पादयति। तदा तस्मिन् काले नृणां प्रतिदिनमन्वहं बलमादत्ते सारं गृह्णाति। कोऽसौ प्रकृतत्वादातित्यः।' [164]

उत्तरायण में सूर्य का बल अधिक होता है और दक्षिणायन में कम। अतः सबल होने के कारण सूर्य उत्तरायण में मनुष्यों के बल को ग्रहण कर लेता है, इससे मनुष्य निर्बल रहते हैं। इसके विपरीत दक्षिणायन में सूर्य निर्बल रहता है और मनुष्यों का बल बढ़ जाता है। इस काल को 'विसर्ग' कहते हैं। यह प्रकृति के अपने स्वभाव के कारण होता है।

जैन दर्शन में 'काल' की स्थिति

'जैन दर्शन', भारतीय दर्शन शास्त्र का ही एक अभिन्न-अनुभाग है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव आवश्यक है कि हम जैन-दर्शन में 'काल' की

स्थिति पर विचार करें।

सतत् विद्यमान रहने वाले तथा 'वस्तुसत्ता' के लिए नितान्त आवश्यक धर्मों को 'गुण' कहते हैं। तथा देशकाल जन्य परिणामशाली धर्म को 'पर्याय' कहा जाता है। गुण तथा पर्यायविशिष्ट वस्तु को 'जैन न्याय' के अनुसार 'द्रव्य' कहते हैं।

गुण पर्यायवद् द्रव्यम् (तत्त्वार्थ सूत्र 5-37)।

'द्रव्य' का सबसे बड़ा विभाग दो प्रकार का होता है- एकदेशव्यापी द्रव्य तथा बहुप्रदेशव्यापी द्रव्य।

'काल' ही एक पदार्थ ऐसा है जो 'एकदेशव्यापी' माना जाता है। जगत् के अन्य समस्त पदार्थों में विस्तार उपलब्ध होता है। अतः वे बहुप्रदेशव्यापी माने जाते हैं। [165]

'एकदेशव्यापी-द्रव्य' को 'काल' के अतिरिक्त 'अनस्तिकाय' भी कहा जाता है।

'काल' की कल्पना अनुमान के आधार पर मानी जाती है। जगत् के समस्त-पदार्थ परिणामशील होते हैं। इस परिणाम के साधारण कारण के रूप में 'काल की सत्ता' मानी जाती है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व तथा अपरत्व - ये पाँचों 'काल के उपकार' माने जाते हैं। काल के बिना पदार्थों की स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। स्थिति का अर्थ पदार्थ का अनेक क्षणव्यापी 'अवस्थान' है। [166]

काल के अवयवों को बिना माने स्थिति की कल्पना निराधार ही है। किसी वस्तु का परिणाम काल की सत्ता पर ही अवलम्बित है। कच्चे आम का पक जाना कालजन्य ही है। 'पूर्वापरक्षण-व्यापिनी' क्रिया काल के ही कारण सम्भव है। ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता की कल्पना काल की सिद्धि के प्रमाणभूत बतला रही है। काल का विस्तार नहीं माना जाता, अतः वह 'अस्तिकाय द्रव्यों' से इस विषय में भिन्न ही है।

'लोकाकाश' के एक-एक प्रदेश में 'अणुरूप काल' की सत्ता रत्नों की राशि के समान मानी जाती है। रत्नों के ढेर होने पर भी जिस प्रकार प्रत्येक रत्न

पृथक-पृथक रूप से विद्यमान रहता है, उसी प्रकार लोकाकाश में 'काल' अणुरूप से पृथक-पृथक स्थित रहता है। 'द्रव्य संग्रह' में काल के दो भेद माने गये हैं-

व्यावहारिक काल और पारमार्थिक काल।

- द्रव्यों के परिणाम से अनुमित दण्ड, घटी, पल आदि अवयव से सम्पन्न काल को व्यावहारिक काल कहते हैं।

'पारमार्थिक काल' नित्य, निरवयव माना जाता है। 'वर्तना' पदार्थ की स्थिति- इसका सामान्य लक्षण है। व्यावहारिक काल के ही अंगों की कल्पना है। अत: वह 'सादि' तथा 'सान्त' है, परन्तु पारमार्थिक काल एक 'अनवच्छिन्न रूप' से सतत विद्यमान रहता है।[167]

सूर्य सिद्धान्त-मत

'सूर्य सिद्धान्त' भारतीय ज्योतिष गणित शास्त्र के अत्यन्त प्राचीन अठारह सिद्धान्त ग्रन्थों में से एक है। यह ग्रन्थ प्राचीनकाल से ही सर्वमान्य माना जाता रहा है। इस ग्रन्थ के उपदेष्टा भगवान् सूर्य के प्रतिनिधि 'सूर्यांश' तथा संग्रहकर्त्ता 'मयासुर' (मय नामक असुर) हैं।

इस ग्रन्थ की संस्कृत टीका के टीकाकार रंगनाथ के अनुसार -

कालोऽयं भगवान् विष्णुरनन्त: परमेश्वर:।
तद्वेत्ता पूज्यते सम्यक् पूज्य: कोऽन्यस्ततोमत:॥ I॥[168]

- यह 'काल' रूपी महाशक्ति ही साक्षात् भगवान् विष्णु, अनन्त और परमेश्वर है। जो व्यक्ति 'काल' को जानता है, उसकी संसार में हर प्रकार से पूजा होती है। 'कालवेत्ता' ही एकमात्र पूज्य होता है, अन्य कोई नहीं।

लोकानामन्तकृत् काल: कालोऽन्य: कलनात्मक:।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान् मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते॥ 10॥[169]

- 'काल' के दो भेद हैं। प्रथम भेद 'अखण्डदण्डायमान काल' है। यद्यपि

काल से ही इस जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा विनाश होता है, तथापि इसकी प्रसिद्धि 'अन्तकृत्' या विनाशक के रूप में अधिक है।

काल का दूसरा भेद 'खण्ड काल' है जिसके स्थूल और सूक्ष्म दो भेद हैं। इन भेदों के अनुसार काल 'मूर्त्त' और 'अमूर्त्त' दो प्रकार का है। काल के इस स्वरूप को 'कलनात्मक' अथवा 'ज्ञानविषय स्वरूप' माना जाता है।

कलनात्मक काल का स्थूल रूप 'महत्त्व' (अथवा महान्) तथा सूक्ष्म रूप 'अणु' है। इसका 'मूर्त्त स्वरूप' 'इयत्तावच्छिन्न परिमाण:' अर्थात् निश्चित सीमा या अवधि से सुरक्षित है। अमूर्त्त काल इससे भिन्न है। काल के अमूर्त्त रूप को 'अणु रूप' समझना चाहिए।

प्राणादि: कथितो मूर्त्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्त्त संज्ञक:।
षड्भि: प्राणैर्विनाडीस्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता॥ 11॥[170]

- एक स्वस्थ पुरुष जब सुखपूर्वक बैठकर श्वास और उच्छ्वास की क्रिया करता है, तब इस क्रिया के मध्य में दश गुरु अक्षरों के उच्चारण का समय लगता है। इसे 'प्राण' कहते हैं और इसी को काल का 'मूर्त्त रूप' माना जाता है।

'त्रुटि' से लेकर 'पर' पर्यन्त जो काल के विभाग हैं, उनके कारण काल के इस रूप को 'अमूर्त्त काल' कहते हैं। अमूर्त्त काल के छै प्राण को एक 'विनाड़ी' (एक पल) और साठ पल को एक 'नाडी' (या दण्ड) कहते हैं।

उपोद्घात पाद

काल विभाग

परमाणु

चरमः सद् विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्य भ्रमो यतः॥ 1॥[171]

– पृथ्वी आदि कार्यवर्ग का सूक्ष्मतम अंश, जिसका और विभाग नहीं हो सकता, जो कार्य रूप को प्राप्त नहीं हुआ, जिसका अन्य परमाणुओं के साथ संयोग भी नहीं हुआ है, उसे 'परमाणु' कहते हैं। इन अनेक परमाणुओं के परस्पर मिलने से ही मनुष्यों को भ्रमवश उनके समुदाय रूप एक अवयवी की प्रतीति होती है।

परम-महान्

स एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत्।
कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः॥ 2॥

– यह 'परमाणु' जिसका सूक्ष्मतम अंश है, अपने सामान्य रूप में स्थित उस पृथ्वी आदि कार्यों की एकता (समुदाय अथवा समग्ररूप) का नाम 'परम महान्' है। इस समय उसमें न तो प्रलयादि अवस्था भेद की स्फूर्ति होती है, न नवीन-

प्राचीन आदि काल-भेद का भान होता है। और न 'घट' 'पट' आदि 'वस्तुभेद' की ही कल्पना होती है।

एवं कालोऽव्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम्।
संस्थान भुक्त्या भगवानव्यक्तो व्युक्तभुग् विभुः॥ 3॥

– इस प्रकार यह वस्तु के 'सूक्ष्मतम' और 'महत्तम' स्वरूप का विचार हुआ।

इसी के सादृश्य से परमाणु आदि अवस्थाओं में व्याप्त होकर व्यक्त-पदार्थों को भोगने वाले, सृष्टि आदि में समर्थ, अव्यक्तस्वरूप भगवान् काल की भी सूक्ष्मता और स्थूलता का अनुमान किया जा सकता है।

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
सतोऽविशेष भुग्यस्तु स कालः परमोमहान्॥ 4॥

– जो काल 'प्रपंच' की परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्था में व्याप्त रहता है, वह अत्यन्त 'सूक्ष्म' है। और जो सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओं का 'भोग' करता है, वह 'स्थूलम' (या परम महान्) है।

अणु काल, त्रसरेणु काल

अणुद्वौ परमाणू स्यात् त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः।

– दो परमाणुओं (के काल) को 'अणु' कहते हैं।

– तीन अणुओं के काल को 'त्रसरेणु' कहते हैं।

जालाक रश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात्॥ 5॥

– त्रसरेणु को झरोखे में से होकर आयी हुई, सूर्य की किरणों के प्रकाश में (आकाश में उड़ता हुआ) देखा जाता है।

त्रुटि काल

त्रसरेणु त्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः।

– तीन त्रसरेणुओं के काल को 'त्रुटि' कहते हैं।

वेधकाल, लव काल

शतभाग स्तु वेधः स्यात् तैः त्रिभिस्तु लवः स्मृतः॥ 6॥

– सौ त्रुटियों के काल को 'वेध' कहते हैं।

– तीन वेध के काल को 'लव' कहा जाता है।

निमेष काल, क्षण काल

निमेषस्त्रिलवो ज्ञेयः आम्नातस्ते त्रयः क्षणः।

– तीन लवों का काल 'निमेष' तथा तीन निमेष को एक क्षण कहते हैं।

काष्ठा काल, लघु काल

क्षणान् पंच विदुः काष्ठां, लघु ता दश पंच च॥ 7॥

– पाँच क्षणों की एक 'काष्ठा' तथा पन्द्रह काष्ठा का एक 'लघु' होता है।

नाडिका

लघूनि वै समाम्नाता दश पंच च नाडिका।

– पन्द्रह, लघु का काल एक 'नाडिका' कहलाती है।

मुहूर्त्त काल, प्रहर/याम

ते द्वे मुहूर्त्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम्॥ 8॥

दो नाडिका का एक मुहूर्त्त काल होता है।

विशेष- निरुक्त-कार यास्क मुनि के अनुसार 'मुहूर्त्त' शब्द 'मुहुः ऋतुः' के मेल से बना है, जिसका अर्थ होता है- 'मूढ इव कालः' अर्थात् बहुत थोड़ा समय। यास्क के अनुसार ऋतु (ऋतुः अर्तेः गति कर्मणः) - गत्यर्थक 'ऋ' धातु से बना है और काल का पर्यायवाची है।[172]

– छै या सात नाड़िका के काल को 'प्रहर' या 'याम' कहते हैं। चूँकि अयनों के कारण दिन घटते या बढ़ते हैं अतः नाड़िका की संख्या छै या सात कही

गई है। इसी प्रकार दिन या रात की दोनों 'संधियों' के दो मुहूर्त्तों को छोड़कर प्रहर या याम का नाड़िका मान निर्धारित किया जाता है। यह दिन या रात का चौथा भाग होता है।

नाडिका ज्ञान

एक प्रस्थ (50 तोला)[173] जल रखे जाने योग छै पल ताँबें के बर्तन के पैंदे में चार माशे सोने की चार अंगुल लम्बी सलाई से छेद करके उसे जल में छोड़ दिया जाता है। जितने समय में उस बर्तन में एक प्रस्थ जल भरता है, और वह बर्तन जल में डूब जाता है, उतने समय को एक नाडिका कहते हैं।

दिन-रात

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे।

– दिन-रातों का काल चार-चार प्रहर का माना जाता है। ये दिन-रात - मनुष्यों के हैं।

उषा रात्रिः समाख्याता व्युष्टिश्चाप्युच्यते दिनम्।
प्रोच्यते च तथा सन्ध्या, उषा व्युष्ट्योर्यदन्तरम्॥ 49॥[174]

– 'उषा' को रात्रि कहते हैं। 'व्युष्टि' दिन कहलाता है। उषा और व्युष्टि के बीच के समय को 'सन्ध्या' कहते हैं।

सन्ध्या मुहूर्त्त मात्रा वै ह्रासवृद्धयोः समा स्मृता॥ 61॥

– सन्ध्या सर्वदा समान भाव से एक मुहूर्त्त की ही होती है

रेखा प्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तगतौ रवौ।
प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्नः स पंचमः॥ 62॥

– उदय से लेकर सूर्य की तीन मुहूर्त्त की गति के काल को 'प्रातःकाल' कहते हैं। यह सम्पूर्ण दिन का पाँचवाँ भाग होता है।

तस्मात् प्रातस्तनात् कालात् त्रिमुहूर्त्तस्तु संगवः।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तस्तु तस्मात् कालात् तु संगवात्॥ 63॥

– प्रात:काल के बाद का तीन मुहूर्त्त का समय 'संगव' कहलाता है तथा 'संगव' के बाद का तीन मुहूर्त्त का समय 'मध्याह्न' होता है।

तस्मात् माध्याह्निकात् कालात् अपराह्न इति स्मृत:।
त्रय एव मुहूर्त्तास्तु कालभाग: स्मृतो बुधै:॥ 64॥

– मध्याह्न काल के बाद तीन मुहूर्त्त का समय 'अपराह्न काल' कहलाता है।

अपराह्णे व्यतीते तु काल: सायाह्न एव च।
दशपंच मुहूर्त्ता वै मुहूर्त्तास्त्रय एव च॥ 65॥

– अपराह्न के बीतने पर तीन मुहूर्त्त का काल 'सायाह्न' कहलाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण दिन में पन्द्रह मुहूर्त्त और प्रत्येक दिवसांश में तीन मुहूर्त्त होते हैं।

दशपंच मुहूर्त्तं वै अहर्वैषुवतं स्मृतम्।
वर्द्धते ह्रसते चैवाप्ययने दक्षिणोत्तरे॥ 66॥

– पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन 'वैषुवत' कहलाता है। किन्तु उत्तरायण और दक्षिणायन के कारण यह दिन क्रमश: बढ़ता और घटता रहता है।

अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिर्ग्रसति वासरम्।
शरद् वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तु विभाण्यते॥ 67॥

– उत्तरायण में दिन बड़े, रात्रि छोटी तथा दक्षिणायन में रात्रि बड़ी और दिन छोटे होते जाते हैं। शरद् और वसन्त ऋतुओं के प्रारम्भिक दिन को विषुव काल कहते हैं। वैषुवत दिन इसी का नाम है।

तुला मेषगते भानौ समरात्रिदिनं तु तत्।
कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते॥ 68॥
उत्तरायण मप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे।

– जब सूर्य तुला या मेष राशि में पहुँचता है तब रात और दिन 'समान' (पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त्त के) होते हैं। कर्क राशि में पहुँचने से उत्तरायण का आरम्भ होता है।

त्रिंशन्मुहूर्त्तं कथितं अहोरात्रं तु यन्मया॥ 69॥
तानि पंचदश ब्रह्मन् पक्ष इत्यभिधीयते॥
मास: पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतु:॥ 70॥

– तीस मुहूर्त्त वाले दिन-रात, जब पन्द्रह बार बीत जाते हैं तब उस काल को 'पक्ष' कहा जाता है। दो पक्षों के व्यतीत होने पर एक 'मास' होता है जो सौर मास कहलाता है। ऐसे दो सौर मासों का काल एक 'ऋतु' कहलाता है।

ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने वर्ष संज्ञिते।
सम्वत्सरादय: पंच चतुर्मास विकल्पित:॥ 71॥

– तीन ऋतुओं का काल 'अयन' कहलाता है। दो अयनों के काल को 'वर्ष' कहते हैं। जो चार प्रकार के मास (सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र) हैं, उनके कारण विविध रूप से सम्वत्सरादि पाँच प्रकार के 'वर्ष' कल्पित किये गये हैं।

निश्चय: सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते।

– यह 'युग' ही 'मलमास' आदि सब प्रकार के काल निर्णय का कारण कहा जाता है।

सम्वत्सरस्तु प्रथमो, द्वितीय: परिवत्सर:॥ 72॥
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थानुवत्सर:॥
वत्सर: पंचमश्चात्र कालोऽयं युग संज्ञित:॥ 73॥

– पाँच प्रकार के वर्षों में पहला वर्ष सम्वत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर तथा पाँचवाँ वत्सर कहलाता है। इन पाँचों वर्षों के काल को ही 'युग' कहते हैं।

रात्रि - दिन - सन्ध्या और ज्योत्स्ना

ब्रह्मा के शरीर से कार्य-कारणों के साथ क्षेत्रज्ञ समूह उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा आत्मयोग में निरत होकर चतुर्विध-सृष्टि के लिए ध्यान करने लगे, जिससे सृष्टि कार्य प्रारम्भ हुआ।[176]

उनकी जाँघों से सर्वप्रथम 'असुर' नामक सन्तान की उत्पत्ति हुई। 'असुर' प्राण को कहते हैं (असुः प्राणः स्मृतः) अतः प्राण से जन्म ग्रहण करने के कारण वह सन्तान 'असुर' कहलायी। ब्रह्मा ने जिस शरीर से असुरों को उत्पन्न किया, उसे उन्होंने तुरन्त त्याग दिया। वह त्यक्त-शरीर तत्काल ही 'रात्रि' के रूप में परिणत हो गया। वह शरीर 'तमो बहुल' था, इस कारण रात्रि 'त्रियामा' कहलायी। इसी से स्वयंभू की समस्त प्रजा रात्रि में तमोगुण से आवृत्त हो जाती है तथा असुर, दैत्य, दानव और राक्षस इत्यादि रात्रि में बलवान रहते हैं।

इस सृष्टि से असन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने अव्यक्त और सत्त्व बहुल दूसरे शरीर को धारण किया। इससे उन्हें प्रसन्नता हुई। उनके मुख से देवगण (सुर) उत्पन्न हुए। 'दिवि' धातु का अर्थ है 'क्रीड़ा'। उस दिव्य शरीर से उत्पन्न होने के कारण यह सन्तान देवता कहलायी। ब्रह्मा ने यह शरीर भी छोड़ दिया। यह छोड़ा हुआ शरीर तुरन्त 'दिन' रूप में परिणत हो गया। इसीलिए कर्मानुष्ठान के लिए दिन में उपासना करते हैं। दिन में देवगण प्रबल रहते हैं।

ब्रह्मा ने 'सत्त्व मात्रात्मक' अन्य शरीर को धारण किया। वे सृष्टि के समय अपनी भावी सन्तान को 'पितर' मानते हुए ध्यान करने लगे। उन्होंने तब दोनों पक्षों के साथ दिन और रात्रि के मध्य में पितरों का सृजन किया। इसलिए इस सन्तान को 'पितृगण' कहा गया। और उनका पुत्रत्व भी इसी कारण हुआ। इस शरीर को भी ब्रह्मा ने त्याग दिया जो 'सन्ध्या' के रूप में परिणत हो गया। इसी कारण सन्ध्या काल में पितृगण बलवान रहते हैं। इसीलिए ऋषि, देवता, असुर और मनु आदि ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर (सन्ध्या) की उपासना करते हैं।

ब्रह्मा ने तब 'रजः प्रधान' शरीर धारण किया, जिससे मानस सन्तानें उत्पन्न हुईं। मन से उत्पन्न होने के कारण वे 'मानस' कहलाती हैं। ब्रह्मा ने इस शरीर को भी छोड़ दिया जिससे 'ज्योत्स्ना' उत्पन्न हुई। इसे 'प्रातः सन्ध्या' भी कहते हैं। इस काल में मनुष्य बलवान रहते हैं।[177]

सप्त-वासर और उनकी उत्पत्ति

'रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार' -

ये 'सप्तवासर' या सात 'वार' कहलाते हैं।

इनके ये नाम क्यों पड़े, और इन सातों वारों का एकमात्र यही क्रम क्यों रखा गया - इसका कारण 'शिवपुराण' में इस प्रकार बताया गया है[178]-

भगवान् शिव ने समस्त लोकों के उपकार के लिए 'वारों' की कल्पना की। उन्होंने सबसे पहले 'वार' की कल्पना की। यह वार आरोग्य प्रदान करने वाला है। इसका नाम 'शिव वार' हुआ।

तत्पश्चात् शिव ने अपनी मायाशक्ति का वार 'शक्ति वार' कल्पित किया। यह सम्पत्ति प्रदान करने वाला है।

जन्मकाल में दुर्गतिग्रस्त बालक की रक्षा के लिए उन्होंने 'कुमार वार' की कल्पना की।

तत्पश्चात् आलस्य और पाप की निवृत्ति तथा समस्त लोकों का हित करने की इच्छा से उन्होंने 'विष्णुवार' कल्पित किया।

समस्त जगत् 'आयुष्य' की सिद्धि के लिए शिव ने ब्रह्मा का आयुष्यकारक वार बनाया।

तत्पश्चात् पाप और पुण्य के शुभाशुभ फल देने की इच्छा से उन्होंने 'इन्द्र' तथा 'यम' के वारों की कल्पना की। ये दोनों वार क्रमशः भोग देने वाले तथा मृत्यु के भय को दूर करने वाले हैं।

इसके बाद भगवान् शिव ने सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदि सात ग्रहों को क्रमशः इन सातों वारों का स्वामी बनाया, जिससे लोक में क्रमशः (1) रवि (शिव) वार (2) सोम (शक्ति) वार (3) मंगल (कुमार) वार (4) बुध (विष्णु) वार (5) गुरु (ब्रह्मा) वार (6) शुक्र (इन्द्र) वार तथा (7) शनि (यम) वार का प्रचलन हुआ।

अपने-अपने वार में की हुई उन देवताओं (शिव, शक्ति, कुमार, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और यम) की पूजा - उनके अपने-अपने फल को देने वाली होती है।

संक्षेप में, सूर्य आरोग्य के, चन्द्रमा सम्पत्ति के, मंगल व्याधियों के निवारण के, बुध पुष्टि के, गुरु आयु की वृद्धि के, शुक्र 'भोग' के तथा शनि मृत्यु निवारण के दाता (देवता) हैं।

इन सातों वासरों या वारों का एक ही क्रम क्यों है, इसका कारण यह है कि सृष्टि के आदि में (इस श्वेत वाराह कल्प के आरम्भ में) जब सर्वप्रथम सूर्योदय हुआ, तब उस क्षण चैत्र शुक्ल प्रतिपदा थी और सभी ग्रह 'मेष राशि' के आरम्भक स्थान पर थे। भारतीय ज्योर्तिवैज्ञानिकों ने यह बात गणित द्वारा प्रमाणित की है, कि इसी दिन 'कल्प' का प्रारम्भ हुआ था। अत: कालगणना भी इसी दिन से की जाती है।

सूक्ष्म कालगणना के लिए 'अहोरात्र' (दिन-रात) को 12 भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक भाग को 'लग्न' कहते हैं। लग्न का आधा भाग 'होरा' कहलाता है। चूँकि सृष्टि के प्रथम क्षण में सबसे पहले 'सूर्य' के दर्शन हुए, अत: सूर्योदयकाल के 'होरा' का स्वामी 'सूर्य' माना गया।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ब्रह्माण्ड के मध्य में आकाश है। उसमें सबसे ऊपर 'नक्षत्र कक्षा' है। फिर क्रम से शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा हैं। इनसे नीचे सिद्ध, विद्याधर और मेघ हैं। ऊपर के ग्रहों की कक्षा, नीचे के ग्रहों की अपेक्षा क्रमश: बड़ी है। जब प्रथम 'होरा' के स्वामी सूर्य हुए तो क्रमश: शुक्र, बुध, चन्द्रमा, शनि, बृहस्पति, मंगल - ये छै ग्रह अगली छै 'होरा' के स्वामी हुए। इस प्रकार सातों ग्रहों की होरा बीतने पर आठवीं होरा के स्वामी पुन: सूर्य होते हैं। चूँकि एक अहोरात्र में चौबीस होरा होते हैं, और सातों ग्रहों का निश्चित क्रम - सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, गुरु और मंगल है, इस कारण दिन-रात में यह 'होरा चक्र' घूमते-घूमते, रात की चौबीसवीं होरा पर बुध की स्थिति होती है। क्रमानुसार बुध के बाद चन्द्र आता है, इस कारण जब पच्चीसवीं होरा में अगला सूर्योदय होता है, तब उसका स्वामी स्वयमेव चन्द्र हो जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्योदय की होरा का स्वामी ही उस दिन (वार) का भी स्वामी माना जाता है। फलत: अपने-आप सातों वारों के नाम क्रमश: रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार पड़ते चले जाते हैं। सप्ताह में सात वार होने का भी यही कारण है जिसे उक्त चक्र से समझा जा सकता है।

	दिन के होरा (एक से बारह तक)													रात के होरा (तेरह से चौबीस तक)										
वार	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24
रवि	सू. र्यू	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बुध
सोमवार	चं द्र मा	श	गु.	मं	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गुरू
मंगलवार	मं ग ल	सू.	शु	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श	गु.	म.	सू.	श.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शुक्र
बुधवार	बु ध	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	श.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	शनि
गुरुवार	गु रु	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सूर्य
शुक्रवार	शु क्र	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चंद्र
शनिवार	श नि	गु	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.	सू.	शु.	बु.	चं.	श.	गु.	मं.

- हिन्दू संस्कृति अंक में प्रकाशित पं. देवकीनंदन खंडेलवाल के लेख के अनुसार पृष्ठ-758-759

ऋतुएँ

'ऋतु' वैदिक-भाषा का पुल्लिंग-शब्द है, जो हिन्दी में स्त्रीलिंग माना जाता है।

षडमी ऋतवः पुंसि मार्गादीनां युगैः क्रमात्॥ 191/2॥

अभी हेमन्तादयः षडपि ऋतवः ऋतुसंज्ञकाः। ऋतु शब्दः पुल्लिंगः। ते च हेमन्तादयः मार्गशीर्षादि मासानां षड्भिर्युग्मैः क्रमाद् भवन्ति। उक्तं च - आदाय मार्ग शीर्षाच्च द्वौ द्वौ मासावृतुर्भत इति॥ [179]

उपरिलिखित उद्धरण के अनुसार हेमन्तादि छः ऋतुएँ ऋतु-संज्ञक (काल) हैं। मार्गशीर्ष मास से दो-दो मास के क्रम से छै ऋतुएँ होती हैं जो क्रमशः हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद् नामों से प्रसिद्ध हैं।

यजुर्वेद में ऋतुएँ वसन्त से प्रारम्भ मानी गई हैं [180] -

मधुश्च माधवश्च वासन्तितावृतू। (13-25)
शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू। (14-6)
नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। (14-15)
इषश्चोजश्च शारदावृतू। (14-16)
सहश्च सहस्यश्च हेमन्तिकावृतू। (14-27)
तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। (15-27)

मधुः और माधवः, वसन्त ऋतु है।
शुक्रः और शुचिः, ग्रीष्म ऋतु है।
नभः और नभस्यः, वर्षा ऋतु है।
इषः और ऊर्जः, शरद् ऋतु है।
सहः और सहस्यः, हेमन्त ऋतु है।
तपः और तपस्यः, शिशिर ऋतु है।

दृष्टव्य है कि मधु-माधव आदि नाम चैत्रादि बारह मासों की वैदिक-संज्ञाएँ हैं।

विशेष -अथर्व संहिता (9.14.16) में ऋतुएँ सात बतायी गयी हैं- वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर एवं सातवीं ऋतु 'अधिमास'।

नोट : प्राचीन ग्रन्थों में, वसन्तादि ऋतुओं को भिन्न-भिन्न मासों से प्रारम्भ होना बताया है। इसका कारण 'वसंत सम्पात' है जो अपनी विलोम गति के कारण पच्चीस हजार आठ सौ वर्षों के एक चक्र में विभिन्न अंशों, मासों, नक्षत्रों तथा राशियों में भ्रमण करता रहता है। सम्भवतः इसी कारण विभिन्न कालों में लिखे गये ग्रन्थों में वसन्त आदि ऋतुओं का भिन्न-भिन्न मासों में शुरु होना बताया गया है।

वेदों में, एक वर्ष में ग्रीष्म, वर्षा और शीत, तीन ऋतुएँ भी मानी गई हैं जो चार-चार मासों में विभाजित हैं। इन्हें सम्वत्सर चक्र की तीन 'नाभियाँ' कहा गया है-

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि (ऋग्वेद-मण्डल, सूक्त-164, मंत्र-48)

ऋग्वेद में एक स्थल पर एक वर्ष में पाँच ऋतुएँ भी मानी गई हैं। इन ऋतुओं में हेमन्त और शिशिर को एक ही ऋतु माना गया है (पंचारे चक्रे परिवर्त्तमाने) [181]

वायु पुराण के अनुसार ऋतुएँ कालरूपी प्रजापति की पाँच अवस्थाओं (दिन, पक्ष, मास, ऋतु और अयन) में से एक (चौथी) अवस्था है। [182]

ऋतुएँ 'पितर तुल्य' हैं। 'ऋतुगण' पितरदेव हैं। वसन्त ऋतु को वैदिकी श्रुति के अनुसार 'पितृदेव' कहा गया है। इन्हें चेतन और अचेतन कहा जाता है। ये ब्रह्मा के अभिमानी पुत्र हैं। ऋतुओं के पुत्र 'आर्तव' हैं (जो मासार्ध रूपी या 'पक्ष' हैं)। [183]

इन ऋतुओं को क्रमशः रस, शुष्मिण, जीव, सुधा, मन्युमन्त तथा घोर आदि नामों से उद्धृत किया गया है -

(1) मधु-माधवौ रसौ ज्ञेयौ,

(2) शुचि शुक्रौ तु शुष्मिणौ॥

(3) नभश्चैव नभस्यश्च जीवावेतावुदाहृतौ।

(4) इषुश्चै तथोर्जश्च सुधावन्तावुदाहृतौ।

(5) सहश्चैव सहस्यश्च मन्युमन्तौ तु तौ स्मृतौ।

(6) तपश्चैव तपस्यश्च घोरावेतौ तु शैशिर्रो॥

– *मधु-माधव 'रस', शुचि-शुक्र 'शुष्मिण'*
नभ-नभस्य 'जीव' इषु-ऊर्ज 'सुधा'
सह-सहस्य मन्युमन्त, तथा तप-तपस्य-'घोर'।

ऋतुएँ वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर आदि नामों से क्यों जानी जाती है, इस सम्बन्ध में यास्क मुनि की यह निरुक्ति दृष्टव्य है–

वसन्त –'वसन्त्यत्र मदनोत्सवा:' – इस ऋतु में 'मदनोत्सवों' का निवास रहता है। अर्थात् 'मदन' (कामदेव) से सम्बन्धित उत्सवों की भरमार रहती है, आमोद-प्रमोद, हँसी-ठिठोली के उत्सव अधिक होते हैं, इस कारण इस ऋतु को 'वसन्त' कहा जाता है।[184]

ग्रीष्म– 'ग्रीष्मो ग्रस्यन्तेऽस्मिन् रसा:' – इस ऋतु में रस और जल सूख जाते हैं, इसलिए इसे 'ग्रीष्म' कहा जाता है।[185]

वर्षा– 'वर्षा वर्षति आसु पर्जन्य:' – इसमें बादल बरसते हैं, इस कारण यह वर्षा कहलाती है।

शरत्– 'अस्यां ओषधय: श्रृता:'– इसमें औषधियाँ पकती हैं। अथवा 'शीर्णा आप इति' – इसमें पानी कम हो जाता है, अत: यह 'शरत्' कहलाती है।

हेमन्त– 'हेमन्तो हिमवान् भवति' – इस ऋतु में हिमपात होता है। अथवा 'हिमं हन्तेर्वा' क्योंकि यह औषधियों और वनस्पति को 'मारता' है। अथवा 'हिनोतर्वा' – अन्न को तृप्त करता है। इसलिए हेमन्त कहलाती है।

शिशिर –'शशन्ति धावन्ति पथिका: यस्मिन् शिशिर: स्याहतोर्भेदे तुषारे शीतलेऽन्यवदिति विश्व:' – क्योंकि इस ऋतु में लोग ठंड के कारण शी-शी करते हुए चलते हैं। अथवा तुषार तथा ठण्ड अधिक पड़ती है, इसलिए इसे 'शिशिर' कहते हैं।[186]

– यजुर्वेद संहिता/अध्याय-2/मंत्र-63 (32) के अनुसार छहों ऋतुएँ पितरों के छै रूप हैं – वसन्त रसरूप, ग्रीष्म शुष्कता रूप, वर्षा जीवन रूप, शरत् अन्न रूप, हेमन्त पोषण रूप और शिशिर उत्साह रूप है। इन्हें ब्रह्मा का मानस-पुत्र कहा गया है–

शिशिरश्च वसंतश्च निदाद्यो वर्ष एवच। शरद् हेमंत इत्येते मानसा ब्रह्मण: सुता: ॥ वायु पुराण/अ.–21/श्लोक–35 ॥

षड् ऋतुओं का साकार वर्णन

ऋतव: षट् समं तत्र नाना गन्ध सुखावहा:।
उद्वाह: शङ्करस्येति मूर्त्तिमन्त उपस्थिता: ॥ 1 ॥[187]

– नाना प्रकार की गन्ध तथा सुख को देने वाली छहों ऋतुएँ, भगवान शंकर के विवाह में समान रूप से शरीर धारण करके उपस्थित हुईं।

वर्षा ऋतु

नील जीभूत संकाशैर्मन्त्रध्वनि प्रहर्षिभि:।
केकायमानै: शिखिभि: नृत्यमानैश्च सर्वश: ॥ 2 ॥

– नील मेघ के समान कान्तिवाले और मन्त्रध्वनि से हर्षित होने वाले मयूर शब्द करते हुए नाचने लगे।

विलोल पिंगलस्पष्ट विद्युल्लेखा विहासिता।
कुमुदापीड शुक्लामिर्बला कामिश्च शोभिता ॥ 3 ॥

– वह ऋतु चंचल तथा पिंगल वर्ण वाली विद्युत पंक्तियों से आभासित एवं कुमुदों की माला के समान शुक्ल बलाकाओं (बगुला मादाओं) से सुशोभित थी।

प्रत्यग्र संजात शिलीन्ध्र कन्द लीलता द्रुमाद्युद् – गतपल्लवा शुभा।

शुभाम्बुधारा प्रणय प्रबोधितै र्महालसैर्भेकगणैश्च नादिता ॥ 4 ॥
प्रियेषु मानोद्धत: मानसानां, मनस्विनी नामपि कामिनीनाम्।
मयूर केकाभिरुतै: क्षणेन, मनोहरैर्मान विभंग हेतुभि: ॥ 5 ॥

– कदली, लता और वृक्षों के अभिनव पल्लवों से उसकी अपूर्व शोभा थी। कल्याणमय मेघों के प्रेम के कारण जगे हुए अत्यन्त आलसी मेढकों से एवं प्रियजनों के प्रति मान करने से उद्धत मनवाली मनस्विनी कामिनियों के क्षणभर में मानभंग के हेतुभूत मनोहर मयूर वाणी के शब्दों से वह (वर्षा) शब्दायमान हो रही थी।

तथा विवर्णोज्जवल चारुमूर्त्तिना,
शशांक लेखा कुटिलेन सर्वत:।
पयोद संघात समीपवर्त्तिना,
महेन्द्र चापेन भृशं विराजिता॥ 6॥

– विविध वर्ण तथा उज्जवल वर्ण वाले, सुन्दर रूप वाले, चन्द्रलेखा के समान सब ओर से कुटिल तथा मेघ समूह के समीपवर्त्ती इन्द्रधनुष से वह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी।

विचित्र पुष्पाम्बुभवै: सुगन्धिभिर्घनाम्बु सम्पर्क तया सुशीतलै:।
विकम्पयन्ती पवनैर्मनोहरै:, सुरांगनानामलकावली: शुभा:॥ 7॥

– नाना प्रकार के पुष्पों के रस से सुगन्धित और मेघजल के सम्पर्क से सुशीतल, मनोहर पवनों के द्वारा, वह मानो देवांगनाओं की पवित्र अलकावलियों (केश समूह) को कम्पित कर रही थी।

गर्जत्पयोदस्थगितेन्दुबिम्बा,
नवाम्बुसिक्तोदक चारु दूर्वा।
निरीक्षिता सादरमुत्सुकाभिर्
निश्वास धूम्रं पथिकांगनाभि:॥ 8॥

– गरजते हुए बादल में चन्द्र बिम्ब को छुपाने वाली तथा नवीन जल से सिक्त सुन्दर घास वाली वर्षा ऋतु को राह चलने वाली रमणियाँ आदर तथा उत्सुकता से देखकर अपनी साँसों से मानो धूमिल कर रही थीं।

हंस नूपुर शब्दाढ्या समुन्नत पयोधरा:।
चलद् विद्युत् लता हारा स्पष्ट पद्म विलोचना॥ 9॥

– वह (वर्षा ऋतु) मानो समुन्नत पयोधर (मेघ या स्तन) वाली, विकसित कमल सदृश नेत्र वाली, चंचल विद्युत लता रूपी हार वाली तथा हंस (हंस पक्षी या पैर के कड़े) और नूपुर के शब्दों से युक्त रमणी थी।

असित जलद धीर ध्वान वित्रस्त हंसा,
विमल सलिल धारोत्पात नम्रोत्पलाग्रा।

सुरभि कुसुम रेणु क्लृप्त सर्वांग शोभा,
गिरि दुहितृ विवाहे प्रावृडाविर्बभूव॥ 10॥

– वह काले बादल के गंभीर गर्जन से त्रस्त हंस वाली, निर्मल जलधारा के गिरने से अवनत कमल के अग्रभाग वाली और सुगंधित पुष्पों की रेणु से सुशोभित सर्वांग वाली थी। इस प्रकार वर्षा ऋतु गिरिकन्या (पार्वती) विवाह में आविर्भूत (प्रकट) हुई।

शरद् ऋतु

मेघ कंचुक निर्मुक्ता, पद्म कोशोद्भवस्तनी।
हंस नूपुर निर्ह्रादा, सर्वशस्य दिगन्तरा॥
विस्तीर्ण पुलिन श्रोणी, कूजत् सारस मेखला।
प्रफुल्लेन्दीवरश्याम विलोचन मनोहरा॥
पक्व बिम्बाधरपुटा, कुन्ददन्त प्रहासिनी।
नवश्यामलताश्याम सोमराजि पुरस्कृता॥
चन्द्रांशुहार वर्गेण कण्ठोरस्थल गामिनद्य।
प्रह्लादयन्ती चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्॥
समदालिकु लोद्गीत मधुर स्वर भाषिणी।
चलत् कुमुद संघात चारु कुण्डल शोभिनी॥
रक्ताशोक प्रशारवोत्थ पल्लवांगुलि धारिणी।
तत्पुष्प संचयमयैर्वासोभि: समलंकृता॥
रक्तोत्पलाग्रचरणा जाती पुष्प नखावली।
कदलीस्तंभ वामोरु: शशांक वदना तथा ॥
सर्वलक्षण सम्पन्ना सर्वालंकार भूषिता।
प्रेम्णा स्पृशति कान्तेव सानुरागा मनोरमा॥

– मेघरूपी कंचुकी से निर्मुक्त, कमलकोश रूपी स्तन वाली, हंस और नूपुर से शब्दित, सब दिशाओं में अन्न से परिपूर्ण, विस्तृत तट रूपी नितम्ब वाली, शब्द करते हुए सारस पक्षी रूपी मेखला वाली, विकसित नील कमल रूपी मनोहर नेत्र वाली, पके बिम्बाफल (कुन्दुरू के फल) रूपी अधर वाली, कुन्द पुष्प रूपी दाँतों से हँसने वाली, श्यामलता रूपी कृष्ण रोमावलियों से युक्त, गले से वक्ष:स्थल तक

लटकते हुए चन्द्रकिरण रूपी हारों से देवताओं के चित्त को आह्लादित करने वाली, मदमत्त भ्रमरों के गीत रूपी मधुर स्वर से बोलने वाली, चंचल कुमुद पुष्प समूह रूपी सुन्दर कुण्डलों से शोभित, रक्त अशोक की शाखा के पल्लव रूपी अंगुलियाँ धारण करने वाली, चमेली के पुष्प रूपी नखपंक्ति वाली, कदली स्तंभ रूपी सुन्दर जंघा वाली, चन्द्रमुखी, समस्त लक्षणों से सम्पन्न और सब प्रकार के भूषणों से भूषित शरद् ऋतु मानो अनुरागपूर्ण सुन्दर स्त्री की तरह प्रेम से स्पर्श करती थी।

निर्मुक्तासित मेघ कंचुकपटा, पूर्णेन्दु बिम्बानना।
नीलाभ्भोज विलोचना रविकर प्रोद्भिन्न पद्मस्तनी॥
नाना पुष्परजः सुगंधि पवन प्रह्लादिनी चेतसां तत्रऽऽसीत्
कलहंस नूपुर खा देव्या विवाहे शरत्॥

– कृष्ण मेघ रूपी कंचुकी से निर्मुक्त, पूर्ण चन्द्र बिम्ब के समान मुख वाली, नीलकमल के समान नेत्र वाली, सूर्य किरण से विकसित कमल के समान स्तन वाली अनेक पुष्पों की रेणु से सुगंधित पवनों द्वारा चित्त को आनन्द देने वाली तथा राजहंस के समान नूपुरों द्वारा शब्द करने वाली शरद् ऋतु पार्वती के विवाह में उपस्थित हुई।

अत्यर्थ शीतलाम्मोभिः प्लावयन्तौ दिशः सदा।
ऋतू हेमन्तशिशिरौ आजग्मतुरतिद्युती॥

– अत्यन्त शीतल जल से दिशाओं को सदा प्लावित करती हुई महाकान्ति वाली हेमन्त तथा शिशिर ऋतुएँ भी आयीं।

ताभ्यामृतुभ्यां संप्राप्तो हिमवान् स नगोत्तमः।
प्रालेय चूर्णवर्षिभ्यां क्षिप्रं रौप्यहरो बभौ॥

– हिम-चूर्णों के बरसाने वाली, उन ऋतुओं से प्राप्त (सम्मिलित) पर्वत श्रेष्ठ हिमालय शीघ्र ही चाँदनी के आहर्ता की तरह सुशोभित होने लगा।

तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालयः।
अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागरः॥

– हिम वर्षा करने वाले अगाध मेघ से हिमालय क्षीर समुद्र की तरह सुशोभित हुआ।

ऋतु पर्य्याय सम्प्राप्तो बभूव व महागिरिः।
साधूपचारात् सहसा कृतार्थ इव दुर्जनः॥

– जिस प्रकार अच्छे उपचारों से दुर्जन व्यक्ति कृतार्थ हो जाता है, वैसे ही ऋतुओं के आगमन से वह महापर्वत भी कृतकृत्य हो गया।

प्रालेय पटलच्छन्नैः श्रृंगैस्तु शुशुभे नगः।
छत्रैरिव महाभागैः पाण्डरैः पृथिवीपतिः॥

– हिम समूह से आच्छादित शिखरों से पर्वत की वैसी ही शोभा हुई जैसी महासुन्दर श्वेत छत्र से राजा की होती है।

वसन्त ऋतु

मनोभवोद्रेक कराः सुराणां,
सुरांगनानां च मुहुः समीराः।
स्वच्छाम्बु पूर्णाश्च तथा नलिन्यः
पद्मोत्पलानां कुसुमैरुपेताः॥

– देवता तथा देवांगनाओं में कामोद्दीपन करने वाले पवन बार-बार बहने लगे। जलाशय स्वच्छ जल से पूर्ण एवं कमल तथा कुमुद के पुष्पों से युक्त हो गये।

विवाहे गुरुकन्याया वसन्तः समगाद् ऋतुः॥

– पर्वत पुत्री के विवाह में वसन्त ऋतु का आगमन हुआ।

इषत् समद्भिन्न पयोधराग्रा, नार्यो यथा रम्यतरा बभूवुः।
नात्युष्ण शीतानि पयः सरांसि, किंजल्क चूर्णैः कपिलीकृतानि॥
चक्राह्व युग्मैरुपनादितानि, ययुः प्रहृष्टाः सुरदंति मुख्याः॥

– जैसे थोड़े उभरे हुए स्तनाग्र वाली नारियाँ अधिक रमणीय होती हैं, वैसे न अधिक गर्म, न अधिक ठण्डे जल, वाले सरोवर पुष्परेणु (या कमल केशर) से कपिल वर्ण बने शोभित हो रहे थे। चकई चकवा से शाब्दित उन सरोवरों में देवताओं के श्रेष्ठ हाथी हर्ष से जाते थे।

प्रियंगूश्चूततरवश्चूतांश्चापि प्रियंगवः।
तर्ज्जयन्त इवान्योन्यं मंजरीमिश्चकाशिरे॥

– प्रियंगु वृक्ष आम्र वृक्षों को और आम्र वृक्ष प्रियंगु वृक्षों को मानो परस्पर धकेलते हुए मंजरियों से सुशोभित हो रहे थे।

हिम श्रृंगेषु शुक्लेषु तिलकाः कुसुमोत्कराः॥
शुशुभुः कार्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः॥ ॥

– हिमालय के उज्जवल शिखरों पर पुष्पों से युक्त तिलक वृक्ष, कार्य के उद्देश्य से आये हुए वृद्ध पुरुषों की तरह शोभा पा रहे थे।

फुल्लाशोक लतास्तत्र रेजिरे शालसंश्रिताः।
कामिन्य इव कान्तानां कण्ठालंबित बाहवः॥

– साखू से लिपटी हुई प्रफुल्लित अशोक लता प्रियतम के गले में अपनी बाँह डाले हुए कामिनी की तरह विराजमान थी।

तस्मिन् ऋतौ शुभ्र कदम्बनीपास्तालास्तमालाः सरलाः कपित्था॥
अशोक सर्ज्जार्ज्जुन कोविदाराः पुन्नाग नागेश्वर कर्णिकाराः॥
लवंग तालागुरु सप्तपर्णा न्यग्रोधशोभाञ्जन नारिकेलाः॥
वृक्षास्तथान्ये फल पुष्प वन्तो दृश्या बभूवुः सुमनोहरांगाः॥

– उस ऋतु में सफेद कदम्ब, नील, अशोक, ताल, तमाल, सरल, कपित्थ, अशोक, सर्ज, अर्जुन, कचनार, पुन्नाग, नागेश्वर, कनक चम्पा, लवंग, अगर, सप्तपर्ण, वट, शोभांजन, नारियल और दूसरे भी फल-फूल वाले वृक्ष अत्यन्त सुन्दर अंगों में दिखायी पड़े।

जलाशयाश्चैव सुवर्णतोयाश्चक्रांग कारण्डव हंस जुष्टाः।
कोयष्टि दात्यूह बलाक युक्ता दृश्यास्तु पद्मोत्पल मीनपूर्णाः।
खगाश्च नानाविध भूषितांगा, दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्र पक्षाः॥
क्रीडासु युक्तानथ तर्ज्जयन्तः कुर्वन्ति शब्दं मदनोरितांगाः॥

– सुवर्ण के समान जल वाले, चक्रांग, कारण्डव, और हंसों से सेवित टिट्टिम, दात्यूह, तथा बलाकों से युक्त एवं कमल, कुमुद तथा मछलियों से पूर्ण

तालाब देखने योग्य थे।

– वृक्षों पर चित्र-विचित्र पंख वाले तथा विविध भूषणों से भूषित पक्षीगण काम-विह्वल होकर क्रीडा में निरत पक्षियों को चंचु से मारते हुए कलरव कर रहे थे।

तस्मिन् गिरावद्रि सुता विवाहे ववुश्च वाताः सुख शीत लांगा॥

– पार्वती के विवाह में उस पर्वत पर सुख तथा शीतल स्पर्श वाला वायु बह रहा था।

पुष्पाणि शुभ्राण्यपि पातयन्तः शनैर्नगेभ्योमलयाद्रि जाताः॥
तथैव सर्वे ऋतवश्च पुण्याश्चकाशिरेऽन्योन्यविमिश्रितांगा॥

– पर्वतों से धीरे-धीरे मलयानिल निकल कर श्वेत पुष्पों को गिरा रहा था। उसी प्रकार सब पवित्र ऋतुएँ परस्पर मिलकर विराज रही थीं।

ग्रीष्म ऋतु

पटुः सूर्यातपश्चापि प्रायशोऽल्प जलाशयः।
देवी विवाह समये ग्रीष्म आगाद्धिमाचलम्॥

– सूर्य की किरणें तीक्ष्ण होने लगीं और प्रायः जलाशयों में जल घटने लगा, जब देवी के विवाह के समय ग्रीष्म ऋतु हिमालय पर आ पहुँची।

स चापि तरुभिस्तत्र बहुभिः कुसुमोत्करैः।
शोभयामास श्रृंगाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः॥

– वह भी प्रचुर पुष्पों से युक्त वृक्षों से हिमालय के शिखरों को सब ओर से शोभित कर रही थी।

तथापि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः।
ववुः पाटल विस्तीर्ण कदम्बार्जुनगन्धिनः॥

– पर्वत पर पाटला, विस्तीर्ण कदम्ब तथा अर्जुन के गन्धों से युक्त मनोहर वायु बह रहा था।

वाप्यः प्रफुल्ल पद्मौघ केसरारुण मूर्त्तयः।
अभवंस्तटसंघुष्ट कलहंस कदम्बकाः॥

– बावलियाँ विकसित पद्म समूह के केसरों से अरुण रंग की हो गई थीं, जिनके तट कलहंसों और कदम्बों से सेवित थे।

तथा कुरबकाश्चापि कुसुमा पाण्डुमूर्त्तयः।
सर्वेषु नग श्रृंगेषु भ्रमरावलि सेविताः॥

– श्वेत वर्ण के कुसुमों से युक्त तथा भ्रमरावलियों से सेवित कुरबक वृक्ष समस्त पर्वत शिखरों पर शोभित हो रहे थे।

बकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः।
उत्ससर्ज मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः॥

– पर्वत के विशाल नितम्बों पर मौलसिरी मनोहर पुष्पों को चारों ओर बिखेर रहे थे।

इति कुसुम विचित्रसर्ववृक्षा
विविध विहंगमनाद रम्य देशः।
हिमगिरि तनया विवाह भूत्यै
षडुपययुर्ऋतवो मुनि प्रवीराः॥

– मुनिवर! सब वृक्ष पुष्पों से विचित्र दीखते थे। विविध पक्षियों से सब स्थान रम्य लगते थे। गिरि पुत्री का विवाहोत्सव मनाने के लिए छहों ऋतुएँ उपस्थित हुईं।

ऋतु चर्या

'ऋतु चर्या' का अभिप्राय, ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार (या आचार) है। भारतीय चिकित्सा शास्त्र 'आयुर्वेद' के आचार्यों ने अपने गंभीर अनुसंधान के उपरान्त भारतवासियों की ऋतु-चर्या निर्धारित की है, जो भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति के अनुकूल है। तदनुसार-

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड् ऋतवः स्मृताः।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मो वर्षा शरद् हिमाः ॥ 1॥

– 'माघ' मास से प्रारम्भ करके, दो-दो मासों की छै ऋतुएँ होती हैं। इन्हें

क्रमशः शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त कहते हैं।

शिशिराद्यैः त्रिभिस्तैस्तु विद्याद् अयनमुत्तरम्।
आदानं च तदादत्ते नृणां प्रतिदिनं बलम्॥ 2॥

– इनमें शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं को 'उत्तरायण' जानना चाहिए। यह उत्तरायण 'आदान काल' है। इस काल में सूर्य मनुष्यों के बल को प्रतिदिन ग्रहण करता जाता है। अर्थात् मनुष्यों का 'बल' कम होता रहता है।

तस्मिन् ह्यत्यर्थ तीक्ष्णोष्णरुक्षा मार्गस्वभावतः।
आदित्य पवनाः सौम्यान् क्षपयन्ति गुणान् भुवः॥ 3॥

– मार्ग स्वभाव के कारण इस आदान काल में सूर्य और वायु, अत्यधिक तीक्ष्ण, उष्ण और रुक्ष रहते हैं, इस कारण पृथ्वी के 'सौम्य गुण' को कम करते रहते हैं। [188]

तिक्तः कषायः कटुको बलिनोऽत्र रसाः क्रमात्।
तस्मादादनमाग्नेयं ऋतवो दक्षिणायनम्॥ 4॥

– पृथ्वी के सौम्य गुण के कम होने के कारण (तीक्ष्ण, रुक्ष और उष्ण गुण प्रबल होते हैं एवं) तिक्त, कषाय तथा कटु 'रस' बलवान होते चले जाते हैं। इस कारण 'आदान काल' को 'आग्नेय काल' कहा जाता है।

वर्षादयो विसर्गश्च यद् बलं विसृजत्ययम्।

– वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतुएँ (दक्षिणायन के कारण) 'विसर्ग-काल' कहलाती हैं। क्योंकि इस काल में (सूर्य के द्वारा) बल का विसर्ग होता है। अर्थात् इस काल में सूर्य प्रथम आदान काल में ग्रहण किये 'रस' को छोड़ता है।

सौम्यत्वादत्र सोमोहि बलवान् हीयते रविः॥ 5॥
मेघ वृष्ट्यनिलैः शीतैः शान्त तापे महीतले।
स्निग्धाश्चेहाम्ल लवण मधुरा बलिनो रसाः॥ 6॥

– इस काल में सौम्य गुण के कारण चन्द्रमा बलवान् और सूर्य का तेज कम

होता चला जाता है। बादल, वर्षा और शीतल वायु के कारण पृथ्वी तल का ताप (उष्णता) कम होता चला जाता है। फलत: स्निग्ध-रस - 'अम्ल, लवण और मधुर भी बलवान् हो जाते हैं।'

विशेष- 'काल' और कर्क आदि राशि मार्ग के कारण इस विसर्ग काल में सूर्य का तेज कम होने से चन्द्रमा का बल बढ़ता जाता है। जिससे वर्षा में अम्ल, शरत् में लवण रस और हेमन्त में मधुर रस भी क्रमश: बढ़ता जाता है। इससे मनुष्यों के बल में भी वृद्धि होती है।

शीतेऽग्रयं वृष्टि घर्मेऽल्पं बलं मध्यं तु शेषयो:।

- शीत ऋतु (हेमन्त और शिशिर) में मनुष्य का बल श्रेष्ठ होता है। वर्षा और ग्रीष्म में न्यून रहता है। तथा शरद्-हेमन्त में बल 'मध्यम' हो जाता है।

बलिन: शीतसंरोधाद् हेमन्ते प्रवलोऽनल:॥ 7॥

- बलवान् पुरुष में शीत के कारण अवरुद्ध होने से ऊष्मा बाहर नहीं निकल पाती, परिणामत: जठराग्नि प्रबल हो जाती है।

भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरित:।
अतो हिमेऽस्मिन् सेवेत स्वाद्वम्ल लवणान् रसान्॥ 8॥

- वह जठराग्नि 'अल्पेन्धन' (कम आहार) होने के कारण वायु के द्वारा प्रेरित होकर 'धातुओं' का भी परिपाक करती है। इसलिए हेमन्त काल में मधुर, अम्ल और लवण रसों का सेवन करना चाहिए।

हेमन्त ऋतु चर्या

दैर्घ्यान्निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षित:।
अवश्य कार्य संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु॥ 9॥
वातघ्नतैलैरभ्यंग मूर्ध्नि तैलं विमर्दनम्।
नियुद्धं कुशलै: सार्द्ध पदाघातं च युक्तित:॥ 10॥

- हेमन्त काल में रातें लम्बी होती हैं, अत: प्रात:काल भूख लगती है। लेकिन उस समय तुरन्त भोजन न करें, बल्कि प्रात:काल में शौचादि क्रियाओं को शीघ्र करें। तत्पश्चात् 'वातनाशक' तेलों से सम्पूर्ण शरीर की मालिश (अभ्यंग) करें।

सिर पर तेल लगायें। हाथों से शरीर को दबायें। तत्पश्चात् होशियार पहलवानों के साथ 'जोर' (कुश्ती) करें। फिर पैरों से शरीर को दबवायें।

कषायापहृत स्नेहस्तत: स्नातो यथाविधि।
कुंकुमेन सदर्पेण प्रदिग्धोऽगुरु धूपित:॥ 11॥

- शरीर का स्नेह दूर करने के लिए उबटन लगायें। विधिपूर्वक स्नान करें। तत्पश्चात् कस्तूरी मिश्रित केसर का शरीर पर लेप करके अगरु की धूप लेवैं।

रसान् स्निग्धान् पलं पुष्टं गौऽमच्छसुरां सुराम्।
गोधूमपिष्ट माषेक्षुक्षीरोत्थविकृती: शुभा:॥ 12॥

- फिर स्निग्ध माँस रसों और मेदुर माँस को खाये। अथवा गुड़ से बने पदार्थ प्रसन्ना या सुरा को पियें। गेहूँ, पिट्ठी, उरद, गन्ने के रस और दूध से बने पदार्थ खायें।

नवमन्नं वसां तैलं, शौच कार्ये सुखोदकम्।
प्रावाराजिन कौशेय प्रवेणी कौचवास्तृतम्॥ 13॥

- नूतन अन्न, वसा तथा तेल का सेवन करें। शरीर के शोधन में गुनगुने जल का प्रयोग करें। प्रावार (रुई से बना वस्त्र), अजिन (चमड़े से बना वस्त्र), कौशेय (कोसा, या रेशमी वस्त्र) प्रवेणी (ऊनी वस्त्र) और कौचव (कम्बल) आदि का उपयोग करें।

उष्ण स्वभावैर्लघुभि: प्रावृत: शयनं भजेत्।
युक्त्याऽर्क किरणान् स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा॥ 14॥

- उपरोक्त प्रकार के वस्त्रों से ढँके हुए बिस्तर पर, हलके वस्त्रों को ओढ़कर सोवें। युक्तिपूर्व सूर्य की किरणों का सेवन (पसीना आने तक) करें तथा पैरों में जूतों या खड़ाऊँ को हमेशा पहिने रहें।

पीवरोरुस्तनश्रोण्य: समदा: प्रमदा: प्रिया:।
हरन्ति शीतमुष्णांगयो धूप कुंकुम यौवनै:॥ 15॥

- पुष्ट ऊरु, स्तन एवं श्रोणी वाली, मदमत्त, प्रिय, धूप-केसर एवं यौवन के कारण उष्ण अंगों वाली स्त्रियाँ शीत को हर लेती हैं।

अंगार ताप सन्तप्त गर्भ भू वेश्म चारिणः।
शीत पारुष्य जनितो न दोषो जातु जायते॥ 16॥

– अंगारों की गर्मी से गर्म किये हुए, भूमि के नीचे बने तलघरों में रहने वाले व्यक्तियों में, शीत के पारुष्य (रुक्षता या कठोरता) के कारण उत्पन्न दोष कभी-भी पैदा नहीं होते।

शिशिर ऋतु चर्या

अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः।
तदाहि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादान कालजम्॥ 17॥

– क्योंकि शिशिर ऋतु में शीत का आधिक्य रहता है। अतः हेमन्त ऋतु की चर्या का प्रयोग इस ऋतु में भी करना चाहिए। कारण कि शिशिर में 'आदान काल जनित रुक्षता' भी अधिक होती है।

वसन्त ऋतु चर्या

कफश्चितोहि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशु तापितः।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत्॥ 18॥

– शिशिर ऋतु में संचित 'कफ', वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों की गर्मी से पिघल कर, 'अग्नि' को नष्ट करते हुए रोगों को उत्पन्न करता है। अतः उस कफ को तुरन्त दूर कर लेना चाहिए।

तीक्ष्णैर्वमन नस्याद्यैर्लघुरुक्षैश्च भोजनैः।
व्यायामोद्वर्तनाघातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम्॥ 19॥

– इसके लिए तीक्ष्ण वमन, नस्य, लघु तथा रुक्ष भोजन व्यायाम, उद्वर्तन तथा आघात का प्रयोग करके 'कफ' को शीघ्रतः शीघ्र जीत लेना चाहिए। उद्वर्तन आघात – अर्थात् बिना तेल की मालिश तथा पैरों से शरीर को दबवाना।

स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूर चन्दनागुरु कुंकुमैः।
पुराण यव गोधूम क्षौद्र जांगल शूल्य भुक्॥ 20॥

– स्नानोपरान्त कर्पूर-चंदन-अगरु और केसर का शरीर पर लेप करें। पुराने गेहूँ, जौ, शहद तथा जांगल-माँस या शूल (संस्कृत माँस) का भोजन करे।

सहकार रसोन्मिश्रानास्वाद्य प्रियया ऽर्पितान्।
प्रियाऽऽस्य संग सुरभीन् प्रिया नेत्रोत्पलांकितान्॥ 21॥
सौमनस्य कृतो हृद्यान्वयस्यैः सहितः पिबेत्।
निगदानासवारिष्टसी धुमार्द्वीक माधवान्॥ 22॥
श्रृंगबेराम्बु साराम्बु मध्वम्बु जलदाम्बु च।

– प्रिया से अर्पित किये, आम्ररस से सुगंधित, आस्वादित (जिन्हें प्रिया ने स्वयं चखकर दिया हो) तथा प्रिया के मुख के संग के कारण जो सुगंधित हो गये हों, प्रिया के कमल जैसे नयनों से प्रतिबिम्बित, मन को प्रसन्न करने वाले, हृदय के लिए उत्तम या सुस्वादु, निर्दोष आसव, अरिष्ट, सीधु, मार्द्वीक और माधव – इन रसों को अपने हमजोलियों के साथ पियें। सोंठ का पकाया जल, साराम्बु, मधु का शर्बत, नागर मोथे से सिद्ध जल को पियें।

दक्षिणानिल शीतेषु परितो जल वाहिषु॥ 23॥
अदृष्ट नष्ट सूर्येषु मणिकुट्टिम कान्तिषु।
पर पृष्ट विघुष्टेषु काम कर्मान्त भूमिषु॥ 24॥
विचित्र पुष्पवृक्षेषु काननेषु सुगंधिषु।
गोष्ठी कथाभिश्चित्राभिर्मध्याह्नं गमयेत् सुखी॥ 25॥

– जो जंगल या (बाग) दक्षिण दिशा की वायु से शीतल बने हुए हों, जिनके चारों ओर जल बह रहा हो। जिनमें सूर्य, या तो थोड़ा दिख रहा हो या बिलकुल ही न दिख रहा हो। जिनकी भूमि मणियों के फर्श के समान सुन्दर हो। जहाँ पर कोयल की कूक सूनायी दे रही हो। जो प्रेमालाप के उपयुक्त हो। नाना प्रकार के पुष्पित तथा सुगंध वाले वृक्ष लगे हों। वहाँ पर वसन्त ऋतु के मध्याह्न काल को गप-शप करके, आमोद-प्रमोद करके व्यतीत करना चाहिए।

गुरुशीत दिवास्वप्न स्निग्धाम्ल मधुरां त्यजेत्॥

– वसन्त ऋतु में गरिष्ठ भोजन, ठण्डे पदार्थ, दिन में सोना तथा स्निग्ध, अम्लीय तथा मधुर पदार्थों का सेवन त्याग देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु चर्या

तीक्ष्णांशुरति तीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मे संक्षिपतीव यत्॥ 26॥
प्रत्यहं क्षीपते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते।
अतोऽस्मिन् पटु कट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत्॥ 27॥

– ग्रीष्म ऋतु में अति तीक्ष्ण किरणों वाला सूर्य संसार के स्नेह को नष्ट करता है। इससे प्रतिदिन श्लेष्मा घटती जाती है और वायु बढ़ती है। इसलिए इस ऋतु में लवण, कटु तथा अम्ल रस, व्यायाम और सूर्य की किरणों का त्याग करना चाहिए।

भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम्।

– ग्रीष्म ऋतु में मधुर, थोड़ा (या हल्का), स्निग्ध (भोजन) और शीतल एवं द्रव पदार्थ का सेवन करना चाहिए।

सुशीतलोपसिक्तांगो लिह्यात् सक्तून् शर्करान्॥ 28॥

– अतिशय शीतल जल से स्नान करके, शर्करा मिश्रित सत्तू खाना चाहिए (पीना या चाटना चाहिए)।

मद्यं न पेयं पेयं वा स्वल्पं, सुबहु वारि वा।

– ग्रीष्म ऋतु में मद्य (शराब) नहीं पीना चाहिए। यदि पीने की आदत हो तो, बहुत पानी मिलाकर थोड़ा सा मद्य पिये।

अन्यथा शोष शैथिल्य दाह मोहान् करोति तत्॥ 29॥

– ऐसा न करने पर वह मद्य शरीर में शोष, शिथिलता, दाह और मोह पैदा करता है।

कुन्देन्दु धवलं शालिनश्नीयाज्जांगलैः पलैः।

– कुन्द पुष्प तथा चन्द्रमा के समान 'धवल' शालिधान्य को जांगल-माँस के साथ खाये।

पिबेद्रसं नातिघनं रसालां रागषाडवौ॥ 30॥
पानकं पंचसारं वा नवमृद्भाजने स्थितम्।

मोच चोच दलैर्युक्तं साम्लं मृन्मय शुक्तिभिः॥ 31॥
पाटला वासितं चाभ्भः सकर्पूरं सुशीतलम्।

– ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न माँस रस जो अधिक गाढ़ा न हो, पीना चाहिए। रसाला, राग, षाडव, पानक और पंचसार (इन्हें) मिट्टी के नये पात्र में रखकर, केला-दालचीनी और नारियल के टुकड़े मिलाकर (अनारदाने से) खट्टा करके, मिट्टी की चम्मचों से खायें। पाटला पुष्प से सुवासित कर्पूर मिश्रित अत्यन्त ठण्डे जल को पिये।

शशांक किरणान् भक्ष्यान् रजन्यां भक्षयन् पिवेत्।
ससितं माहिषं क्षीरं चन्द्र नक्षत्र शीतलम्॥ 32॥

– रात में चन्द्रमा की किरण में पके भक्ष्य पदार्थों को खाते हुए, चन्द्रमा तथा नक्षत्र से शीतल बने, शर्करा मिश्रित भैंस के दूध को पीना चाहिए। भैंस का दूध गाय के दूध की तुलना में अधिक शीतल होता है- 'महिषीणां गुरुतरं गण्यात् शीततर पयः।'

मध्यंदिनेऽर्क तापार्त्तः स्वप्याद् धारागृहेऽथवा॥ 36॥

– ग्रीष्म के सूर्य की गर्मी से पीड़ित व्यक्ति को मध्याह्न का समय 'धारागृहों' (शीतल छाया वाले पेड़ों के नीचे या कुंजों) में बिताना चाहिए।

निशाकर कराकीर्णे सौध पृष्ठे निशासु च॥ 37॥

– रात्रि में चाँदनी से व्याप्त मकान की छत पर सोना चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति को अपनी थकान चन्दन के लेप, पुष्पमाला, शीतल जल वाले फव्वारे और अपनी प्रिया के सहवास के द्वारा मिटानी चाहिए।

वर्षा ऋतु चर्या

आदान ग्लान वपुषामग्निः सन्नोऽपि सीदति।
वर्षासु दोषैर्दुष्यन्ति तेऽम्बु लम्बाम्बुदेऽम्बरे॥ 42॥
सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च।
भू वाष्पेणाम्ल पाकेन मलिनेन च वारिणा॥ 43॥

वह्नि नैव च मन्देन तेष्वित्यन्योन्य दूषिषु।
भजेत् साधारणं सर्वभूष्मणस्तेजनं च यत्॥ 44॥

– 'आदान काल' होने से अपचित धातु वाले शरीरों में पहले से ही मन्दाग्नि, दूषित वातादि दोषों से और भी मन्द हो जाती है। क्योंकि वर्षाकाल में जब आकाश पानी भरे बादलों से घिरा होता है, तब, तुषार मिश्रित शीतलवायु के एकदम से चलने के कारण, पृथ्वी के वाष्प से अम्लपाक वाले और मलिन पानी से तथा काल स्वभाव के कारण मन्द अग्नि से कफ दूषित होने से वातादि दोष एक दूसरे को दूषित करने लगते हैं। उस समय साधारण विधि अर्थात् मध्य रूप में तथा जो वस्तु अग्नि को प्रदीप्त करने वाली हो, उसका सेवन करना चाहिए।

आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्ण धान्यं रसान् कृतान्।
जांगलं पिशितं यूषान् मध्वरिष्टं चिरन्तनम्॥ 45॥
मस्तु सौवर्चलाढ्यं वा पंचकोलाव चूर्णितम्।
दिव्यं कौपं श्रृतं चाभ्भो भोजनं त्वतिदुर्दिने॥ 46॥
व्यक्ताम्ल लवण स्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु।

– वमन, विरेचन आदि से शरीर का शोधन करके आस्थापन वस्ति लेवे। पुराना धान्य (जौ–गेहूँ) स्नेह शुष्ठी आदि से संस्कृत माँस रसों को, जांगल पशुओं का माँस, मूँग आदि के यूष, मधु, पुराना अरिष्ट, एवं प्रचुर सौवर्चल नमक मिश्रित अथवा पंचकोल (पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) से मिश्रित मस्तु (दही का पानी) पियें। आकाश–वर्षा का पानी या कुएँ का पकाया जल पियें। वायु और वर्षा वाले दुर्दिन में स्पष्ट अम्ल, लवण एवं स्नेहयुक्त, शुष्क प्राय भोजन में मधु मिलाकर खायें तथा लघु (हल्का) भोजन करें।

अपादचारी सुरभि: सततं धूपिताम्बर:॥ 47॥
हर्म्यपृष्ठे वसेद् वाष्पशीत शीकर वर्जिते।

– वर्षा ऋतु में पैदल न चले, अपितु घोड़े आदि सवारी से यात्रा करें। सुरभिगंध धारण करें और नित्य प्रति वस्त्रों को धूप देवें। मकान के ऊपरी तल पर जहाँ वाष्प, शीत और जलकण न पहुँच सकें, वहाँ पर रहें या सोयें।

नदी जलोदमन्थाह: स्वप्नायासातपांम्त्यजेत्॥ 48॥

– नदी का जल, पानी में घोले सत्तू, दिन के सोने, परिश्रम तथा धूप का त्याग करें।

शरद ऋतु चर्या

वर्षा शीतोचितांगानां सहसैवार्क रश्मिभि:।
तप्तानां संचितं वृष्टौ पित्तं शरदि कुप्यति॥ 49॥
तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम्।

– वर्षाकालीन शीत जिनके अंगों को 'सात्म्य' बन गया है, ऐसे पुरुषों में– सूर्य की किरणों से सहसा ही गर्म होने पर वर्षा में संचित पित्त, शरद् ऋतु में कुपित हो जाता है। इस पित्त को शान्त करने के लिए तिक्त घृत, विरेचन तथा रक्तमोक्षण करना चाहिए।

तिक्तं स्वादु कषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल्लघु॥ 50॥
शालिमुद्गसिताधात्री पटोल मधु जांगलम्।

– भूख लगने पर तिक्त, मधुर, कषाय रस वाले शालि, मूँग, चीनी, आँवला, परवल, मधु और जांगल माँस का हलका भोजन करें।

तप्तं तप्तांशु किरणै: शीतं शीतांशु रश्मिभि:॥ 51॥
समन्तादप्य होरात्रमगस्त्योदय निर्विषम्।
शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम्॥ 52॥
नाभिष्यन्दि न वा रुक्षं पानादिष्वमृतोपमम्।

– सम्पूर्ण रूप से दिन में सूर्य की किरणों से गर्म और रात में चन्द्रमा की किरणों से शीतल हुआ, अगस्त्य के उदय से निर्विष बना, पवित्र जल 'हंसोदक' है। यह मल रहित, वातादि मल को जीतने वाला होता है। यह जल हंस के समान श्वेत – निर्मल होता है। यह हंसोदक न तो अभिष्यन्द करता है, और न रुक्ष है। पीने आदि कार्यों में अमृत के समान है।

चन्दनोशीर कर्पूर मुक्तास्रग्वसनोज्ज्वल:॥ 53॥
सौधेषु सौध धवलां चंद्रिकां रजनी मुखे।

– रात्रि के प्रथम प्रहर में ही चन्दन, खस, कर्पूर, मोती की माला तथा श्वेत वस्त्रों से उज्जवल बनकर 'प्रासाद' की छत पर श्वेत चन्द्रिका का सेवन करें।

तुषारक्षार सौहित्य दधि तैल वसाऽऽतपान्॥ 54॥
तीक्ष्ण मद्य दिवास्वप्न पुरोवातान् परित्यजेत्।

– ओस, यवक्षार, पेट भरकर खाना, दही, तेल, वसा, धूप, तीक्ष्ण मद्य, दिन में सोना और पूर्व दिशा की वायु – इनका त्याग करें, इनसे बचें।

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसन्तेऽन्त्यान् रसान् भजेत्॥ 55॥
स्वादुं निदाघे, शरदि स्वादुतिक्त कषायकान्।
शरद् वसन्तयोः रुक्षं शीतं घर्मघनान्तयोः॥ 56॥
अन्न पानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा।
नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ॥ 57॥

– शीत तथा वर्षा में मधुर अम्ल-लवण इन तीन रसों का सेवन करें। वसन्त में तिक्त, कटु, कषाय रसों का सेवन करें। ग्रीष्म में मधुर रस का तथा शरद् ऋतु में मधुर तिक्त और कषाय रस का सेवन करें। शरद और वसन्त ऋतु में रुक्ष-खानपान करें। और शेष ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर और हेमन्त में स्निग्ध भोजन करें। ग्रीष्म और शरद् में शीतल खानपान लेना चाहिए। वर्षा, वसन्त, हेमन्त, शिशिर में उष्ण खानपान करना चाहिए। यह संक्षेप में विभिन्न ऋतुओं में खानपान का विधान है।

किन्तु सभी ऋतुओं में सभी रसों को अभ्यास करना चाहिए। तथापि प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के अपने-अपने रस को अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिए।

ऋतु सन्धि

ऋत्वोरंत्यादि सप्ताहावृतु सन्धिरिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्॥ 58॥
असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्।

– वर्तमान ऋतु के अन्तिम सप्ताह और आगामी ऋतु के प्रथम सप्ताह के चौदह दिन के काल को 'ऋतु-सन्धि' कहते हैं। इन सप्ताहों में पूर्व ऋतु की विधि

को क्रमशः छोड़ते हुए आने वाली ऋतु की विधि को क्रमशः ग्रहण करना चाहिए। अचानक छोड़ देने से 'असात्म्यजन्य' रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

सम्वत्सर

सामान्यजन 'सम्वत्सर' को विक्रमीय सम्वत् का प्रथम दिन समझते हैं। सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को सम्वत्सर मानते हैं। इस तिथि में जगत् सृष्टा ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचना प्रारम्भ की थी। इस तिथि से वासन्ती नवरात्र का आरम्भ होता है।

लेकिन 'वेदों' में सम्वत्सर को 'काल सम्वत्सर आत्मा' बतलाते हुए एक देवता के रूप में स्वीकार किया गया है।

'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चला चलासः'(ऋग्वेद//प्रथम मण्डल/सूक्त-164/मन्त्र-48)

– एक चक्र है। उसे बारह अरे घेरे हुए हैं। उसकी तीन नाभियाँ हैं। उसे कोई विद्वान् ही जानते हैं। उसमें तीन सौ साठ चलायमान कीलें ठुकी हुई हैं।

विशेष –'चक्रमेकं' कालचक्र रूपी सम्वत्सर है। 'द्वादश प्रधयः' बारह मास हैं। 'त्रीणि नभ्यानि' – ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त – तीन ऋतुएँ हैं।[189] तीन सौ साठ कीलें वर्ष के तीन सौ साठ दिवस (अथवा 360 अंश) हैं।

'वृहद् देवता' (4/35) में सम्वत्सर को 'कालचक्र' के रूप में स्वीकार किया गया है :-

पञ्चधा च त्रिधा चैव षोढा द्वादशधैव च।
सम्वत्सरं चक्रवच्च पराभिः कीर्तयत्यृषिः॥

वस्तुतः सम्वत्सर काल चक्र का एक विभाजन है, जिसे 'यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता'[190] सूत्र के अनुसार देवत्व प्रदान किया गया है।

वायुपुराण (अ.-30, श्लोक-13) के अनुसार 'सम्वत्सराश्च स्थानानि कालावस्थाभिमानिनः।' अर्थात् सम्वत्सर (आदि) अवस्था के अभिमानी काल का 'अवयव' है। वायुपुराण (30/16) के अनुसार सम्वत्सर 'सुमेक' है। सुमेक मृत प्रजाजनों का प्रपितामह है। अ.-30 के श्लोक-21 के अनुसार सम्वत्सर ही प्रजापति है। यह 'अग्नि' तथा 'ऋत' भी है-

प्रजापतिः स्मृतो यस्तु स तु सम्वत्सरो मतः।
सम्वत्सरः स्मृतो ह्यग्निर्ऋतामित्युच्यते द्विजैः॥ 21॥

ऋतुओं का जनक भी सम्वत्सर ही है। 'ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्तः।' [191]

'बार्हस्पत्य-मान' के अनुसार सम्वत्सर पंच वर्षात्मक युग का प्रथम वर्ष भी है। [192] इसे ब्रह्मा का पुत्र (ब्रह्मणः सुतः) कहा गया है। [3]

यास्क मुनि ने कहा है कि चूँकि इसमें (सम्वत्सर में) समस्त भूत (जीवधारी) सम्यक् रूप से निवास करते हैं, इसलिए इसे सम्वत्सर नाम से जाना जाता है- 'सम्वत्सरः सम्वसन्तेऽस्मिन् भूतानि (निरुक्त, अ.-4, पृष्ठ-199)

साठ सम्वत्सर

बृहस्पति की अपनी 'मध्यम गति' के कारण सम्वत्सर साठ प्रकारों (या नामों) से जाना जाता है। ये साठ सम्वत्सर, पाँच-पाँच वर्ष के भेद से बारह युगों में विभाजित रहते हैं। इन साठ सम्वत्सरों के नाम ये हैं -

(1) प्रभव (2) विभव (3) शुक्ल (4) प्रमोद (5) प्रजापति (6) अंगिरा (7) श्रीमुख (8) भाव (9) युवा (10) धाता (11) ईश्वर (12) बहुधान्य (13) प्रमाथी (14) विक्रम (15) वृष (16) चित्रभानु (17) सुभानु (18) तारण (19) पार्थिव (20) व्यय (21) सर्वजित् (22) सर्वधारी (23) विरोधी (24) विकृत (25) खर (26) नन्दन (27) विजय (28) जय (29) मन्मथ (30) दुर्मुख (31) हेमलम्ब (32) विलम्ब (33) विकारी (34) शर्वरी (35) प्लव (36) शुभकृत् (37) शोभन (38) क्रोधी (39) विश्वावसु (40) पराभव (41) प्लवङ्ग (42) कीलक (43) सौम्य (44) समान (45) विरोधकृत् (46)

परिभावी (47) प्रमादी (48) आनन्द (49) राक्षस (50) अनल (51) पिंगल (52) कालयुक्त (53) सिद्धार्थ (54) रौद्र (55) दुर्मति (56) दुन्दुभि (57) रुधिरोद्गारी (58) रक्ताक्ष (59) क्रोधन तथा (60) क्षय। [194]

ये सभी अपने नाम के अनुरूप फल देने वाले हैं। इन सभी सम्वत्सरों के (पाँच-पाँच वर्ष के) युग के अनुसार बारह स्वामी या अधिपति हैं -

(1) एक से पाँच तक के युग के स्वामी 'विष्णु' हैं।
(2) छै से दस तक के युग के स्वामी 'बृहस्पति' हैं।
(3) ग्यारह से पन्द्रह तक के युग के स्वामी 'इन्द्र' हैं।
(4) सोलह से बीस तक के युग के स्वामी 'लोहित' हैं।
(5) इक्कीस से पच्चीस तक के युग के स्वामी 'त्वष्टा' हैं।
(6) छब्बीस से तीस तक के युग के स्वामी 'अहिर्बुघ्न्य' हैं।
(7) इकतीस से पैंतीस तक के युग के स्वामी 'पितर' हैं।
(8) छत्तीस से चालीस तक के युग के स्वामी 'विश्वेदेव' हैं।
(9) इकतालीस से पैंतालीस तक के युग के स्वामी 'चन्द्रमा' हैं।
(10) छियालीस से पचास तक के युग के स्वामी 'इन्द्राग्नि' हैं।
(11) इक्यावन से पचपन तक के युग के स्वामी 'अश्विनी कुमार' हैं।
(12) छप्पन से साठ तक के युग के स्वामी 'भग' हैं।

इन साठों सम्वत्सरों का, पाँच-पाँच वर्ष के बारह समूहों में विभाजन किया गया है। पाँच वर्ष का समूह 'पंचाब्द' कहलाता है। इन पाँचों वर्षों के नाम क्रमशः - (1) सम्वत्सर (2) परिवत्सर (3) इद्वत्सर (4) अनुवत्सर तथा (5) वत्सर हैं। इन पाँचों के भी अलग-अलग स्वामी हैं, जो क्रमशः - (1) अग्नि (2) सूर्य (3) चन्द्रमा (4) ब्रह्मा और (5) शिव हैं। [195]

इस 'पंचाब्द युग' (या सम्वत्सर) को 'कण्य' नामक पितर कहा गया है।[196] अर्थात् जो सौम्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्त और कण्य आदि पितर हैं, उनमें से पंचाब्द-संवत्सर को कण्य नामक पितर समझना चाहिए।

सम्वत्सर जानने की विधि [197]

यह ज्ञात करने के लिए कि किस शक सम्वत् में कौन-सा (किस नाम का)

सम्वत्सर है, निम्नलिखित विधि का प्रयोग करना चाहिए –

(1) अभीष्ट शक सम्वत् में 22 का गुणा करो।

(2) गुणन फल में 4291 जोड़ो।

(3) जोड़ में 1875 का भाग दो। लब्धि वर्षात्मक।

(4) भागशेष में 12 का गुणा करो।

(5) गुणन फल में 1875 का भाग दो। लब्धि मासात्मक।

(6) भाग शेष में 30 का गुणा करो।

(7) इस गुणन फल में 1875 का भाग दो। लब्धि दिनात्मक।

(8) शेष में 60 का गुणा करो।

(9) गुणन फल में 1875 का भाग दो। लब्धि घट्यात्मक।

(10) शेष में 60 का गुणा करो।

(11) गुणन फल में 1875 का भाग दो। लब्धि पलात्मक।

(12) प्राप्त वर्षादि को अलग रखो।

(13) इसे शाके में जोड़ो।

(14) जोड़ में 60 का भाग दो। लब्धि भुक्त वर्ष होगी।

(15) शेष संख्या के आधार पर भुक्त (या गत सम्वत्सर) तथा अगली संख्या के आधार पर (उसी क्रमांक का) वर्तमान सम्वत्सर का नाम प्राप्त होगा।

उदाहरण –वर्तमान शक सम्वत् का सम्वत्सर ज्ञात करना है। वर्तमान शक – 1926

(1) 1926 × 22 = 42372

(2) 42372 + 4291 = 46663

(3) 46663 भागित 1875 = लब्धि 24 शेष 1663

(4) 1926 + 24 = 1950

(5) 1950 भागित 60 = लब्धि 32 शेष 30

(6) लब्धि 32 को त्याग दिया। शेष 30, क्रमांक 30 पर अंकित भुक्त सम्वत्सर दुर्मुख है। इससे अगली संख्या 31 पर अंकित हेमलम्ब नामक सम्वत्सर वर्तमान संवत्सर है।

सृष्टि काल

जिस 'काल' में सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि होती है, उसे सृष्टि काल कहते हैं।

सम्पूर्ण सृष्टि काल 'पर' नाम से विख्यात है। इस 'पर' की कालावधि बहत्तर हजार 'कल्प' है। एक कल्प एक सहस्र महायुग के बराबर होता है, अत: सम्पूर्ण 'पर' सात करोड़ बीस लाख महायुगों बाद समाप्त होता है। इस 'पर' के अधिदेवता 'ब्रह्मा' हैं और 'पर' उन्हीं की 'परम आयु' मानी जाती है। ब्रह्मा के निज–मान से यह आयु पूरे एक सौ वर्ष है।

दूसरे शब्दों में, ब्रह्मा की आयु के सौ वर्ष सर्वप्रथम दो 'परार्धों' में विभाजित हैं जिन्हें क्रमश: प्रथम परार्ध और द्वितीय परार्ध कहते हैं।

प्रत्येक परार्ध पचास बाह्य वर्ष का रहता है। एक ब्राह्य वर्ष में सात सौ बीस कल्प होते हैं। इनमें तीन सौ साठ कल्प ब्रह्मा के दिन, तथा तीन सौ साठ कल्प ब्रह्मा की रात्रि कहलाते हैं। ब्रह्मा अपने दिन में सृष्टि करते हैं और रात्रि में शयन। अर्थात् जब तक दिन रहता है, सृष्टि की प्रक्रिया जारी रहती है। जब दिन समाप्त हो जाता है, तब 'नैमित्तिक' नामक प्रलय होता है–

चतुर्दश गुणो ह्येष कालो ब्राह्ममह: स्मृतम्।
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चर: ॥ 22 ॥[198]

इस नैमित्तिक प्रतिसंचर में तीनों लोक जल जाते हैं और ब्रह्मा एक कल्प की अवधि तक शेषशय्या पर शयन करते हैं। इस अवधि (ब्राह्म रात्रि) के बीत जाने पर ब्रह्मा के द्वारा पुन: सृष्टि की जाती है जो लगातार एक कल्प तक चलती रहती है।

इस प्रकार हर ब्राह्म दिवस में सृष्टि और हर ब्राह्म रात्रि में नैमित्तिक-प्रतिसंचर - इस प्रकार का कालचक्र सम्पूर्ण 'पर' या ब्रह्मा की परम आयु के अन्तर्गत बहत्तर हजार बार 'पुनरावर्तित' होता है। इसके बाद तो ब्रह्मा ही अपने मूल कारण 'पर ब्रह्म' में लीन हो जाते हैं और इस प्राकृत-प्रलय के पश्चात् फिर से नया जन्म ग्रहण करते हैं।

महर्षि पाराशर का कथन है कि ब्रह्मा का पूर्णत: क्षय हो जाने के बाद, शून्य जैसी स्थिति हो जाती है और एकमात्र 'परमेश्वर' के अलावा और कुछ भी नहीं बचता।

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि:
नासीत्तमो ज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादि बुद्धयानुपलभ्यमेकं -
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्॥ 23॥ [199]

- अर्थात् वर्तमान ब्रह्मा की उत्पत्ति से पहले (प्राकृत प्रलय काल में) न तो दिन था, न रात्रि थी। न आकाश था, न पृथ्वी थी। न अन्धकार था, न प्रकाश था। इनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। और था तो, बस एकमात्र प्रधान परब्रह्म ही था जो श्रोत्रादि इन्द्रियों अथवा बुद्धि आदि का 'अविषय' है। दूसरे शब्दों में शून्य काल की स्थिति थी।

पाराशर जी कहते हैं - 'काल रूप भगवान् अनादि हैं, इनका अन्त नहीं है, इसलिए संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी कभी नहीं रुकते, वे प्रवाह रूप से निरन्तर होते रहते हैं। [200]

सर्ग-काल

जिस काल में जगत् की सृष्टि अथवा सृजन होता है, उसे 'सर्ग' कहते हैं। सर्ग शब्द सृष्टि की प्रक्रिया अथवा सृजन के आगे बढ़ने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।[201]

पुराणों के अनुसार इस संसार की सृष्टि नौ सर्गों में विभाजित है। ये नौ सर्ग

इस प्रकार सम्पन्न हुए हैं -

(1) महत् सर्ग (2) तन्मात्रा या भूत सर्ग (3) वैकारिक या इन्द्रिय सर्ग (4) मुख्य सर्ग (5) तिर्यक् स्रोत सर्ग (6) ऊर्ध्व स्रोता सर्ग (7) अर्वाक् स्रोता सर्ग (8) अनुग्रह सर्ग और (9) कौमार सर्ग। [202]

इन सर्गों में प्रथम तीन सर्ग 'प्राकृत सर्ग' कहलाते हैं। द्वितीय पाँच सर्ग (मुख्य, तिर्यक्, ऊर्ध्व, अर्वाक् और अनुग्रह सर्ग) 'वैकृत' नाम से जाने जाते हैं। तथा नौवाँ 'कौमार सर्ग' प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का है।

ये 'नवों-सर्ग' वर्तमान 'ब्रह्मा' के जन्मकाल (प्रथम परार्ध के प्रारम्भ) में लगभग पन्द्रह शंख, पचपन खरब, इक्कीस अरब, सन्तानवै करोड़, उन्तीस लाख, उन्नचास हजार एक सौ तीन सौर वर्ष पूर्व सम्पन्न हुए थे। यदि वर्तमान श्वेत वाराह कल्प में इनका सम्पन्न होना माना जाये तो एक अरब, सन्तानवे करोड़, उन्तीस लाख, उन्नचास हजार एक सौ तीन सौर वर्ष पूर्व इन सर्गों का आरम्भ हुआ था। सूर्य सिद्धान्त की मान्यता है कि आरम्भिक तीन सर्गों की प्रक्रिया में सैंतालीस हजार चार सौ दिव्य वर्षों का समय लगा था। [203]

ग्रहर्क्ष देव दैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रि वेदा दिव्याब्द: शतघ्ना वेधसोगता:॥ 24॥

इन नौ सर्गों में से, किस सर्ग में किस-किस का सृजन हुआ, यह जान लेना आवश्यक है, अन्यथा 'सर्ग काल' का स्पष्टीकरण नहीं हो पायेगा -

महत्त् सर्ग -

गुण साम्यात् ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने।
गुण व्यंजन संभूति: सर्गकाले द्विजोत्तम॥ 33॥ [205]

- सर्गकाल के प्राप्त होने पर गुणों की साम्यावस्था रूप प्रधान जब विष्णु के क्षेत्रज्ञ रूप से अधिष्ठित हुआ तो उससे 'महत्तत्त्व' की उत्पत्ति हुई।

महत्तत्त्व सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का है। इससे वैकारिक, तैजस तथा भूतादि भेद से तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ।

तन्मात्रा या भूतसर्ग –

भूतादि तामस अहंकार ने विकृत होकर सर्वप्रथम शब्द तन्मात्रा और उससे शब्द गुण वाले आकाश की रचना की।

शब्द तन्मात्रा रूप आकाश ने विकृत होकर स्पर्श तन्मात्रा तथा (स्पर्श तन्मात्रा ने) वायु की रचना की। वायु का गुण स्पर्श है।

स्पर्श तन्मात्रा (तथा वायु) ने विकृत होकर 'रूप तन्मात्रा' (तथा तेज) की सृष्टि की। तेज का गुण रूप है।

रूप तन्मात्रा (तथा तेज) ने विकृत होकर 'रस तन्मात्रा' (तथा जल) की सृष्टि की। जल का गुण 'रस' है।

रस तन्मात्रा (तथा जल) से 'गन्ध तन्मात्रा' तथा 'गंध' गुण वाली पृथ्वी की रचना की।

इस तन्मात्रा सर्ग की विशेषता यह है कि शब्द तन्मात्रा में केवल शब्द गुण, स्पर्श तन्मात्रा में शब्द और स्पर्श – दो गुण, रूप तन्मात्रा में शब्द, स्पर्श और रूप – तीन गुण, रस तन्मात्रा में शब्द, स्पर्श, रूप और रस – चार गुण, तथा गन्ध तन्मात्रा में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध – पाँचों गुण हैं। इसी कारण पृथ्वी में पाँचों गुण माने जाते हैं।

वैकारिक या इन्द्रिय सर्ग –

तैज सानीन्द्रियाण्याहु र्देवा वैकारिका दश॥ 46॥[206]
एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिका: स्मृता:॥ 46-1/2॥

– इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकार से और उनके अधिष्ठाता दस देवता, वैकारिक अर्थात् सात्त्विक-अहंकार से उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। इनमें ग्यारहवाँ (इन्द्रिय अथवा दशों इन्द्रियों का अधिदेवता) मन है। ये सभी वैकारिक हैं।

तन्मात्राएँ केवल गुण रूप हैं, उनमें विशेष भाव नहीं है। इसलिए इन्हें 'अविशेष' कहते हैं। इसके विपरीत पाँच महाभूत (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी) शान्त, घोर तथा मूढ हैं, इस कारण इन्हें 'विशेष' कहा जाता है।

काल के द्वारा क्षोभित किये जाने पर पुरुष तथा प्रकृति ने इन पंच महाभूतों के द्वारा 'ब्रह्माण्ड' की सृष्टि की जिससे स्वयं पर ब्रह्मा 'ब्रह्मा' के रूप में प्रकट हुआ।

मुख्य सर्ग –

सर्ग के आदि में अबुद्धिपूर्वक चिंतन किये जाने पर सर्वप्रथम तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध तामिस्र नामक पंचपर्वा 'अविद्या' उत्पन्न हुई। इसका ध्यान करने पर ज्ञानशून्य, तमोमय और जड़-नग आदि रूप पाँच प्रकार का सर्ग हुआ जो मुख्य सर्ग कहलाता है। इस सर्ग में पर्वत, वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुत् तथा तृणादि हुए।[207]

तिर्यक् स्त्रोत सर्ग –

इस पाँचवें सर्ग में वायु के समान तिरछे चलने वाले – पशु-पक्षी आदि हुए।[208]

ऊर्ध्व स्त्रोत सर्ग –

इस सर्ग में पृथ्वी से ऊपर के लोकों में रहने वाले प्राणी उत्पन्न हुए। इनमें देवताओं की गणना की जाती है। यह 'देव सर्ग' कहलाता है।

अर्वाक् स्त्रोत सर्ग –

इस सर्ग के प्राणी नीचे पृथ्वी पर रहते हैं। इसी से उन्हें 'अर्वाक्-स्त्रोत' कहा जाता है। इनमें सत्त्व, रज और तम – तीनों की ही अधिकता होती है। इसलिए वे दु:खबहुल अत्यन्त क्रियाशील एवं भीतर-बाहर से ज्ञानयुक्त तथा साधक होते हैं। इस सर्ग के प्राणी मनुष्य कहलाते हैं।

अनुग्रह सर्ग –

यह सर्ग पुराणों में तनिक अस्पष्ट-सा है। तथापि वायु पुराण के अनुसार इस सर्ग में जो सृष्टि की गई है, वह सात्त्विक और तामस के सम्मिश्रण से प्रादुर्भाव है। यह सर्ग समस्त प्राणियों में चार प्रकार से पूर्णरूपेण स्थित है। शक्ति, तुष्टि और सिद्धि के विपर्यय क्रम से स्थावर सृष्टि में विपर्यय और तिर्यक् योनियों में शक्ति का संचार हुआ है। अत: मनुष्यों में 'सिद्धि' तथा देवों में 'तुष्टि' पूर्ण रूप से निहित

है।[209] इससे उन्हें विवृत्त और वर्तमान का ज्ञान होता है।

कौमार सर्ग -

यह प्राकृत-वैकृत सर्ग है। इस सर्ग में ब्रह्मा ने अपने ही समान सनकादि चार पुत्र उत्पन्न किये जो चिरकुमार हैं। अत: इस सर्ग को 'कौमार सर्ग' कहा जाता है।

विशेष - स्मरणीय है कि उपर्युक्त नवों सर्ग पूर्वापर न होकर, एक ही देशकाल में सम्पन्न हुए हैं। इनमें पूर्व-पश्चात् का भेद नहीं करना चाहिए।

प्रलय-काल

'प्रलय' का अर्थ, किसी पदार्थ, वस्तु, स्थान या जीव का अपने मूल कारण में लीन हो जाना है।[210] 'काल' की गति में लीन हो जाना ही 'प्रलय' है। इसके कई समानार्थी है जो - (1) संवर्त्त (2) प्रलय (3) कल्प (4) क्षय (5) कल्पान्त (6) प्रतिसर्ग (7) प्रतिसंचर (8) पंचता (9) कालधर्म (10) दिष्टान्त (11) अत्यय: (12) अन्त (13) नाश (14) मृत्यु (15) मरण तथा (16) निधन इत्यादि नामों से जाने जाते हैं।[211]

'प्रलय' वस्तुत: एक कालावधि है। जब किसी सृष्ट-पदार्थ की स्थिति का काल समाप्त हो जाता है, तब वह छिन्न-भिन्न होकर अपने 'मूल कारण' में समा जाता है।

पुराणों में 'प्रलय' चार प्रकार का माना गया है - (1) नित्य प्रलय (2) नैमित्तिक प्रलय (3) प्राकृत प्रलय और (4) आत्यन्तिक प्रलय।[212]

(1) नित्य-प्रलय - 'लोक' में (यहाँ) जो प्राणियों का नित्य-क्षय (उत्पन्न होकर नष्ट हो जाना) दिखायी देता है, उसे मुनियों ने 'नित्य-प्रतिसंचर' कहा है।

(2) नैमित्तिक-प्रलय - एक हजार चतुर्युग व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा का दिन

(कल्प) समाप्त हो जाता है, तब जो प्रलय होता है, उसे 'नैमित्तिक' प्रलय कहते हैं। इस प्रलय की सम्पूर्ण अवधि एक कल्प के बराबर होती है। इसे ब्रह्मा की 'रात्रि' कहा जाता है।

(3) प्राकृत-प्रलय - ब्रह्मा की परम आयु (द्विपरार्ध) समाप्त हो जाने पर 'प्राकृत-प्रलय' होता है। इस प्रलय में 'पुरुष और प्रकृति' एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी 'पर ब्रह्म में विलीन' हो जाते हैं।

(4) आत्यन्तिक-प्रलय - जब ज्ञान द्वारा योगीजन, परमात्मा में लीन हो जाते हैं अथवा उनकी परमात्म तत्त्व से एकरूपता हो जाती है, तब उसे 'आत्यन्तिक-प्रलय' कहा जाता है।

उपरि-उक्त चारों प्रलय वस्तुत: 'काल' के क्रीड़ा-विलास हैं। जीवधारियों का उत्पन्न होकर एक विशेष काल तक जीवित रहना और फिर मर जाना नित्य का कार्य है। इसीलिए इसे 'नित्य-प्रलय' कहा जाता है।

प्रत्येक चतुर्युग के अन्तिम भाग 'कलियुग' में, धर्म, संस्कृति और सभ्यता का क्षय होता है। मनुष्यों की आयु तथा शारीरिक क्षमता घटती चली जाती है। यह भी एक प्रकार का 'प्रलय' है।

प्रत्येक मन्वन्तर के अन्तिम भाग में (संध्यांश काल में) 'जलप्लावन' होता है। यह भी एक प्रलय है। किन्तु वास्तविक-प्रलय केवल दो ही होते हैं - एक कल्पान्त में और दूसरा ब्रह्मा की आयु के पूर्ण हो जाने के बाद।

वर्तमान सृष्टि के गत-वर्ष

प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू-परिवार में जब कोई धार्मिक-अनुष्ठान, संस्कार अथवा श्राद्ध (तर्पण आदि) सम्पन्न होता है, तब उस परिवार का आचार्य 'संकल्प-मंत्र' पढ़ता है। उस संकल्प मंत्र में वर्तमान-सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान-तिथि तक की कालावधि के विगत कालमानों का उच्चारण किया जाता है। तत्पश्चात् यजमान के गोत्र-प्रवर-शाखा-सूत्रों तथा प्रपितामह तथा पितामह के नामों का उच्चारण करते हुए मूलोद्देश्य का संकल्प किया जाता है।

उक्त संकल्प मंत्र के अनुसार सर्वप्रथम 'ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय परार्धे' कहा जाता है, जिसका अर्थ हुआ कि वर्तमान ब्रह्मा की आयु के पचास वर्ष गत हो चुके हैं और इक्यानवाँ वर्ष शुरू हो चुका है।

फिर 'श्वेत वाराह कल्पे' कहा जाता है। जिसका अर्थ हुआ कि ब्रह्मा की आयु के पचास वर्ष बीत जाने पर इक्यावनवें वर्ष का प्रथम दिवस 'श्वेत वाराह' कल्प का आरम्भ हो चुका है। [213]

तीसरे क्रम में 'वैवस्वत मन्वन्तरे' कहा जाता है। इसका अर्थ हुआ कि श्वेत वाराह कल्प की पूर्व कालावधि के क्रमशः - (1) स्वयंभू (2) स्वारोचिष (3) उत्तम (4) तामस (5) रैवत (6) चाक्षुष - ये छहों मन्वन्तर पूर्ण रूप से व्यतीत हो चुके हैं और सातवाँ 'वैवस्वत-मन्वन्तर' शुरू हो चुका है।

चौथे क्रम में 'अष्टाविंशति तमे युगे,' कहा जाता है। जिसका अर्थ हुआ कि वैवस्वत मन्वन्तर के अभी तक 27 चतुर्युग पूरे बीत चुके हैं और 28 वें चतुर्युग के सत्य-त्रेता और द्वापर - ये तीन युग भी पूरे बीत चुके हैं।

पाँचवे क्रम में 'कलियुगे-कलौ प्रथम चरणें' कहा जाता है। जिसका अर्थ हुआ कि अट्ठाइसवें चतुर्युग का कलियुग शुरू हो गया है और उसका प्रथम चरण चल रहा है।

छठे क्रम में 'बौद्धावतारे' कहा जाता है। अर्थात् विष्णु के दस-प्रमुख अवतारों में से नौवाँ बौद्धावतार हो चुका है।

सातवें क्रम में 'विक्रम शके' (या विक्रमाब्दे) कहकर यह बताया जाता है कि कलियुग को शुरु हुए और विक्रम सम्वत् के गताब्द जोड़कर अभी तक कुल 5103 सौर वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

तत्पश्चात् वर्तमान सम्वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वासर, नक्षत्र, योग, करण इत्यादि का उच्चारण किया जाता है। [214]

इस संकल्प-मंत्र के अनुसार वर्तमान ब्रह्मा की आयु के कुल वर्ष अभी तक निम्नलिखित रूप से बीत चुके हैं :-

(1) ब्रह्मा के प्रथम परार्ध (50 वर्ष) के कुल वर्ष = 360 + 360 = 720 कल्प × 50 = 36000 कल्प या 36000 × 1000 = 36000000 चतुर्युग.

(2) वर्तमान श्वेत वाराह कल्प के गत 6 मन्वन्तर.

(3) सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के 27 चतुर्युग.

(4) अट्ठाइसवें चतुर्युग के कृत, त्रेता और द्वापर युग =

(5) अट्ठाइसवें कलियुग के गत 5103 मानव वर्ष.

= उपरोक्त पाँचों काल-मानों का एकत्र योग 50 ब्राह्म वर्ष + श्वेत वाराह कल्प के एक अरब, सत्तानवे करोड़, उन्तीस लाख, उन्नचास हजार एक सौ तीन मानव (सौर) वर्ष होता है।

- पं. दीनानाथ शर्मा शास्त्री की गणना के अनुसार हमारी वर्तमान सृष्टि के 'ब्रह्मा' की आयु के आज की तिथि तक कुल 15,55,21,97,29,49103 सौर वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। एवं वर्तमान कल्प को शुरु हुए 1,97,29,49,103 सौर वर्ष गत हुए हैं। [215]

कल्प काल

ब्रह्मा के एक दिन को 'कल्प' कहते हैं। चूँकि इस 'काल' में सृष्टि करने की योजना 'संकल्पपूर्वक' बनायी गयी थी, अतः इसका नाम 'कल्प' प्रसिद्ध हो गया।

'कल्प' की पूर्ण अवधि एक हजार महायुगों (अथवा चतुर्युगों) में विभाजित रहती है। अर्थात् जब एक हजार चतुर्युग पूरे-पूरे बीत जाते हैं, तब एक कल्प पूर्ण होता है। लेकिन व्यावहारिक और प्रत्यक्ष प्रमाण रूप में, एक कल्प के 'काल' में मन्वन्तर नामक काल-चक्र चौदह बार भ्रमण करता है जिसके कारण सूर्य की स्थिति भी चौदह बार बदलती है। 'मनु' सूर्य को ही कहते हैं। अतः एक कल्प को चौदह काल विभागों में विभाजित किया गया है जिन्हें क्रमशः चौदह मन्वन्तर या चौदह मनुओं का 'काल' कहा जाता है। इस चतुर्दश-मन्वन्तर काल का प्रथम कृत

युग (सत्य युग) तथा अन्तिम कलियुग क्रमश: सृष्टि तथा प्रलय के दो छोर हैं।

प्राचीन ऋषियों ने कल्पों के तीस नाम गिनाये हैं। इन्हीं तीस कल्पों के व्यतीत होने पर एक 'ब्राह्म मास' पूर्ण होता है। इन तीस कल्पों के नाम क्रमश: निम्नलिखित हैं[216] :-

(1) श्वेत वाराह (2) नील लोहित (3) वामदेव (4) रथन्तर (5) रौरव (6) प्राण (7) बृहत् (8) कन्दर्प (9) सत्य (या सद्य) (10) ईशान (11) व्यान (12) सारस्वत (13) उदान (14) गारुड़ (15) कौर्म (16) नारसिंह (17) समान (18) आग्नेय (19) सोम (20) मानव (21) पुमान् (22) वैकुण्ठ (23) लक्ष्मी (24) सावित्री (25) घोर (26) वाराह (27) वैराज (28) गौरी (29) माहेश्वर (30) पितृ।[217]

- इन तीस कल्पों के अन्तर्गत पन्द्रहवें 'कौर्म कल्प' को ब्रह्मा की 'पूर्णिमा' तथा तीसवें 'पितृ कल्प' को ब्रह्मा की 'अमावस्या' माना जाता है।

इन कल्पों को तद्गुणों के अनुसार पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है- (1) संकीर्ण (2) तामस (3) राजस (4) सात्त्विक और (5) रजस्तम। इनमें संकीर्ण वर्ग के कल्पों में सरस्वती तथा पितृ की तामस कल्पों में अग्नि और शिव की, राजस कल्पों में ब्रह्मा की, सात्त्विक कल्पों में विष्णु की महिमा गायी गई है।

मन्वन्तर काल

एक 'मनु' के कार्यकाल अथवा मनु की पूर्ण आयु को मन्वन्तर कहा जाता है।

मनु का एक दिन-रात दस दिव्य वर्षों के तुल्य होता है।

इस दिन-रात का दस गुना (अथवा सौ दिव्य वर्ष) मनु का एक 'पक्ष' होता है।

ऐसे दस पक्षों का मनु का एक मास होता है। मनु के बारह महीनों की एक ऋतु मानी जाती है।

मनु की तीन ऋतुओं का एक अयन तथा दो अयनों का एक 'मनु वर्ष' होता है।

मनु का एक वर्ष बहत्तर हजार दिव्य वर्षों के तुल्य होता है।

मनु का सम्पूर्ण कार्यकाल इकहत्तर चतुर्युग से कुछ अधिक (लगभग पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष अधिक) अथवा 12000 × 71 + (5103 दिव्य वर्ष) = 857103 दिव्य वर्ष होता है।

मन्वन्तर के भी दक्षिणायन और उत्तरायण नामक दो अयन होते हैं। उत्तरायण पूर्ण हो जाने पर (मनु पहले 'धूमादि मार्ग' से देव लोक में पहुँचते हैं, फिर अपने अधिकार का भोग कर लेने के बाद) उत्तरायण के मार्ग से ब्रह्म लोक में पहुँच जाते हैं। अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। एक मनु की समाप्ति पर दूसरा मनु आता है जिसका कार्यकाल भी इतना ही रहता है।[218]

चतुर्दश-मन्वन्तर

'मनु' तथा उनके नाम से प्रसिद्ध 'मन्वन्तर' संख्या में चौदह हैं जो क्रमानुसार 71-71 चतुर्युग का काल पूर्ण करते हुए, संसार में सृष्टि, पालन, धर्मानुशासन तथा संहार का कार्य करते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति मनु, इन्द्र, पूज्य देवगण, सप्तर्षि तथा मनु पुत्र तथा उनके वंशधर अलग-अलग होते हैं। इन चौदह मनुओं के मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर 'ब्रह्मा' का एक दिन या 'कल्प' समाप्त हो जाता है। तथा ब्रह्मा की रात्रि (या प्रलय काल) शुरु हो जाता है।

(1) स्वायंभुव मन्वन्तर - इस वर्तमान 'श्वेत वाराह कल्प' के आरम्भ में सर्वप्रथम स्वायंभुव मनु हुए जिनके कारण 'स्वायंभुव मन्वन्तर' प्रसिद्ध हुआ। शेष तेरह मन्वन्तर इस प्रकार हैं :-

(2) स्वारोचिष मन्वन्तर (मनु - स्वरोचि)

(3) औत्तम मन्वन्तर (मनु - उत्तम)

(4) तामस मन्वन्तर (मनु - तामस)

(5) रैवत मन्वन्तर (मनु - रैवत)

(6) चाक्षुष मन्वन्तर (मनु - चाक्षुष)

(7) वैवस्वत मन्वन्तर (मनु - वैवस्वत)

(8) सावर्णिक मन्वन्तर (मनु - सावर्णि)

(9) दक्ष सावर्णिक मन्वन्तर (मनु - दक्षसावर्णि)

(10) ब्रह्म सावर्णिक मन्वन्तर (मनु - ब्रह्म सावर्णि)

(11) धर्म सावर्णिक मन्वन्तर (मनु - धर्म सावर्णि)

(12) रुद्र सावर्णिक मन्वन्तर (मनु - रुद्र सावर्णि)

(13) रौच्य मन्वन्तर (मनु - रुचि)

(14) भौत्य मन्वन्तर (मनु - भूति)

इन चौदह मन्वन्तरों में से (स्वायंभुव से लेकर चाक्षुष तक) छै मन्वन्तर पूर्ण रूप से व्यतीत हो चुके हैं। सातवें वैवस्वत मन्वन्तर को वर्तमान माना जाता है। इस मन्वन्तर के भी आज की तिथि तक 27 चतुर्युग पूर्ण रूप से बीत चुके हैं। 28 वें चतुर्युग के भी सत्य युग, त्रेता युग, द्वापर युग पूरे बीत गये हैं तथा 28 वें (वर्तमान) कलियुग को प्रारम्भ हुए पाँच हजार एक सौ एक मानव वर्ष पूरे हो चुके हैं। वर्तमान कलियुग की (मानव वर्षों में) शेष आयु 432000-5101 वर्ष = 426899 मानव वर्ष व्यतीत होनी है। तत्पश्चात् 71-28 = 43 चतुर्युग का काल पूरा हो जाने पर आठवाँ मन्वन्तर 'सावर्णिक' प्रारम्भ होगा। शेष 9 से लेकर 14 तक के मन्वन्तर भी इसी क्रम में व्यतीत होंगे तब कहीं ब्रह्मा का दिन समाप्त होगा।[219]

मन्वादि तिथियाँ

'मन्वादि तिथि' उस तिथि को कहते हैं जिसमें किसी 'मनु' का जन्म (या प्राकट्य) हुआ हो। भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में ऐसी चौदह तिथियाँ आज भी सुरक्षित व स्मरणीय हैं। इन तिथियों में यदि कोई मनुष्य 'पितृकर्म' (पार्वण श्राद्ध) करता है, तो उसे अत्यन्त पुण्य का लाभ होता है।

(1) कार्त्तिक शुक्ला द्वादशी, (2) आश्विन शुक्ला नवमी, (3) चैत्र शुक्ला तृतीया, (4) भाद्रपद शुक्ला तृतीया, (5) पौष शुक्ला एकादशी, (6) आषाढ़ शुक्ला दशमी, (7) माघ शुक्ला सप्तमी, (8) भाद्रपद कृष्णा अष्टमी, (9) श्रावणी अमावस्या, (10) फाल्गुनी पूर्णिमा, (11) आषाढ़ी पूर्णिमा, (12) कार्तिकी पूर्णिमा, (13) ज्येष्ठ की पूर्णिमा, (14) चैत्र की पूर्णिमा।

- *अश्वयुक् शुक्ल नवमी, कार्त्तिके द्वादशी सिता।*
तृतीया चैत्रमासस्य, तथा भाद्रपदस्य च॥
आषाढ़ शुक्ल दशमी सिता माघस्य सप्तमी।
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा, तथाषाढ़ी च पूर्णिमा॥
फाल्गुनस्य त्वमावास्या, पौषस्यैकादशी सिता।
कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री, ज्यैष्ठी पंचदशी सिता॥
मन्वादयः समाख्याताः दत्तस्याक्षयकारिकाः।

(नारद पुराण/पूर्व भाग/25/51-55)

युग के चतुष्पाद

'युग' शब्द महायुग, चतुर्युग अथवा दिव्य-युग का बोधक है। यद्यपि पूर्व संधि और युगान्त संधि (संध्यांश) को जोड़कर चारों युगों का मान बारह हजार दिव्य-वर्ष होता है। तथापि 'मूल-युग' या वास्तविक युग केवल दस हजार वर्ष का ही है। अर्थात् दस सहस्र दिव्य वर्ष ही सम्पूर्ण युग का काल मान है। इस काल मान को 4: 3: 2: 1 के अनुपात में विभाजित किया गया है। इन चारों भागों को 'पाद' या युग-पाद कहा गया है। इन चारों पादों के पृथक-पृथक नाम हैं[220] -

(1) कृत युग (सत्य युग) - इसे 'प्रक्रियापाद' के नाम से बताया गया है -'कृते वै प्रक्रियापादः चतुः साहस्र उच्यते।' अर्थात् 'कृत युग' के अन्तर्गत जो प्रक्रियापाद नामक मुख्य युग भाग है, वह चार हजार दिव्य वर्ष का होता है।

(2) त्रेता युग - इसे 'अनुषंग पाद' कहा गया है - 'अनुषंग पादस्त्रेतायास्त्रि साहस्रस्तु संख्यया।' अर्थात् त्रेता का मुख्य युग जो कि 'युग का अनुषंग पाद' है, वह तीन सहस्र दिव्य वर्ष का होता है।

(3) द्वापर युग - इसे 'युग' का 'उपोद्घात-पाद' कहा गया है। इसका मुख्य युग भाग दो सहस्र दिव्य वर्ष का होता है 'उपोद्घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते' अर्थात् युग के तृतीय पाद द्वापर के मूल भाग को 'उपोद्घात पाद'

कहा जाता है, जो दो सहस्र दिव्य वर्ष का होता है।

(4) कलियुग - यह 'युग' का चतुर्थ पाद 'संहार पाद' है। 'संहार पाद: संख्यान्तश्चतुर्थो वै कलौयुगे, यह एक सहस्र दिव्य वर्ष का होता है।

चतुर्युग

चार युगों के समुच्चय को 'चतुर्युग' कहते हैं। इस समुच्चय को 'महायुग' भी कहा गया है। 'चतुर्युग' वस्तुत: 'स्थूल-काल' का एक बृहद् 'अवयव' है, जो बारह हजार दिव्य-वर्षों की विशिष्ट कालावधि है। मानव वर्षों में यह कालावधि त्रैतालीस लाख बीस हजार सौर वर्ष में पूर्ण होती है।

एक चतुर्युग को 'आनुपातिक-दृष्टि' से चार भागों में विभाजित किया गया है। इन्हें चतुष्पाद भी कहते हैं। इनमें 'कृतयुग' (या सत्ययुग) प्रथम-पाद, त्रेतायुग द्वितीय पाद, द्वापर-युग तृतीय पाद और कलियुग चतुर्थ पाद है। इन चारों युगों की वर्ष संख्या क्रमश: चार हजार, तीन हजार, दो हजार और एक हजार दिव्य वर्ष है। प्रत्येक युग की वर्ष संख्या का दशमांश युग का संधिकाल होता है। तथा उसका सन्ध्यांश (या द्वितीय संधिकाल) भी इतना ही होता है। अर्थात् यह माना जाता है कि किसी युग के प्रारम्भ होने से पूर्व उसका संधिकाल, तथा उस युग की समाप्ति के बाद 'सन्ध्यांश काल' होता है। ये दोनों काल अलग-अलग युग की कुल वर्ष संख्या के दशमांश भाग के बराबर होते हैं। इस गणित से कृतयुग का मान 400 + 4000 + 400 = 4800 दिव्य वर्ष, त्रेतायुग का मान 300 + 3000 + 300 = 3600 दिव्य वर्ष, द्वापर युग का मान 200 + 2000 + 200 = 2400 दिव्य वर्ष एवं कलियुग का मान 100 + 1000 + 100 = 1200 दिव्य वर्ष होता है।

मानव-मान से चारों युगों के सौर वर्ष क्रमश: - (1) सत्रह लाख अट्ठाइस हजार (2) बारह लाख छियानवे हजार (3) आठ लाख चौंसठ हजार तथा (4) चार लाख बत्तीस हजार सौर वर्ष होते हैं।

लगभग सभी पुराण, उपपुराण, महाभारत, रामायण तथा ज्योतिष-शास्त्र, चारों-युगों के इस 'कालमान' का समर्थन करते हैं। यहाँ तक कि इस युग के घोर

पुराण विरोधी महर्षि दयानन्द सरस्वती भी इस कालमान का पूर्ण समर्थन करते हैं।

एक चतुर्युग का इकहत्तर गुना काल 'मन्वन्तर' तथा हजार गुना काल एक 'कल्प' या एक 'ब्राह्म दिवस' कहलाता है। इन दोनों (मन्वन्तर तथा कल्प) में सामंजस्य बैठाने के लिए एक मन्वन्तर का काल मान 71 चतुर्युग + 5103 दिव्य वर्ष माना जाता है। इसका कुल योग = आठ लाख सत्तावन हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष (अथवा 857103 × 360 मानव वर्ष) होता है।

युगादि-तिथियाँ

'युगादि-तिथि' उस तिथि को कहते हैं, जिसमें किसी 'युग' का प्रारम्भ होता हो। युग चार हैं, अत: प्रत्येक युग की आरम्भिक तिथियाँ भी क्रमश: चार ही हैं [221] _

(1) कार्त्तिक शुक्ला नवमी - इसे अक्षय नवमी भी कहा जाता है। इस तिथि में 'सत्य युग' का आरम्भ होता है।

(2) वैशाख शुक्ला तृतीया - इसे 'अक्षयतृतीया' कहते हैं। यह त्रेतायुग की आदि तिथि है।

(3) माघी अमावस्या - इस तिथि में 'द्वापर युग' का प्रारम्भ हुआ था।

(4) भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी - इस तिथि में कलियुग का प्रारम्भ हुआ था। [222]

कृत युग या सत्य युग

चतुर्युग (या महायुग) में से प्रथम-युग 'कृत युग' है। वायु पुराण में इसे श्वेतमुख और चार जिह्वा वाला कहा गया है। इसे 'काल' का कृत युग नामक मुख माना जाता है। इसी को देवश्रेष्ठ 'ब्रह्मा' और 'वैवस्वत' भी कहा गया है। इसे 'सत्य' युग भी कहते हैं। [223]

कृत युग का 'कालमान' चार हजार दिव्य वर्ष है। इसकी 'सन्ध्या' चार सौ दिव्य वर्ष की और 'सन्ध्यांश' भी चार सौ वर्ष का ही माना जाता है। कृत युग का 'प्रक्रियापाद' भी चार हजार दिव्य वर्ष का ही माना जाता है। प्रक्रियापाद के सन्ध्या तथा सन्ध्यांश भी चार-चार सौ दिव्य वर्ष के ही होते हैं। इस प्रकार कृत युग का

सम्पूर्ण 'कालमान 4000 + 400 + 400 = 4800 दिव्य वर्ष होता है।' सत्ययुग का प्रारम्भ कार्तिक शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी) के प्रथम पहर में, श्रवण नक्षत्र में तथा 'वृद्धि योग' में हुआ था। इसकी मानव वर्ष संख्या एक करोड़ बहत्तर लाख आठ हजार वर्ष है।

सत्ययुग में भगवान् विष्णु के चार अवतार हुए हैं - (1) मत्स्य (2) कच्छप (3) वाराह एवं (4) नृसिंह।

त्रेतायुग

'त्रेता' युग संज्ञक काल का दूसरा पाद (चरण) है। इस युग का आरम्भ वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन हुआ। इसे त्रेतायुग इस कारण कहा जाता है, क्योंकि इस युग में चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा ने यज्ञ से सम्बन्धित तीन अग्नियों (गार्हपत्य, दक्षिण तथा आवहनीय) का 'आघान' किया था। ऋक्, यजुष् तथा साम - तीन वेदों का प्रचलन किया था एवं सर्वप्रथम 'यज्ञ' किया था। इसी कारण से त्रेता को 'अग्रायी' भी कहते हैं। [224]

'त्रेतायुग' की कालावधि तीन सहस्र दिव्य वर्ष रहती है, किन्तु तीन सौ दिव्य वर्ष की पूर्ण संधि एवं तीन सौ दिव्य वर्ष की 'पर संधि' (संध्यांश) (की दोनों संधियों) के काल को जोड़ने से सम्पूर्ण त्रेतायुग तीन हजार छै सौ दिव्य वर्षों का परिगणित किया जाता है। मानव मान से एक त्रेतायुग 12,96,000 सौर वर्ष का होता है। [225]

द्वापर युग

'द्वापर युग' युज्ञ संज्ञक काल का तीसरा पाद (चरण) है। इस युग का प्रारम्भ माघ मास की अमावस्या को हुआ था। इस युग का 'द्वापर' नाम इस कारण पड़ा, क्योंकि इस युग का प्रारम्भ होते ही लोगों के मन में वेदों तथा वेदार्थों के प्रति सन्देह अथवा संशय उत्पन्न हो जाता है। अमर कोश की माहेश्वरी टीका में 'द्वापर' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से बतलायी गयी है-

द्वापरः द्वौ परौ प्रकारौ यस्य पृषोदरादित्वाद् आत्वम्। विचिकित्सा, संशयः, सन्देहः द्वापरः चत्वारि संशयज्ञानस्य। यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशयः॥ [226]

'द्वापर' के समानार्थी तीन शब्द और हैं- विचिकित्सा, संशय और सन्देह।

'द्वापर युग' की कालावधि दो हजार दिव्य वर्ष है, किन्तु उसके आरम्भ होने से पूर्व दो सौ दिव्य वर्ष की 'संधि', तथा समाप्ति के पहले दो सौ दिव्य वर्ष का 'सन्ध्यांश' काल होता है। अतः द्वापर की कुल दिव्य वर्ष संख्या दो हजार चार सौ (2400) रहती है। मानव मान से द्वापर आठ लाख चौंसठ हजार सौर वर्ष का होता है। [227]

कलियुग

'कलियुग' युग संज्ञक काल का चतुर्थ पाद है। इस युग का प्रारम्भ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि में हुआ था। [228]

'कलि' का अर्थ 'कलहेऽपि कलिः' अर्थात् कलह करने या कराने वाला होता है।[229] जिस युग में द्वन्द्व या कलह की स्थिति रहे वह 'कलि' होता है। इसके अन्य नाम 'झर्झरकः और कर्मयुगम्' हैं।[230]

'कलियुग' की मुख्य कालावधि एक सहस्र दिव्य वर्ष, उसका संधिकाल एक सौ दिव्य वर्ष और 'संध्यांश काल' एक सौ दिव्य वर्ष होता है। मानव मान से कालावधि चार लाख बत्तीस हजार सौर वर्ष होती है।

'कलियुग' के सम्बन्ध में लगभग सभी पुराणों में 'निन्दात्मक-विवरण' पाया जाता है। किन्तु महर्षि वेदव्यास ने इसे चारों युगों में श्रेष्ठ बतलाया है। उनके अनुसार 'जो फल सत्य युग में दस वर्ष की तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप से प्राप्त होता है, उसे त्रेतायुग में एक वर्ष में और द्वापर में एक मास में प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु कलियुग में वही फल मात्र एक दिन-रात में प्राप्त हो जाता है।'

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कालौ॥ 15॥

- अर्थात् कलियुग में थोड़े से परिश्रम से ही महान् धर्म की प्राप्ति हो जाती है।

कालमान

ब्राह्म दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्ष मानानि वै नव॥ [232]

– 'कालमान' नौ प्रकार के प्रचलित हैं– (1) ब्राह्म (2) दिव्य (3) पित्र्य (4) प्राजापत्य (5) बार्हस्पत्य (6) सौर (7) सावन (8) चान्द्र और (9) नाक्षत्र।

इनमें ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य और प्राजापत्य आदि चार 'काल-मानों' का दैनिक व्यवहार में उपयोग नहीं होता। शेष – बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र नामक पाँच कालमान दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होते हैं।

(5) बार्हस्पत्य मान के द्वारा 'प्रभव' आदि सम्वत्सरों का स्वरूप ग्रहण किया जाता है।

(6) सौर मान के द्वारा ग्रहों की सब प्रकार की गति (भगण आदि) जानी जाती है।

(7) सावन मान के द्वारा वर्षा तथा स्त्री के प्रसव के समय आदि का ग्रहण किया जाता है।

(8) चान्द्र मान के द्वारा यज्ञोपवीत, मुण्डन आदि संस्कारों, तिथि व वर्षेश का निर्णय तथा व्रत, उपवास आदि का निश्चय किया जाता है।

(9) नाक्षत्र मान के द्वारा वर्षों के भीतर का घटी मान इत्यादि जाना जाता है। [233]

ब्राह्म-कालमान

'ब्राह्म कालमान' सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की 'परमायु' से सम्बन्ध रखता है। 'ब्रह्मा' काल का बृहततम रजोगुणात्मक स्वरूप है। यदि हम थोड़ी देर के लिए यह भूल जायें कि ब्रह्मा एक देवता हैं, और वे अनेक पौराणिक-कथाओं के सूत्रधार हैं, तो शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है कि 'ब्रह्मा' काल का ही एक नाम है जिसके अन्तर्गत इस जगत् की सृष्टि होती है।

ब्रह्मा की सम्पूर्ण कालावधि 'पर' कहलाती है, जो उनके निज-मान से पूरे

एक सौ वर्ष मानी गई है। 'पर' का आधा भाग 'परार्ध' कहलाता है। यह परार्ध प्रथम-परार्ध और द्वितीय-परार्ध के नाम से जाना जाता है। परार्ध पूरे पचास वर्ष का होता है। परार्ध का पचासवाँ अथवा 'पर' का सौवाँ भाग ब्रह्मा का एक वर्ष कहलाता है, जिसमें तीन सौ साठ दिन-रात (अहोरात्र) होते हैं। इसी गणित से ब्रह्मा के उत्तरायण और दक्षियाणन – दो अयन तथा छै ऋतुएँ भी कल्पित की गई हैं। प्रत्येक ऋतु दो-दो मास की होती है एवं एक मास तीस अहोरात्र का होता है। ब्रह्मा के एक दिन को 'कल्प' अथवा 'ब्राह्म दिवस' कहा जाता है। ब्रह्मा की रात्रि भी होती है जो एक कल्प के तुल्य होती है। ब्रह्मा दिन में सृष्टि करते हैं और रात्रि में 'प्रलय'। इस प्रकार ब्रह्मा का एक अहोरात्र दो कल्प के बराबर होता है।

'ब्राह्म-मास' तीस अहोरात्र का होता है। इन तीसों अहोरात्र के पृथक-पृथक तीस नाम हैं जो तीस कल्प कहलाते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि कल्प के नाम केवल 'दिन' के रखे गये हैं, रात्रि के नहीं। रात्रि का नाम तत्सम्बन्धी कल्प से जाना जाता है।

एक ब्राह्म-दिवस का 'काल-मान' एक हजार चतुर्युग (या महायुग) रहता है। अर्थात् जब एक हजार चतुर्युग का कालचक्र पूर्ण रूप से घूम जाता है, तब कहीं ब्रह्मा का एक कल्प समाप्त होता है। इस कालचक्र को चौदह समान भागों में भी विभाजित किया गया है, जिनमें प्रत्येक भाग को एक 'मन्वन्तर' या एक 'मनु' का अधिकार-काल कहते हैं। एक मन्वन्तर इकहत्तर चतुर्युग के तुल्य कहा गया है। किन्तु एक कल्प में एक हजार चतुर्युग रहने के कारण चौदह मन्वन्तरों से उसका पूरा विभाजन नहीं हो पाता, इस कारण प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ और अन्त में 'सन्धि तथा सन्ध्यांश' माने गये हैं। तदनुसार प्रत्येक मन्वन्तर के कालमान में इकहत्तर चतुर्युग से पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष अधिक रखे गये हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कल्प-मान चौदह मन्वन्तर तथा छै चतुर्युग के तुल्य हो जाता है। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार –

ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृत प्रमाणः कल्पादौ संधिः पंचदशः स्मृतः॥ 19॥

– एक कल्प में संधियों सहित चौदह मनु होते हैं। ये संधियाँ पन्द्रह होती हैं। कल्पारम्भ की सन्धि 'कृतयुग मान' तुल्य रहती है। तदनुसार एक मनु के सौर

वर्ष, तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार + कृताब्द तुल्य संधि के सत्रह लाख अट्ठाइस हजार = तीस करोड़ चौरासी लाख अड़तालीस हजार सौर वर्ष होते हैं। इनके चौदह गुने सौर वर्षों बाद एक 'कल्प' या ब्राह्म दिवस पूरा होता है।

दिव्य कालमान/आसुर कालमान

'दिव्य-काल मान' का अर्थ, देवताओं के कालमान की गणना है। सूर्य-सिद्धान्त (अध्याय-14) के अनुसार असुर, दैत्य और दानवों का कालमान भी देवताओं के ही तुल्य होता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि देवताओं का दिन, असुरों की रात्रि कही गई है।

मानुषेण तु मानेन यो वै सम्वत्सरः स्मृतः।
देवानां तदहोरात्रं दिवा चैवोत्तरायणम्।
दक्षिणायनं स्मृता रात्रिः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थ को विदैः॥ 9॥[234]

– काल तत्त्व के जानकारों ने एक मानव वर्ष को देवताओं का एक दिन-रात बताया है। सूर्य का उत्तरायण देवताओं का एक दिन और दक्षिणायन, देवताओं की एक रात्रि होती है। देवताओं का दिन-असुरों की एक रात्रि तथा देवताओं की रात्रि-असुरों का एक दिन होता है-

सुरा सुराणाभन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
तत् षष्टिः षड् गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च॥ 14॥

– तीन सौ साठ दिव्य अहोरात्र का एक दिव्य वर्ष होता है।

विशेष – देवताओं और असुरों के दिन-रात में यह अन्तर इस कारण है, क्योंकि पुराणों में देवताओं का निवास 'मेरु' (उत्तरी गोलार्ध या उत्तरी ध्रुव) पर तथा असुरों का निवास दक्षिणी गोलार्ध या दक्षिणी ध्रुव पर माना गया है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मा के तमोगुण प्रधान शरीर से असुरों तथा रात्रि की एवं सतोगुण प्रधान शरीर से देवताओं तथा दिन की उत्पत्ति हुई है।[235]

तद् द्वादश सहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्द संख्यया द्वित्रि सागरैरयुताहतै॥ 15॥[236]

– द्वादश सहस्र दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग (या महायुग) होता है। यह त्रैतालीस लाख बीस हजार सूर्याब्द (सौर वर्ष या मानव वर्ष) के बराबर होता है।

सन्ध्या सन्ध्यांश सहितं विज्ञेयं तत् चतुर्युगम्।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपाद व्यवस्थया॥ 16॥

– यह चतुर्युग (महायुग) 'धर्मपाद व्यवस्था' के कारण चार भागों में विभाजित है जो क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग कहलाते हैं। इन चारों युगों की कालावधि का अनुपात क्रमशः चार हजार, तीन हजार, दो हजार और एक हजार दिव्य वर्ष है। इन चारों युगों के दशमांश दिव्य वर्षों की (प्रत्येक युग की) सन्ध्या तथा संध्यांश होते हैं। तदनुसार –

(1) कृतयुग – सन्ध्या 400 दिव्य वर्ष + युगमान 4000 दिव्य वर्ष+संध्यांश 400 दिव्य वर्ष = 4800 दिव्य वर्ष.

(2) त्रेतायुग – सन्ध्या 300 दिव्य वर्ष + युगमान 3000 दिव्य वर्ष+संध्यांश 300 दिव्य वर्ष = 3600 दिव्य वर्ष.

(3) द्वापर युग – सन्ध्या 200 दिव्य वर्ष + युगमान 2000 दिव्य वर्ष+संध्यांश 200 दिव्य वर्ष = 2400 दिव्य वर्ष.

(4) कलियुग – सन्ध्या 100 दिव्य वर्ष + युगमान 1000 दिव्य वर्ष+संध्यांश 100 दिव्य वर्ष = 1200 दिव्य वर्ष.

चारों का युग = 12000 दिव्य वर्ष

विशेष – 'धर्मपाद व्यवस्था' का तात्पर्य यह है कि चारों युगों में 'धर्म' क्रमशः चतुष्पाद, त्रिपाद, द्विपाद तथा एकपाद की स्थिति में रहता है।

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमि होच्यते।
कृताब्द संख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः॥ 18॥[237]

– इकहत्तर महायुगों (चतुर्युगों) के व्यतीत हो जाने पर (अथवा इकहत्तर महायुगों की कालावधि एक मन्वन्तर कहलाती है, जिसके पूर्ण हो जाने पर) एक कृतयुग (सत्य युग) के सम्पूर्ण कालमान (4800 दिव्य वर्ष) की (कृतयुग मान

संख्यक) मन्वन्तर संधि होती है जिसके बाद 'जलप्लव' होता है, अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो जाती है।

विशेष – यह 'जलप्लावन' केवल बाढ़ आने तक सीमित है, प्रलय नहीं है। ऐसा 'जलप्लावन' वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ होने से पहले हो चुका है जो संसार की हर सभ्यता के इतिहास में किसी न किसी रूप में प्रसिद्ध है। केवल 'समय' के अनुमान में अन्तर है।

'दिव्यमान' मूलत: मन्वन्तर तक सीमित है। इससे आगे 'प्राजापत्य-मान' शुरु हो जाता है। अर्थात् चौदह मनुओं की कालावधि ब्रह्मा के एक दिन का निरूपण करती है। वैसे एक सहस्र चतुर्युग की कालावधि को भी ब्रह्मा का एक दिन (या कल्प) कहा जाता है।

पित्र्य कालमान

'पित्र्य कालमान' का अर्थ पितृ या पितरों से सम्बन्धित कालगणना समझना चाहिए।

सामान्य रूप में पितृ या पितरों को मृतात्मा या पूर्वज समझा जाता है। लेकिन, पितृ या पितर वस्तुत: देवगण हैं। ये देवगण हैं। ये देवगण ब्रह्मा की आदि-सृष्टि हैं और इन्हें देवताओं का पूर्वज माना जाता है।

मत्स्य पुराण के अनुसार पितर 'आर्तव' हैं, अर्थात् ऋतुओं की सन्तान हैं। ये 'अर्धमास' पितर कहलाते हैं। आकाश में इनका लोक निश्चित् है और दक्षिण इनकी दिशा है। इनके स्वामी को 'पितृपति' कहा जाता है जो यमराज के नाम से विख्यात हैं। [238]

पुराणों के अनुसार मानव का एक महीना पितरों का एक 'अहोरात्र' (दिन-रात) होता है। कृष्णपक्ष इनका दिन और शुक्लपक्ष इनकी रात है। कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिनार्ध से पितृदिन और शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिनार्ध से पितृरात्रि का आरम्भ होता है। [239]

मानव के तीस मास, पितरों का एक मास होता है।

मानव के तीन सौ साठ मास, पितरों के एक वर्ष के तुल्य होते हैं। अर्थात् पितरों का एक वर्ष, मनुष्य के 360 मासों के बराबर होता है। [240]

मानवीय गणना के अनुसार एक सौ वर्ष, पितरों के तीन वर्ष के बराबर माने गये हैं।

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितृणां तानि वर्षाणि संख्यातानि तु त्रीणि वै।
दश च द्वयधिका मासा: पितृसंख्येह कीर्त्तिता: ॥ 8 ॥ [241]

प्राजापत्य कालमान

'प्रजापति' से सम्बन्धित कालमान को 'प्राजापत्य' कालमान कहा जाता है। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार 'मन्वन्तर-व्यवस्था' ही प्राजापत्य कालमान है –

मन्वन्तर व्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्।
न तत्र द्यु-निशोर्भेदो (सूर्य सिद्धान्त/अ.-14/श्लोक-21)

इस व्यवस्था में 'द्यु-निशोर्भेद:' अर्थात् दिन-रात का भेद नहीं है। दूसरे शब्दों में प्राजापत्य मान की दिनरात व्यवस्था वही है, जो दिव्य मान के अन्तर्गत निश्चित की गई है। तथापि 'हरिवंश पुराण' में इस व्यवस्था पर अलग से प्रकाश डाला गया है –

दिव्यमब्दं दशगुण महोरात्रं मनो: स्मृतम्।
अहोरात्रं दशगुणं मनव: पक्ष उच्यते॥ 10॥

– मनु का एक दिन-रात, देवताओं के दस वर्षों के बराबर होता है। देवताओं के एक सौ वर्ष (100 दिव्य वर्ष) मनु का एक 'पक्ष' कहलाता है।

पक्षो दशगुणो मासो मासैर्द्वादशभिर्गुणै:।
ऋतुर्मनूनां संप्रोक्त: प्राज्ञैस्तत्वार्थ दर्शिभि:।
ऋतु त्रयेण त्वयनं तद् द्वयेनैव वत्सर:॥ 11॥ [242]

– दस पक्षों (1000 दिव्य वर्षों) का मनु का एक मास होता है। ऐसे द्वादश

मासों की मनु की एक 'ऋतु' होती है। तत्त्वदर्शी बुद्धिमानों ने ऐसी तीन ऋतुओं का एक 'अयन' तथा दो अयनों का एक 'मनु वर्ष' बताया है। [243]

बार्हस्पत्य-मान

बृहस्पतेर्मध्यम राशि भोगात् सम्वत्सरं सांहितिका: वदन्ति।
ज्ञेयं विमिश्रं तु मनुष्य मानं मानैश्चतुर्भि: व्यवहारवृत्तै:॥

– बृहस्पति मध्यमगति से जब एक राशि को भोगता है, तब उतने समय को 'सम्वत्सर' कहते हैं। [244]

बृहस्पति की एक दिन की मध्यम गति पाँच विकला है।

एक राशि की 30 × 60 = 1800 कलाओं में पाँच का भाग देने पर 1800 भागित 5 = 360 दिन आते हैं। अत: एक सम्वत्सर 360 दिन का होता है। एक सम्वत्सर एक वर्ष तक रहता है। इस प्रकार बृहस्पति के मान से सम्वत्सर चक्र साठ वर्ष का होता है। साठ वर्ष के चक्र में प्रत्येक वर्ष का पृथक-पृथक नाम होता है जिन्हें साठ सम्वत्सर कहते हैं।

सम्वत्सर का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। इसकी समाप्ति फाल्गुन मास की अमावस्या को होती है।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार 'बार्हस्पत्येनषष्टि-अब्दं (षष्ट्यब्दं) ज्ञेयं,' अर्थात् बृहस्पति मान को जानना इसलिए जरूरी है, क्योंकि साठ वर्षीय सम्वत्सरों का ज्ञान इसी के द्वारा हो सकता है। [245]

सौर मान

सूर्य की एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति में प्रवेश करने का 'कालान्तर' सौर मास कहलाता है।

सौर मान के अन्तर्गत, एक वर्ष के समय में बारह राशियाँ होती हैं जो क्रमश: – (1) मेष (2) वृष (3) मिथुन (4) कर्क (5) सिंह (6) कन्या (7) तुला (8) वृश्चिक (9) धनु (10) मकर (11) कुंभ और (12) मीन हैं।

इन राशियों में से, प्रत्येक राशि का तीसवाँ भाग 'सौर दिवस' कहलाता है। इस प्रकार पूरे एक वर्ष में तीन सौ साठ 'सौर दिवस' होते हैं। चूँकि दिन और रात को मिलाकर एक 'सौर दिन' मानते हैं अत: एक वर्ष में 360 अहोरात्र होते हैं। [246]

सौरेण द्यु-निशोर्मानं, षडशीति मुखानि च।
अयनं विषुवच्चैव संक्रान्ते: पुण्यकालता॥ 3॥ [247]

– 'सौरमान' के द्वारा दिन-रात्रि का काल-परिमाण, 'षडशीति' अयन, विषुवत् संक्रान्ति आदि पुण्यकाल, विवाहादि संस्कार, यज्ञ व्रत आदि सत्कर्म तथा स्नानादि के अभीष्टकाल का निर्धारण किया जाता है।

सावन-मान

उदयादुदयं भानो: सावनं तत् प्रकीर्त्तितम्।
सावनानि स्युरेवेन यज्ञकाल विधिस्तुतै:॥ [248]

– एक सूर्योदय से लेकर अगले सूर्योदय तक का (मध्यवर्ती) काल 'सावन' कहलाता है। व्यवहार में इस काल को 'एक सावन दिन' कहा जाता है।

ऐसे तीस सावन दिवसों का एक मास होता है, जिसे 'सावन मास' कहते हैं।

'सावन मान' के द्वारा यज्ञकाल की विधि, सूतक आदि अशौच, दिन, मास और अब्दपति ग्रह (वर्षेश) की मध्यभुक्ति का निश्चय किया जाता है। प्रायश्चित्त, अन्न प्राशन, मन्त्रोपासना, राजा के कर ग्रहण, व्यवहार, यज्ञ, दिन की गणना आदि में 'सावन मास' (या सावन मान) के ही द्वारा काल-निर्धारण किया जाता है। [249]

चान्द्र मान

सूर्य से वियुक्त होकर जब चन्द्रमा पूर्व की ओर जाता है, तब उसका सूर्य से अन्तर बढ़ता जाता है। जब सूर्य चन्द्र का अन्तर बारह अंश हो जाता है, तब (12 अंश तक पहुँचने में जितना समय लगता है उसे) एक 'तिथि' कहते हैं। दूसरे शब्दों में चन्द्रमा एक तिथि का जितने काल में भोग करता है, उसे एक 'चान्द्र दिन' कहते हैं।

शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक के काल को 'चान्द्र मास' कहते

हैं। औसत रूप से एक चान्द्र मास में पन्द्रह तिथियाँ शुक्लपक्ष की और पन्द्रह तिथियाँ कृष्णपक्ष की - कुल तीस होती है। किन्तु चन्द्र गति में विपर्यय के कारण तिथियाँ घटती-बढ़ती रहती हैं। अत: एक चान्द्र-मास पूरे तीस दिन का नहीं हो पाता। [250]

चान्द्र मास या चान्द्र मान के द्वारा पार्वण, अष्टका श्राद्ध, साधारण श्राद्ध तथा अन्यान्य धार्मिक कार्य एवं तिथि-करण, विवाह, क्षौरकर्मादि संस्कार, व्रत, उपवास तथा यात्रा आदि के काल का निर्धारण किया जाता है। [251]

नारद पुराण के अनुसार, यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेश का निर्णय तथा पर्व, उपवास, आदि का निश्चय चान्द्र मान से किया जाता है। [252]

नाक्षत्र-मान

भचक्र भ्रमणं नित्यं, नाक्षत्रं दिनमुच्यते।
नक्षत्र नाम्ना मासास्तु, ज्ञेया: पर्वान्तयोगत:॥

- भचक्र (27 नक्षत्रों के चक्र) के दैनिक-भ्रमण को 'नाक्षत्र दिन' कहा जाता है।

जिस महीने की पूर्णिमा तिथि में जो नक्षत्र चन्द्रमा के निकट रहता है, उस महीने का नाम उसी नक्षत्र के नाम से जाना जाता है। वह पूर्णिमा भी उसी नक्षत्र के नाम से जानी जाती है।

जैसे - चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन आदि महीनों की पूर्णिमा तिथि में क्रमश: - चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, पूर्व भाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य मघा और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों की (पूर्णिमा तिथि में चन्द्रमा की) निकटता के कारण तत्सम्बन्धी मास नाम विख्यात हुए हैं। [253]

भविष्य पुराण के अनुसार अश्विनी से लेकर रेवती नक्षत्र पर्यन्त 'नाक्षत्र मास' होता है। सोम या पितृगणों के कार्य में नाक्षत्र मास प्रशस्त माना गया है। [254]

नारद पुराण के अनुसार वर्षों के भीतर का 'घटी मान' आदि 'नाक्षत्र मान' से ही लिया जाता है। [255]

उपसंहार पाद

काल कथा

श्रीराम द्वारा लक्ष्मण का त्याग [256]

जब भगवान् श्रीराम को अयोध्या पर राज्य करते हुए ग्यारह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये, तब एक दिन 'काल' ऋषि वेष धारण करके आया। उसने लक्ष्मण जी से कहा - 'मैं श्रीराम से मिलकर उन्हें महर्षि अतिबल का सन्देश सुनाना चाहता हूँ।'

लक्ष्मण जी ने श्रीराम के निकट जाकर उन्हें सूचित किया। श्रीराम ने ऋषि वेषधारी काल को अपने पास बुलवाया और काल के यह कहने पर कि हम दोनों की बातचीत कोई दूसरा न सुन पाये, उन्होंने लक्ष्मण जी को आदेश दिया कि वे द्वार पर खड़े हो जायें और किसी को भी अन्दर न आने दें।

काल ने श्रीराम से यह वचन भी ले लिया कि यदि कोई भूल से भी हम दोनों की बातचीत सुन ले तो आपको उसका 'वध' करना होगा।

तापस वेषधारी काल ने श्रीराम को ब्रह्मा जी का सन्देश सुनाते हुए कहा कि उन्हें अब अपनी मानव देह त्याग करके अपने 'धाम' लौट जाना चाहिए, क्योंकि उनके अवतार लेने के सभी उद्देश्य पूर्ण हो चुके हैं।

अभी दोनों में वार्तालाप हो ही रहा था कि महर्षि दुर्वासा राम से मिलने के लिए आ गये और लक्ष्मण के रोकने पर क्रोधित हो गये। लक्ष्मण ने यह सोचकर कि कहीं दुर्वासा शाप देकर समस्त रघुकुल का नाश न कर दें, उन्होंने स्वयं ही श्रीराम के द्वारा मारा जाना उचित समझा और भीतर जाकर श्रीराम को महर्षि दुर्वासा के आने की सूचना दे दी।

'काल' तो अपनी बात पूरी कहकर चला गया, लेकिन श्रीराम अपने प्रिय अनुज लक्ष्मण के मारे जाने की चिंता से दुखी हो गये। तथापि उन्होंने महर्षि दुर्वासा को प्रसन्नतापूर्वक भोजन कराकर विदा किया और वसिष्ठ सहित अपने मंत्रीमण्डल को तुरन्त बुलवाया।

उन्होंने मंत्रीमण्डल के समक्ष अपनी चिंता व्यक्त की और काल के आने का पूरा हाल कह सुनाया।

वसिष्ठ जी ने परामर्श करके अपना निर्णय सुनाया – 'प्रतिज्ञा भंग करने से धर्म का नाश हो जाता है। अत: आप अपनी प्रतिज्ञा के पालन हेतु लक्ष्मण जी का त्याग कर दीजिए, क्योंकि त्याग भी 'वध' के ही समान माना जाता है।'

वसिष्ठ जी का निर्णय सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण जी का त्याग कर दिया। लक्ष्मण जी सब कुछ त्यागकर सरयू के तट पर गये और वहाँ पर उन्होंने 'योग' द्वारा अपना शरीर छोड़ दिया।

बाद में श्रीराम, भरत, शत्रुघ्न तथा ऋक्ष वानरों ने भी सरयू नदी में अपने-अपने शरीर का विर्सजन कर दिया। [257]

नारद की पुनर्जन्म कथा [258]

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने अपने विभिन्न अंगों से पुलस्त्य आदि उन्नीस पुत्रों को उत्पन्न किया। नारद को उन्होंने अपने कण्ठ से उत्पन्न किया था। ब्रह्मा ने सभी पुत्रों को सृष्टि की रचना करने का आदेश दिया। इस आदेश को नारद ने नहीं माना। तब ब्रह्मा ने उन्हें शाप दे दिया कि नारद का सारा ज्ञान लुप्त हो जाये। नारद ने भी ब्रह्मा को शाप दिया कि लोक में कोई उनकी पूजा नहीं करेगा।

कालान्तर में नारद ने गंधर्वराज के पुत्र उपबर्हण के रूप में जन्म लिया। चित्ररथ गंधर्व की पुत्री मालावती नारद की पत्नी हुई। वह एक सती नारी थी और अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती थी

एक बार उपबर्हण ब्रह्मा जी की सभा में वीणा वादन कर रहा था। अप्सराओं का नृत्य हो रहा था। रम्भा नामक अप्सरा के सौन्दर्य से प्रभावित हो जाने के कारण उपबर्हण वीणा वादन से चूक गया और भरी सभा में उसे लज्जित होना पड़ा। इस बात से संतप्त होकर उसने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

मालावती को जब यह ज्ञात हुआ तो वह अपने पति के शव को आगे रखकर सभी देवी-देवताओं से उसके पुनर्जीवन की भीख माँगने लगी। जब किसी भी देवता ने उसकी प्रार्थना नहीं सुनी तो वह सभी देवताओं को 'शाप' द्वारा नष्ट करने के लिए उद्यत हो गई। यह देखकर देवतागण भयभीत हो गये और एक साथ विष्णु के पास जा पहुँचे। विष्णु ने उनसे कहा कि सभी देवता मालावती के पास पहुँचें। वे स्वयं भी वहाँ पहुँच रहे हैं।

सभी देवता मालावती के पास पहुँचे। तब तक विष्णु भी एक ब्राह्मण बालक का रूप धारण करके वहाँ आ गये। उन्होंने युक्तिपूर्वक मालावती को समझाया कि मालावती के पति की मृत्यु में किसी देवी-देवता का कोई हाथ नहीं है। तब मालावती ने उस ब्राह्मण बालक से कहा कि वह काल और मृत्युकन्या को उसके सामने बुलायें, वह उनसे अपने पति की मृत्यु का कारण पूछना चाहती है। ब्राह्मण वेषधारी विष्णु के कहने पर मृत्यु-कन्या, उसके चौंसठ पुत्र तथा उसका पति 'काल' मालावती के समक्ष प्रस्तुत हुए। मालावती ने सर्वप्रथम मृत्युकन्या को देखा। वह काले रंग की, देखने में भयानक, लाल वस्त्र पहिने हुए, छै भुजाओं वाली, मंद-मंद मुस्कान वाली, शान्त, दयालु तथा महासती थी। वह अपने स्वामी काल के बायें भाग में अपने चौसठ पुत्रों को लिए खड़ी थी।

'काल' साक्षात् नारायण का अंश था। वह महान् उग्ररूप, विकट तथा ग्रीष्मकालीन सूर्य की भाँति प्रभायुक्त था। उसके छै मुख, सोलह भुजाएँ, चौबीस नेत्र और छै चरण थे। उसका रंग काला था। उसने लाल वस्त्र धारण कर रखे थे। वह देवताओं का भी देवता, विकराल आकृति वाला, सर्वसंहार रूपी, काल का 'अधिदेवता' सर्वेश्वर एवं सनातन भगवान् प्रतीत हो रहा था। वह अपने हाथ की

अक्षमाला द्वारा परब्रह्म, कृष्णात्मा ईश्वर का जप कर रहा था।

काल के दर्शन करने के बाद सती मालावती ने दुर्जेय व्याधि-समूहों को देखा जो अवस्था में अत्यन्त वृद्ध किन्तु माता के समीप स्तनपान करने वाले बच्चों की तरह खड़े थे।

इसके बाद मालावती ने सूर्यपुत्र यम को देखा जो कृष्ण वर्ण तथा स्थूलपाद थे।

मालावती ने सर्वप्रथम यम से ही पूछा – 'धर्मराज! आप समय से पहले मेरे प्रियतम को कैसे लिये जा रहे हैं?'

यम ने कहा – 'इस भूतल पर बिना समय पूरा हुए तथा ईश्वर की आज्ञा मिले बिना न तो कोई मरता है, और न मैं किसी (बिना मरे) को ले जाता हूँ। मैं, काल, मृत्यु-कन्या और समस्त दुर्जेय व्याधिगण, जन्म के बाद समय आने पर ही जीव को ईश्वर की आज्ञा से ले जाते हैं। विवेकशील मृत्युकन्या जिसके पास पहुँच जाती है, उसे ही मैं ले जाता हूँ। अतएव उसी से पूछो कि वह किस कारण जीव के पास जाती है ?'

मालावती ने मृत्युकन्या से पूछा – 'तुम भी स्त्री हो और पति वियोग की वेदना को समझती हो। तब जीवित रहते हुए मेरे पति का अपहरण क्यों कर रही हो ?'

मृत्युकन्या बोली – 'आदिकाल से ही विश्व सृष्टा ब्रह्मा ने मुझे उत्पन्न करके इस कर्म में नियुक्त कर रखा है। इसलिए मैं विवश हूँ। मैं और मेरे पुत्रगण 'काल' की ही प्रेरणा से यह कार्य करते हैं। अत: अपने प्रश्न का उत्तर उन्हीं से पूछो।'

मालावती ने काल को सम्बोधित किया – 'काल और कर्मों के साक्षी, कर्मरूप, सनातन भगवान्! आप नारायण के अंश हैं। आपको नमस्कार है। हे प्रभो, कृपानिधे! आप सर्वज्ञ हैं। समस्त दु:खों को जानते हैं। मेरे जीवित काल में मेरे पति का अपहरण आप क्यों कर रहे हैं ?'

काल पुरुष ने कहा – 'हम लोग (यम, मृत्युकन्या तथा व्याधिगण) ईश्वर

की इच्छा के विपरीत कुछ नहीं करते। हम सभी उसकी आज्ञा के अधीन हैं। अत: परमेश्वर कृष्ण से ही तुम विनती करो। वे ही यदि चाहें तो तुम्हारे पति के प्राण लौटा सकते हैं, क्योंकि वे काल के भी काल, मृत्यु के भी मृत्यु और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हैं।'

ब्राह्मण (बालक वेषधारी विष्णु) ने कहा – 'मालावती तुमने यम, मृत्युकन्या तथा काल के उत्तर सुन लिये। अब बोलो, क्या कहती हो ?'

मायावती ने कहा – 'हे विप्र! मेरा पति किसी रोग या व्याधि के कारण नहीं, बल्कि ब्रह्मा जी की सभा में लज्जित तथा ब्रह्मा जी के शाप से ग्रसित होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ है। अत: इस समय तो मेरे पति को जीवित करने की कृपा करें।'

ब्राह्मण बालक ने सभी देवताओं को सम्बोधित करके उपबर्हण को पुनर्जीवित करने का उपाय पूछा। ब्रह्मा जी ने कहा – 'यह सब मेरे शाप के कारण हुआ है। अभी इसकी कुछ आयु शेष है। लेकिन बाद में इसे मरना होगा। फिर जब यह शूद्र योनि में जन्म लेगा तभी इसका 'शाप' से मोक्ष होगा और यह पुन: मेरा पुत्र बनेगा।'

यह कहकर ब्रह्मा जी ने उपबर्हण को पुनर्जीवित कर दिया। एक हजार वर्ष की आयु भोगकर उपबर्हण फिर से मृत्यु को प्राप्त हुआ और शूद्र योनि में जन्म लेकर ब्रह्मा जी के पुत्र नारद के नाम से विख्यात हुआ। [259]

भगवान श्रीकृष्ण का देहत्याग

महाभारत युद्ध के पश्चात् जब श्रीकृष्ण द्वारका में थे और उनके पुत्रों सहित समस्त यादवों को विश्वामित्र, कण्व और नारद आदि मुनियों का शाप लग चुका था, तब एक दिन देवताओं ने 'वायु' को अपना दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास भेजा। वायु ने कहा- 'आपको भूमण्डल में अवतरित हुए सौ वर्ष से अधिक समय (काल) बीत चुका है। आपके अवतार धारण करने का उद्देश्य भी लगभग पूरा हो चुका है। अत: यदि आपकी इच्छा हो तो आप इस पृथ्वी को त्यागकर अपने लोक को पधारें।'

श्रीकृष्ण ने कहा – 'अभी स्वेच्छाचारी यादवों का संहार शेष है। इस कार्य को सम्पन्न करके मैं शीघ्र ही इस पृथ्वी का त्याग कर दूँगा।'

श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर 'वायु' उन्हें प्रणाम् करके देवराज इन्द्र के पास लौट गया।

तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि अधिकांश यदुवंशी आपस में ही लड़-झगड़कर नष्ट हो गये। उन्होंने उद्धव को बदरिकाश्रम जाने का आदेश दिया। और अपने सारथी दारुक को आदेश दिया कि वह अर्जुन से कहे कि अर्जुन अनिरुद्ध के पुत्र 'वज्र' को ले जाकर मथुरा का राजा बना दे। दारुक के चले जाने पर जब श्रीकृष्ण ने देखा कि बलभद्र ने भी देह त्याग कर दिया है, तो वे समुद्र के तट पर निर्जन में जा बैठे। वहाँ पर 'जरा' नामक व्याध ने उनके चरण में बाण मार दिया। श्रीकृष्ण ने व्याध को तो क्षमा करके उसे स्वर्ग लाभ दिया - और स्वयं योग धारणा के द्वारा अपनी देह का त्याग कर दिया।

जिस दिन यह घटना घटी उस दिन तक श्रीकृष्ण की आयु पूरे एक सौ पच्चीस वर्ष की हो चुकी थी। श्रीकृष्ण के देहत्याग करते ही पृथ्वी पर 'कलियुग' का आगमन हो गया -

यस्मिन् दिने हरिर्यातो दिवं संत्यज्य मेदिनीम्।
तस्मिन्नेवावतीर्णोऽयं काल कायो बली कलि:॥ 8॥[260]

परिशिष्ट

अवशिष्ट परिभाषाएँ

पुरुष

अनादिरात्मा पुरुषो निगुर्ण: प्रकृते: पर:।
प्रत्यग्धामा स्वयं ज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम्॥ 3॥[261]

- यह सारा जगत जिससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है। वह अनादि, निर्गुण, प्रकृति से परे, अन्त:करण में स्फुरित होने वाला और स्वयं प्रकाश है।

प्रकृति

यत्तत् त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सद सदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेष वत्॥ 10॥

- जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य-कारण रूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मों का आश्रय है, उस प्रधान नायक तत्त्व को ही 'प्रकृति' कहते हैं।

प्रकृति का कार्य

पंचभि: पंचभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशाभिस्तथा।
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदु:॥ 11॥

– पंच महाभूत, पंच तन्मात्राएँ, चार अन्त:करण और दश इन्द्रिय।

– इन चौबीस तत्त्वों के समूह को विद्वान् लोग प्रकृति का कार्य मानते हैं।

महाभूतानि पंचैव भू रापोऽग्निर्मरुन्नभ:।
तन्मात्राणि च वा वन्ति गन्धादीनि मतानि मे॥ 12॥

– पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश – ये पंच महाभूत हैं। गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द – ये पंच तन्मात्राएँ माने गये हैं।

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वऽ दृग्रसन नासिका:।
वाक्करो चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्चते॥ 13॥

– श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और वायु – ये दस इन्द्रियाँ हैं।

मनो बुद्धिरहंकारश्चित्त मित्यन्तरात्मकम्।
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्या लक्षणरूपया॥ 14॥

– मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त – इन चार के रूप में एक ही अन्त:करण अपनी संकल्प, निश्चय, चिन्ता और अभिमान रूपा चार प्रकार की वृत्तियों से लक्षित होता है।

एतावानेव संख्यातो ब्रह्मण: सगुणस्य ह।
सन्निवेशो मया प्रोक्तो य: काल: पंचविंशक:॥ 15॥

– इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषों ने सगुण ब्रह्मा के संनिवेश स्थान इन चौबीस तत्त्वों की संख्या बतलायी है। इनके सिवा जो काल है, वह पच्चीसवाँ तत्त्व है।

प्रभावं पौरुषं प्राहु: कालमेके यतो भयम्।
अहंकार विमूढस्य कर्तु: प्रकृतिभीयुष:॥ 16॥

– कुछ लोग काल को पुरुष से भिन्न तत्त्व न मानकर पुरुष का प्रभाव अर्थात् ईश्वर की संहारकारिणी शक्ति बताते हैं जिससे माया के कार्यरूप देहादि में आत्म-तत्त्व का अभिमान करके अहंकार से मोहित और अपने को कर्त्ता मानने वाले जीव को निरन्तर भय लगा रहता है।

प्रकृतेर्गुण साम्यस्य निर्विशेषस्य यानवि।
चेष्टा यत: स भगवान् काल इत्युपलक्षित:॥ 17॥

– जिनकी प्रेरणा से गुणों की साम्यावस्था रूप निर्विशेष प्रकृति में गति उत्पन्न होती है, वास्तव में वे पुरुष रूप भगवान् ही 'काल' कहे जाते हैं।

अन्त: पुरुष रूपेण काल रूपेण यो वहि:।
समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया॥ 18॥

– इस प्रकार जो अपनी माया के द्वारा सब प्राणियों के भीतर जीवरूप से और बाहर कालरूप से व्याप्त हैं, वे भगवान् ही पच्चीसवें तत्त्व हैं।

युगं द्वादश साहस्रं, सहस्र युग संहितम्।
एतद् ब्रह्म युगं नाम, युगानां प्रथमं युगम्॥ 34॥[262]

– बारह हजार दिव्य वर्षों वाला 'काल', जब एक सहस्र बार चक्राकार घूम लेता है, तब एक 'ब्रह्मयुग' का काल कहलाता है। इस 'युग' को ही 'प्रधान' या सबसे पहला युग माना जाता है।

सहस्रयुगयोरन्ते संहार: प्रलयान्तकृत्।
सूक्ष्मं भवति लोकानां निर्विकारमचेतनम्॥ 35॥

– सहस्र युग के अन्त में 'ब्रह्मयुग' की समाप्ति होती है। तदुपरान्त 'संहार काल' शुरु होता है जिसमें लोकों की स्थिति (स्वरूप) सूक्ष्म, निर्विकार और अचेतन हो जाती है। इस संहार काल की समाप्ति भी एक सहस्र युग पश्चात् होती है।

तथा प्रलयमापन्नं जगत् सर्वं सनातनम्।
ब्रह्म संपद्यते सूक्ष्मं निर्मितं कारणैर्गुणै:॥ 36॥

– कारण भूत सत्त्वादि गुणों से निर्मित यह सनातन जगत प्रलय को प्राप्त होने

पर सूक्ष्म होकर 'ब्रह्म' में स्थित हो जाता है।

त्रिनाभिमति पंचारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके।
सम्वत्सर मये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥ 4॥ [263]

– तीन नाभियों (पूर्वाह्न, मध्याह्न और पराह्न रूप) वाले, पाँच अरों (सम्वत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर, अनुवत्सर और वत्सर) वाले, छै नेमियों (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत, हेमन्त और शिशिर) वाले 'सम्वत्सर' (वर्ष) में ही सम्पूर्ण 'कालचक्र' प्रतिष्ठित है। यह अक्षय स्वरूप सम्वत्सर ही 'कालचक्र' ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार यह 'चक्र' महाकाल का स्थान है।

त्रीणि वर्ष सहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिंदादन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षि वत्सरः॥ 13॥

– मानुष गणना के अनुसार तीन हजार तीस वर्षों का एक 'सप्तर्षि-वर्ष' होता है।

नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च।
वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसंवत्सरः स्मृतः॥ 14॥

– नौ हजार नब्बे मानुष वर्षों का एक 'ध्रुव वर्ष' या 'ध्रुव सम्वत्सर' होता है। [264]

ऋतुरग्निः स्मृतो विप्रैर्ऋतुं सम्वत्सरं विदुः।
जज्ञिरे ऋतवस्तस्माद् ऋतुभ्यो ह्यार्तवाऽ भवन्॥ 14॥
पितरोऽऽर्तवोऽर्धमासा विज्ञेया ऋतु सूनवः।
पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याब्द सूनवः।
प्रपतिामहः स्मृता देवाः पंचाब्दा ब्रह्मणः सुताः॥ 15॥

– महर्षियों ने ऋतु को 'अग्नि' बतलाया है और ऋतु को 'सम्वत्सर' भी कहते हैं। उस सम्वत्सर से ऋतु की उत्पत्ति होती है और ऋतुओं से उत्पन्न हुए 'पितर' आर्तव कहलाते हैं। आर्तव और अर्धमास पितरों को ऋतु का पुत्र तथा ऋतुस्वरूप पितामह एवं अमावस्या को सम्वत्सर का पुत्र जानना चाहिए। प्रपितामह और पंच सम्वत्सर रूप देवगण ब्रह्मा के पुत्र माने गये हैं। [265]

सप्तर्षि काल

सात तारों का समुच्चय 'सप्तर्षि-मण्डल' कहलाता है। यह उत्तर दिशा में 'ध्रुव' के चारों ओर घूमता हुआ दिखायी देता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इन तारों के नाम क्रमशः गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि हैं। किन्तु महाभारत के अनुसार ये सातों तारे क्रमशः मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ माने जाते हैं। वस्तुतः शतपथ में उल्लिखित सप्तर्षि वैवस्वत मन्वन्तर के तथा महाभारत में उल्लिखित सप्तर्षि स्वायंभुव मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं। [266]

ये सप्तर्षि जब रात्रि में उदित होते हैं, तब सर्वप्रथम 'पुलस्त्य' और 'क्रतु' दिखायी पड़ते हैं। इन दोनों के बीच में रात्रि के समय जो दक्षिणोत्तर रेखा पर 'समदेश' में स्थित अश्विनी आदि नक्षत्र दिखायी देते हैं, उनमें से प्रत्येक नक्षत्र पर यह सप्तर्षि-मण्डल पूरे एक सौ वर्ष तक रहता है। इस प्रकार सप्तर्षि-मण्डल का इन सत्ताईस नक्षत्रों पर भ्रमण 2700 सौर वर्ष में पूरा होता है। इसे 'सप्तर्षि काल' कहते हैं। [267]

मत्स्य पुराण के अनुसार सप्तर्षियों का एक वर्ष, तीन हजार तीस मानव वर्ष के तुल्य होता है। पुराणों के अनुसार चतुर्दश मन्वन्तरों के सप्तर्षि पृथक-पृथक होते हैं। [268] 'सप्तर्षि काल' के द्वारा ऐतिहासिक समय निर्धारित किया जाता रहा है। सप्तर्षि-चक्र के बारे में वाराह मिहिर ने प्राचीन ज्योतिर्विद 'गर्ग' के वचन उद्धृत करते हुए कहा है –

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षट् द्विक पंच द्वियुतः शक कालस्तस्य राज्ञश्च॥ 3॥

– अर्थात् जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर राज्य करते थे, उस समय 'सप्तर्षि-मण्डल' मघा नक्षत्र पर था। (वर्तमान) शकाब्द अंक के साथ 2526 मिलाने से युधिष्ठिर का राज्यकाल ज्ञात हो जायेगा। [269]

– विष्णु पुराण के अनुसार मघा पर सप्तर्षि-मण्डल परीक्षित के जन्म के समय था। [270]

विषुव काल

जिस दिन पन्द्रह मुहूर्त्त का दिनमान और पन्द्रह मुहूर्त्त का रात्रिमान होता है, उसे 'विषुव काल' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'सम्पात' है। पूरे वर्ष में विषुवकाल दो बार आता है। पहला तब, जबकि सूर्य भूमध्य रेखा को पार करके उत्तरी गोलार्द्ध की तरफ गमन करता है, और दूसरा तब जबकि सूर्य भूमध्य रेखा को पार करके दक्षिणी गोलार्द्ध की तरफ बढ़ता है। पहले को 'वसन्त सम्पात' और दूसरे को 'शरत् सम्पात' कहा जाता है। इन दोनों ही कालों में अहोरात्र बारह-बारह घण्टे के होते हैं।

वसन्त सम्पात से 'उत्तरायण' (या देव दिन) का तथा शरत् सम्पात से 'दक्षिणायन' (या देव रात्रि) का प्रारम्भ होता है।[271]

वसन्त सम्पात से 'वसन्त ऋतु' का और शरत् सम्पात से 'शरद् ऋतु' का प्रारम्भ होता है।

तात्पर्य यह कि 'विषुव काल' सम्पूर्ण भूमण्डल को प्रभावित करता है।

'विषुव काल' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह विषुवत् रेखा को जिस बिन्दु पर एक बार काटता है, उस बिन्दु पर दुबारा आने के लिए उसे छब्बीस हजार (सूक्ष्म मान से 25800) वर्ष का कालचक्र पूरा करना पड़ता है। अर्थात् इसका एक चक्र 26000 सौर वर्ष में पूरा होता है।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि 'विषुव काल' आकाश के 'क्रान्ति वृत्त' पर विलोम गति (उलटे क्रम) से चक्कर लगता है। अर्थात् पीछे की ओर हटता रहता है। उदाहरण के लिए, यदि वर्तमान वर्ष में 'वसन्त सम्पात' क्रान्तिवृत्त के प्रथम अंश पर हुआ है, तो अगले वर्ष प्रथम अंश से कुछ पीछे हटकर होगा। इस प्रकार 71.6622 वर्ष में प्रति अंश पीछे हटने की गति से 'वसन्त सम्पात' पुनः उसी बिन्दु पर 25800 सौर वर्ष पश्चात् आता है।

सामान्य व्यक्ति के लिए 'वसन्त सम्पात' की इस विलोम या लोम गति का कोई महत्त्व नहीं है। किन्तु पुरातत्त्ववेत्ताओं, इतिहासकारों और शोधकर्त्ताओं के

लिए इसका बड़ा महत्त्व है। इसके द्वारा प्राचीन ग्रन्थों के रचनाकाल के निर्धारण में बड़ी मदद मिलती है। विशेष रूप से भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों के काल-निर्धारण के लिए तो इसका गणित एक अचूक-उपाय है।

प्राचीनकाल में सम्वत्सर, वसन्त ऋतु और अन्यान्य वैदिक-यज्ञों का आरम्भ 'वसन्त सम्पात' से ही किया जाता था। इन ग्रन्थों में ऋतुओं का प्रारम्भ, सम्वत्सर का प्रारम्भ भिन्न-भिन्न राशियों, नक्षत्रों तथा महीनों में होना पाया जाता है। मान लीजिए किसी ग्रन्थ में वसन्त ऋतु का प्रारम्भ मार्गशीर्ष मास की किसी तिथि को होना लिखा है। तो 'सम्पात' के गणित से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि ऐसी स्थिति कितने वर्ष पूर्व रही होगी। वर्तमान में वसन्त सम्पात मार्च के महीने में पड़ता है। अर्थात् वास्तविक वसन्त ऋतु 21 मार्च से प्रारम्भ होती है। सम्पात के गणित के अनुसार ठीक 25800 वर्ष पूर्व भी वसन्त सम्पात इसी दिन होता रहा होगा। यदि किसी ग्रन्थ में वसन्त ऋतु का प्रारम्भ फाल्गुन शुक्ल - 11 को लिखा है, तो निश्चित् है कि वह ग्रन्थ ठीक 25800 वर्ष पूर्व लिखा गया होगा और उस दिन भी फाल्गुन शुक्ल एकादशी ही रही होगी।

पाठकों की जानकारी के लिए यह बता देना जरूरी है कि किस ग्रन्थ में वसन्त ऋतु का प्रारम्भ किस नक्षत्र, राशि या महीने में उल्लिखित है :-

1. शुक्ल यजुर्वेद के अनुसार वसन्त सम्पात राशि चक्र के आरम्भिक स्थान 'मेष राशि' (या अश्विनी नक्षत्र) में होता था।
2. श्रौत-सूत्रों में वसन्त सम्पात 'मीन' राशि में होना लिखा है।
3. सुश्रुत-संहिता और वेदांग ज्योतिष के समय 'कुंभ' राशि में होता था।
4. नारद संहिता के समय 'मकर' राशि में होता था।
5. काल माधव में 'धनु' राशि में होना लिखा है।
6. शुल्व सूत्र के कर्क भाष्य में 'वृश्चिक' राशि में होना लिखा है।
7. पौलिश सिद्धान्त और गालव संहिता में 'कर्क' राशि में होना लिखा है।

8. वर्तमान में 'कुंभ' राशि में होता है।[272]

– पं. दीनानाथ शास्त्री का कथन है कि 'वसन्त सम्पात' लोम तथा विलोम – दोनों ही गतियों से घूमता है। शक पूर्व 220699 वर्ष पूर्व यह लोम गति से घूमता था। अत: सूक्ष्म गणित तथा 'कालान्तर संस्कार' के द्वारा प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थ का रचनाकाल जाना जा सकता है।[273]

तिथि काल

तिथि– सूर्य और चन्द्रमा जब बारह अंश के अन्तर पर होते हैं, तब उस काल को 'तिथि' नाम से जाना जाता है। दूसरे शब्दों में सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों में जब 12 अंश का अन्तर आ जाता है तब एक तिथि होती है।

'तिथि' औसतन 60 घटी का 'काल' है। चूँकि तिथि सूर्य और चन्द्रमा की गति के कारण बनती है, इस कारण दिन या रात में कभी-भी बदल जाती है। कभी-कभी इसका 'मान' भी घट-बढ़ जाता है। अत: जब तिथि सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक रहती है, तब पूर्ण (या औसत) तिथि होती है। सूर्योदय के पहले समाप्त हो जाने पर 'क्षय' तिथि कहलाती है और जो तिथि दो सूर्योदयों तक रहती है, उसे 'वृद्धि तिथि' और कम मान वाली तिथि 'क्षय तिथि' कहलाती है।

सूर्य या पृथ्वी का वार्षिक-परिभ्रमण 360 अंश का होता है। जब तिथि 0 (शून्य) अंश से बढ़ते-बढ़ते 12 अंश तक पहुँच जाती है, तब उसे 'प्रतिपदा' कहते हैं। इसके पश्चात् द्वितीया-तृतीया इत्यादि से शुरु होकर तिथियाँ 'चतुर्दशी' तक चलती हैं। चतुर्दशी के बाद यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही अंश पर एकत्र हो जाते हैं और चन्द्रमा आगे बढ़ जाता है तो 'शुक्ल पक्ष' होता है और जब दोनों 180 अंश के अन्तर पर पहुँच जाते हैं तब 'कृष्णपक्ष' होता है। कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को 'अमावस्या' तथा शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को 'पूर्णिमा' कहते हैं। दोनों पक्षों में कुल तीस तिथियाँ होती हैं। प्रत्येक तिथि का 'अधिदेवता' या स्वामी अलग होता है। तिथियों के देवता ये हैं –[274]

शुक्लपक्ष की तिथियों के देवता		कृष्ण पक्ष की तिथियों के देवता
तिथि – प्रतिपदा	–	ब्रह्मा – दुर्गा
तिथि – द्वितीया	–	अग्नि – दण्डधर
तिथि – तृतीया	–	विरंचि – शिव
तिथि – चतुर्थी	–	विष्णु –विष्णु
तिथि – पंचमी	–	गौरी – हरि
तिथि – षष्ठी	–	गणेश – रवि
तिथि – सप्तमी	–	यम – काम
तिथि – अष्टमी	–	सर्प – शंकर
तिथि – नवमी	–	चन्द्रमा – कलाधर
तिथि – दशमी	–	कार्त्तिकेय– यम
तिथि – एकादशी	–	सूर्य –चन्द्रमा
तिथि – द्वादशी	–	इन्द्र – विष्णु
तिथि – त्रयोदशी	–	महेन्द्र – काम
तिथि – चतुर्दशी	–	वासव – शिव
तिथि – पूर्णिमा	–	नाग – –
तिथि – अमावस्या	–	– पितर

– तिथियों की यह सूची नारद पुराण के अनुसार है। एक अन्य मत के अनुसार तिथियों के स्वामी कुल सोलह हैं– (1) अग्नि (2) ब्रह्मा (3) गौरी (4) गणेश (5) सर्प (6) कार्त्तिकेय (7) सूर्य (8) शिव (9) दुर्गा (10) यमराज (11) विश्वेदेवा (12) विष्णु (13) कामदेव (14) शिव (15) पूर्णिमा के चन्द्रमा और (16) अमावस्या के पितर।[275]

नक्षत्र-काल

आकाश के जिस भाग में सूर्य और चन्द्रमा इत्यादि ग्रह-नक्षत्र या तारागण घूमते हुए दिखायी देते हैं, उसे 'क्रान्तिवृत्त' कहते हैं। इसके 360 अंशों को सत्ताईस भागों में बाँटा गया है। इन भागों पर कुछ निश्चित 'तारे' स्थिर रहते हैं जिन्हें 'नक्षत्र'

कहते हैं। ये नक्षत्र संख्या में 27 माने गये हैं। पुराणों के अनुसार ये दक्ष-प्रजापति की 27 पुत्रियाँ हैं जिनका 'सोम' (चन्द्रमा) के साथ विवाह हुआ था। वस्तुत: 'नक्षत्र-मण्डल' कालज्ञान का प्रमुख तथा प्राचीनतम् साधन है। इसे 'भचक्र' भी कहते हैं। इस भचक्र पर भ्रमण करने से सूर्य व चन्द्रमा का 'भोगकाल' ज्ञात होता है।

प्रत्येक नक्षत्र 13 अंश 20 कला का होता है। प्रत्येक नक्षत्र के चार-चार चरण (पाद) होते हैं जो पूर्व निर्धारित वर्णाक्षरों से जाने जाते हैं। इन नक्षत्रों के भी अधिदेवता होते हैं -

क्र.	नक्षत्र	चरणाक्षर	अधिदेवता
1.	अश्विनी	चू चे चो ला	अश्विनौ
2.	भरणी	ली लू ले लो	यम
3.	कृत्तिका	अ इ उ ए	अग्नि:
4.	रोहिणी	ओ वा वी वू	प्रजापति:
5.	मृगशिरा	वे वो का को	सोम:
6.	आर्द्रा	कु घ ङ छ	रुद्र:
7.	पुर्नवसु	के की हा ही	अदिति
8.	पुष्य	हू हे हो डा	बृहस्पति
9.	आश्लेषा	डी डू डे डो	सर्पा:
10.	मघा	मा मी मू मे	पितर:
11.	पूर्वा फाल्गुनी	मो टा टी टू	भग
12.	उत्तरा फाल्गुनी	टे टो पा पी	अर्यमा
13.	हस्त	पू ष ण ठ	सविता
14.	चित्रा	पे पो रा री	त्वष्टा
15.	स्वाति	रू ये रो ता	वायु,
16.	विशाखा	ती तू ते तो	इन्द्राग्नि
17.	अनुराधा	ना नी नू ने	मित्र
18.	ज्येष्ठा	नी य यी यू	इन्द्र
19.	मूल	ये यो भा भी	निर्ऋति:

20.	पूर्वाषाढा	भू धा फा ढा	आप:
21.	उत्तराषाढा	भे भो जा जी	विश्वेदेवा:
22.	श्रवण	सी खू खे खो	विष्णु:
23.	धनिष्ठा	गा गी गू गे	वसु:
24.	शतभिषा	गो सा सी सू	वरुण:
25.	पूर्वा भाद्रपद	से सो दा दी	अजैकपाद्
26.	उत्तरा भाद्रपद	डू थ झ ञ	अहिर्बुध्न्य
27.	रेवती	दे दी चा ची	पूषा

विशेष - यद्यपि 'नक्षत्र' केवल 27 ही होते हैं, तथापि 'उत्तराषाढ़ा' के चतुर्थ चरण की अन्तिम 15 घटियाँ और 'श्रवण' नक्षत्र के प्रथम भाग की 4 घटियाँ - कुल 19 घटियों का 'कालमान', 'अभिजित्' नाम से प्रसिद्ध है। सामान्य रूप में 'अभिजित्' एक मुहूर्त्त का नाम है जो मध्याह्न-अपराह्न के बीच, एक से दो बजे के अन्तराल में आता है। इसे अनेक कार्यों के लिए शुभ माना जाता है।[276]

मास-काल

'मास' या महीना भी काल का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। इसे सम्वत्सर (या वर्ष) का बारहवाँ भाग कहा जाता है। इसे - श्राम:, मास: और वर्षांश: इन तीन नामों से जाना जाता है। मास औसतन 30 सावन दिवसों का होता है, इसमें शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष या पखवारे के होते हैं। किन्तु सौर, चन्द्र, सावन और नाक्षत्र भेद से मास चार प्रकार के होते हैं जिनकी दिवस संख्या अलग-अलग मानी जाती है।

1. सौर मास - सूर्य की एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति के बीच का 'काल' सौर मास कहलाता है।

2. चान्द्र मास- शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर कृष्णपक्ष की अमावस्या (तीसवीं तिथि) तक के बीच का काल 'चान्द्रमास' कहलाता है।

3. सावन मास- तीस सावन दिनों का काल 'सावन' मास कहा जाता है।

4. नाक्षत्र मास – चन्द्रमा द्वारा 27 नक्षत्रों के भोग का काल 'नाक्षत्र मास' कहलाता है।

– मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियों वाले (सूर्य की संक्रान्ति वाले) मास 'सौर मास' हैं।

– नक्षत्रों के नामों पर आधारित – चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन नामधारी मास चान्द्रमास है, क्योंकि इन मासों की पूर्णिमा में क्रमशः चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वा-षाढ़ा, श्रवण, पूर्वा भाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा और उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र चन्द्रमा के निकट रहते हैं।[277]

'यजुर्वेद' में इन चैत्रादि मासों के वैदिक नाम क्रमशः – (1) मधु (2) माधव (3) शुक्र (4) शुचि (5) नभस् (6) नभस्य (7) इष (8) ऊर्ज (9) सहस् (10) सहस्य (11) तपस् (12) तपस्य – उल्लिखित हैं।

सूर्य की संक्रान्ति के कारण मासों के शुद्ध अधिक तथा क्षय – ये तीन भेद होते हैं।

(1) सूर्य की संक्रान्ति वाले मास 'शुद्ध मास' कहलाते हैं।

(2) जिस चान्द्रमास में स्पष्ट सूर्य की संक्रान्ति न हो, उसे अधिक (या मल) मास कहते हैं। यह प्रति तीसरे वर्ष होता है। उस वर्ष 13 मास होते हैं।

(3) जिस चान्द्रमास में स्पष्ट सूर्य की दो संक्रान्तियाँ होती हैं, उसे 'क्षयमास' कहते हैं। क्षय मास प्रायः कार्त्तिक, मार्गशीर्ष और पौष में होता है। जिस वर्ष 'क्षयमास' होता है, उस वर्ष एक वर्ष में दो 'अधिक मास' पड़ते हैं। जिस सम्वत् में 'क्षयमास' होता है उस सम्वत् के 19 वर्ष या 141 वर्ष बाद पुनः क्षयमास होने की संभावना रहती है।

चान्द्र वर्ष और सौर वर्ष के मानों में लगभग ग्यारह दिवस का अन्तर है जिसका सामंजस्य करने के लिए हर तीसरे वर्ष एक अधिक मास (अथवा 141 या 19 वर्ष पश्चात् क्षयमास) की व्यवस्था की गई है। अधिक मास सदैव शुद्ध मास के कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष के बीच में रहता है।[278]

बारह मासों के अधिकारीगण

पुराणों के अनुसार प्रत्येक मास के प्राकृतिक परिवर्तन, मास के अधिकारीगणों पर निर्भर करते हैं। ये अधिकारी, मास के स्वामी सूर्य के सहयोगी होते हैं और संख्या में सात रहते हैं। विष्णु पुराण द्वितीय अंश, अध्याय-10 के अनुसार ये मासाधिकारीगण निम्नलिखित हैं :-

(1) चैत्र मास – धाता नामक आदित्य। पुलस्त्य ऋषि। तुम्बुरऊ गन्धर्व। क्रतुस्थला अप्सरा। वासुकि नाग। रथमृत् यक्ष। हेति राक्षस॥

(2) वैशाख मास – अर्यमा-आदित्य। पुलह ऋषि। नारद गंधर्व पुंजिकस्थला अप्सरा। कच्छवीर नाग। रथौजा-यक्ष। प्रहेति राक्षस॥

(3) ज्येष्ठ मास – मित्र-आदित्य। अत्रि ऋषि। हा हा गन्धर्व। मेनका-अप्सरा। तक्षक नाग। रथस्वन यक्ष पौरुषेय-राक्षस॥

(4) आषाढ़ मास – वरुण आदित्य। वसिष्ठ ऋषि। हू हू गन्धर्व। सहजन्या अप्सरा। नाग सर्प। रथ चित्र यक्ष। रथ-राक्षस॥

(5) श्रावण मास- इन्द्र आदित्य। अंगिरा ऋषि। विश्वावसु गन्धर्व। प्रम्लोचा अप्सरा। एलापुत्र सर्प। स्रोत यक्ष। सर्पि राक्षस॥

(6) भाद्रपद मास- विवस्वान् आदित्य। भृगु ऋषि। उग्रसेन गन्धर्व। अनुम्लोचा अप्सरा। शंखपाल सर्प। आपूरण यक्ष। व्याघ्र राक्षस॥

(7) आश्विन मास- पूषा-आदित्य। गौतम ऋषि। सुषेण-गन्धर्व। घृताची अप्सरा। धनञ्जय सर्प। वसुरुचि यक्ष। वात राक्षस॥[279]

(8) कार्त्तिक मास- पर्जन्य आदित्य। भरद्वाज ऋषि। विश्वावसु गन्धर्व। विश्वाची अप्सरा। ऐरावत-सर्प। सेनजित् यक्ष। आप-राक्षस॥

(9) मार्गशीर्ष मास- अंश-आदित्य। काश्यप ऋषि। चित्रसेन गन्धर्व। उर्वशी अप्सरा। महापद्म सर्प। तार्क्ष्य यक्ष। विद्युत राक्षस॥

(10) पौष मास – भग-आदित्य। क्रतु-ऋषि। ऊर्णायु गन्धर्व। पूर्वचित्ति अप्सरा। कर्कोटक सर्प। अरिष्टनेमि यक्ष। स्फूर्ज राक्षस॥

(11) माघ मास – त्वष्टा आदित्य। जमदग्नि ऋषि। धृतराष्ट्र गन्धर्व। तिलोत्तमा अप्सरा। कम्बल सर्प। ऋतजित् यक्ष। ब्रह्मोपेत राक्षस॥

(12) फाल्गुन मास- विष्णु आदित्य। विश्वामित्र ऋषि। सूर्यवर्चा गन्धर्व। रम्भा अप्सरा। अश्वतर सर्प। सत्यजित् यक्ष। यज्ञोपेत राक्षस॥

विशेष – आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष और राक्षस इनके नामों में पुराण-भेद के कारण अन्तर पाया जाता है। किन्तु ये अधिकारीगण हैं सात – सात ही। अधिक या कम नहीं है। श्रीमद्भगवत का कथन है कि बारह मासों के ये 12 आदित्य आदि सात-सात गण 'लोकतंत्र के मासिक-व्यवहार' को ठीक से चलाने के लिए नियुक्त हैं-

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् कालरूप धृक्।
लोक तन्त्राय चरति पृथग् द्वादर्शाभर्गणैः॥ 32॥ [280]

– सूर्यमण्डल के ये सात-सात गण ही, अपने-अपने समय में (उपस्थित होकर) शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदि के कारण होते हैं –

सोऽयं सप्तगणः सूर्यमण्डले मुनि सत्तम।
हिमोष्ण वारिवृष्टीनां हेतुः स्वसमयं गतः॥ 22॥ [281]

अनध्याय काल

'अनध्याय' का अर्थ वह समय है जिसमें किसी भी प्रकार का अध्ययन या अध्यापन वर्जित रहता है। आधुनिक भाषा में इसे 'छुट्टी का दिन' कह सकते हैं।

पुराणों में 'अनध्याय काल' पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। नारद पुराण में कहा गया है कि अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, अमावस्या, पूर्णिमा, महाभरणी (भरणी नक्षत्र के योग से होने वाले पर्व विशेष) श्रवणयुक्त द्वादशी, पितृपक्ष की

द्वितीया, माघ शुक्ला सप्तमी, आश्विन शुक्ला नवमी – इन तिथियों में तथा सूर्य के चारों ओर 'घेरा' लगने एवं किसी श्रोत्रिय विद्वान् के अपने घर पधारने पर अध्ययन बन्द रखना चाहिए।

घर में किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण का स्वागत सत्कार किया गया हो, अथवा किसी से 'कलह' हुआ हो, उस दिन भी अध्ययन बन्द रखना चाहिए।

सन्ध्या के समय, अकाल में मेघ की गर्जना होने पर, असमय में वर्षा होने पर, उल्कापात तथा वज्रपात होने पर, अपने द्वारा किसी (ब्राह्मण) का अपमान हो जाने पर, मन्वादि तिथियों में या युगादि तिथियों में अध्ययन नहीं करना चाहिए। [282]

पंच वर्षाब्द-काल

'वेदाङ्ग ज्योतिष' के मंगलाचरण में यह श्लोक दिया हुआ है-

पंच सम्वत्सरमययुगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयन मासाङ्गं प्रणभ्य शिरसा शुचिः॥

– तदनुसार जो पंच सम्वत्सर मय युग का अध्यक्ष (सर्वोच्च सत्ताधारी) है, दिन, ऋतु, अयन और मास जिसके 'अवयव' (अंग) हैं, उस 'प्रजापति' को सिर नवाकर पवित्रतापूर्वक (श्रद्धापूर्वक) नमस्कार किया गया है।

यह पंच सम्वत्सर 'पंचाब्द' के रूप में लगभग सभी पुराणों में उल्लिखित हुआ है। किन्तु वस्तुतः यह क्या है, इसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। पुराणों में इन पाँचों वर्षों के नाम (थोड़े बहुत नाम भेद से) ये गिनाये गये हैं – (1) सम्वत्सर (2) परिवत्सर (3) इडावत्सर (4) अनुवत्सर तथा (5) वत्सर।

इनका स्पष्टीकरण यह है [283] –

(1) सूर्य की संक्रान्ति वाले द्वादश मासों का समुच्चय 'सम्वत्सर' है।

(2) मेष आदि राशियों पर बृहस्पति का परिभ्रमण 'परिवत्सर' है।

(3) चन्द्रमा के द्वारा 'भचक्र' (27 नक्षत्रों) के भोगकाल से सम्पन्न बारह महीनों का काल 'इडावत्सर' कहलाता है।

(4) चैत्रादि द्वादश मासों का समुच्चय 'अनुवत्सर' है।

(5) तीन सौ साठ सावन दिन वाला वर्ष 'वत्सर' कहलाता है।

सम्वत्-संग्रह

'सम्वत्' संस्कृत भाषा का पुल्लिंग शब्द है, जो 'वर्ष' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्रचलित अर्थ में 'सम्वत्' वह वर्ष-संख्या है जो किसी घटना विशेष के घटने से लेकर वर्तमान तक के 'गत-वर्षों' को प्रकट करती हो। किसी भी ऐतिहासिक घटना के गत वर्ष जानने के उद्देश्य से संसार के सभी देश 'सम्वत्' का उपयोग करते हैं। यहाँ कुछ विशिष्ट-सम्वत् दिये जा रहे हैं जो सम्वत् प्रारम्भ होने से लेकर वर्तमान सम्वत् तक की जानकारी देते हैं - [284]

भारतीय सम्वत्

क्र.	सम्वत् का नाम	वर्तमान वर्ष तक गताब्द	सौर वर्ष
1.	कल्प-सम्वत्	1,97,29,49,105	''
2.	सृष्टि-सम्वत्	1,95,58,85,105	''
3.	वामन-सम्वत्	1,96,08,89,105	''
4.	श्रीराम-सम्वत्	1,25,69,105	''
5.	श्रीकृष्ण-सम्वत्	5,230	''
6.	युधिष्ठिर-सम्वत्	5,105	''
7.	बौद्ध-सम्वत्	2,579	''
8.	महावीर सम्वत् (जैन)	2,531	''
9.	आदि शंकराचार्य सम्वत्	2,284	''
10.	विक्रम सम्वत्	2,061	''
11.	शालिवाहन सम्वत्	1,926	''
12.	कलचुरी सम्वत्	1,756	''
13.	वलभी-सम्वत्	1,684	''

14.	फसली-सम्वत्	1,415	''
15.	बंगला-सम्वत्	1,411	''
16.	हर्ष-सम्वत्	1,397	''

विदेशी-सम्वत् [285]

क्र.	सम्वत् का नाम	गत वर्ष (वर्तमान तक)	वर्ष
1.	चीनी सन्	9,60,02,302	''
2.	खताई सन्	8,88,38,375	''
3.	पारसी सन्	1,89,972	''
4.	मिस्री(इजिप्सियन)सन्	27,658	''
5.	तुर्की सन्	7,611	''
6.	आदम सन्	7,356	''
7.	ईरानी सन्	6,009	''
8.	यहूदी सन्	5,765	''
9.	इब्राहीम सन्	4,444	''
10.	मूसा सन्	3,708	''
11.	यूनानी सन्	3,577	''
12.	रोमन सन्	2,755	''
13.	ब्रह्मा (बर्मा)	2,545	''
14.	मलय केतु	2,316	''
15.	पार्थियन	2,251	''
16.	ईस्वी सन्	2,005	''
17.	जावा सन्	1,930	''
18.	हिजरी सन्	1,425	''

विशेष - नया सम्वत् चलाने का भारतीय -नियम यह था कि जो भी व्यक्ति (या राजा) अपना संवत् चलाना चाहता था, उसे सारी प्रजा का 'ऋण' चुका देना पड़ता था। अर्थात् एक भी किसी व्यक्ति के ऋणी रहने पर सम्वत् नहीं चलाया जा सकता था।

राशियों के स्वरूप

– मेष आदि बारह राशियाँ यद्यपि 'ज्योतिः शास्त्र' से सम्बन्ध रखती हैं। तथापि यह मानते हुए कि भारतीय ज्योतिष 'काल-विधान शास्त्र' है, वामन पुराण में वर्णित बारह राशियों के मूलस्वरूप तथा लक्षणों को यथावत् प्रस्तुत किया जा रहा है-

(1) मेष राशि 'भेड़' के समान आकार वाली है। बकरी, भेड़, धन-धान्य एवं रत्नाकर आदि इसके संचार स्थल हैं। यह राशि नवदूर्वा से आच्छादित समग्र पृथ्वी एवं पुष्पित वनस्पतियों से युक्त सरोवरों के पुलिनों में नित्य संचरण करती है। (5/47)

(2) वृषभ के समान रूप वाली वृष राशि – गोकुल आदि में विचरण करती है तथा कृषकों की भूमि इसका निवास स्थान है। (5/48)

(3) मिथुन राशि एक स्त्री और एक पुरुष के साथ-साथ रहने के समान रूप वाली है। यह शैया और आसनों पर स्थित है। पुरुष-स्त्री के हाथों में वीणा एवं अन्य वाद्य हैं। इस राशि का संचरण गायक, वादक, नर्त्तक तथा शिल्पियों में होता है। इस 'द्विस्वभाव' राशि को 'मिथुन' कहते हैं। इस राशि का निवास क्रीड़ा-स्थल और विहार भूमि है। (5/49-50)

(4) कर्क राशि केंकड़े के समान रूप वाली है एवं जल में रहती है। इसका निवास जल से पूर्ण क्यारी, नदी तीर, बालुका एवं एकान्त भूमि में रहता है। (5/51)

(5) सिंह राशि, सिंह के समान रूप वाली है। इसका निवास वन, पर्वत, दुर्गम स्थान, कन्दरा, व्याधों के स्थान तथा गुफायें हैं। (5/52)

(6) कन्या राशि, अन्न तथा दीपक हाथों में लिये नौका पर आरूढ़ है। यह स्त्रियों के रति स्थान, सरपत तथा कण्डों में विचरण करती है। (5/53)

(7) तुला राशि – हाथ में 'तुला' लिये हुए पुरुष के रूप में गलियों और बाजारों में विचरण करती है, तथा नगरों, मार्गों और भवनों में निवास करती है। (5/54)

(8) वृश्चिक राशि – का आकार बिच्छू जैसा है। यह गड्ढों, वल्मीक, विष, गोबर, कीट एवं पत्थर आदि में निवास करती है। (5/55)

(9) धनु राशि की जंघा घोड़े के समान है। यह ज्योतिः स्वरूप एवं धनुष लिये है। यह घुड़सवारी, वीरता के कार्य एवं अस्त्र-शस्त्रों की ज्ञाता तथा शूर है। गज एवं रथों में इसका निवास रहता है। (5/56)

(10) मकर राशि का मुख मृग के मुख सदृश एवं कन्धे वृष के कन्धों के तुल्य हैं। नेत्र, हाथी के नेत्रों के समान हैं। यह राशि नदी में विचरण करती तथा समुद्र में विश्राम करती है। (5/57)

(11) कुम्भ राशि – रिक्त घड़े को कन्धे पर लिये जल से भीगे पुरुष के समान रूप वाली है। इसका संचार द्यूत गृह (जुआ घर) तथा मदिरालय में होता है। (5/58)

(12) मीन राशि – दो संयुक्त मछलियों के आकार वाली है। यह तीर्थ स्थान एवं समुद्र देश में संचरण करती है। इसका निवास पवित्र देशों देव मन्दिरों तथा ब्राह्मणों के घर में रहता है।

कालादि शब्दकोश

काल-संज्ञा पुल्लिंग (वैदिक) वह सम्बन्ध-सत्ता जिसके द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान आदि की प्रतीति होती है। समय, वक्त।

1. ग्यारह रूदों में से एक का नाम (भाग0 3.12.11)

2. सर्वशक्तिमान ईश्वर का एक रूप (भाग0 1.6.4; 11.6; 13.47, 2.10.45; 8.17.27)

   यह ईश्वर ही है, केवल रूप भेद है (भाग0) यह सारी सृष्टि तथा महाप्रलय का अधिपति है। (वायु0 32.11.22) सब इसके अधिकार में हैं। यह संसार के प्रत्येक पदार्थ को बनाता बिगाड़ता रहता है। (विष्णु0 5.38.55.64)

3. मृत्यु का अधिपति या मृत्यु का नाम। राहु का अधिदेवता (ब्रह्माण्ड0 2.36.128; मत्स्य0 93, 14; 213.5, 18) इसके चार मुख हैं, प्रत्येक मुख एक युग का द्योतक है। (वायु0 32-8-77)

4. आठ वसुओं में से द्वितीय वसु ध्रुव का पुत्र (ब्रह्मण्ड0 3.3.22)

5. धर्म और विश्वा के दस विश्वेदेव पुत्रों में से एक विश्वेदेव (ब्रह्मण्ड0 3.3.30; मत्स्य0 5.23; 203.4; वायु0 66.21.31, विष्णु0 1.15.112)

6. एक भैरव देवता (ब्रह्माण्ड0 3.20.82)

7. ब्रह्मा या अव्यक्त से उत्पन्न (विष्णु0 1.2.14, 15.27)

8. सितोद झील के पश्चिम में स्थित एक पर्वत (वायु0 36.27)

9. समय का विभाजन तथा परमाणु की व्याख्या-

(a) परमाणु (b) अणु (c) त्रसरेणु (d) त्रुटि (e) वेध (f) लव (g)निमेष (h) क्षण (i) काष्ठा (j) कला (k) लघु (l) नाड़िका (m) प्रहर/याम (n) दिन/रात (o) पक्ष (शुक्ल/कृष्ण) पितृ-दिन/रात (p) मास (सौर, चान्द्र, सावन, नाक्षत्र (अधिमास-मलमास-क्षयमास) (q) ऋतु (वसन्त, ग्रीष्म, शरत्, हेमन्त, शिशिर) (r) अयन (उत्तरायण/दक्षिणायन) (s) देवदिन/रात) (t) वर्ष (संवत्सर, परिवत्सर, इडावस्सर, अनुवत्सर, वत्सर) (u) कालमान (सौर, सावन, बार्हिस्पत्य, चान्द्र, नाक्षत्र, दिव्य, पैत्रय, प्राजापत्य और ब्राह्य) (v) चतुर्युग (कृत, त्रेता, द्वापर, कलि) (w) युग संधि, युग सन्ध्यांश (x) मन्वन्तर (y) कल्प (z) पर और परार्ध।

10. काल के पर्यायवाची-समय, दिष्ट, अनेहा, अपष्टुः, जहकः, भवन्तः, भसन्तः, भसत्, पीथः, पीयुः, तिथः (अमरकोश तथा त्रिकाण्ड शेष कोश)

काल अशुद्धि- स्त्रीलिंग (सं.) जन्म अथवा मरण अशौच (या सूतक) किसी के मरने के पश्चात् शोक या स्यापा मनाने की अवधि।

'दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः। वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति॥' (ब्रह्म0 220.63)

काल कण्टक- पुल्लिंग (सं.) भगवान् शंकर का एक नाम (हिं0 श0 सा0)

काल कण्ठ- संज्ञा पुल्लिंग (सं.) शिव। महादेव। मोर नीलकण्ठ पक्षी। खंजन। खिड़रिच (हिं0 श0 सा0)।

कालकण्ठक- 'जलकाक' (अमरकोश 5/21)

कालक- पुल्लिंग (सं.)। एक देश जो महाभाष्यकार पतंजली के समय में आर्यावर्त्त की पूर्वा सीमा माना जाता था (हिं0 श0 सा0) विजर के दो पुत्रों में से काल कणिका-

कालकन्या- स्त्रीलिंग (सं.) काल की पुत्री (भागवत 4.27.27 दुर्भगा।)

कालका- संज्ञा स्त्री. (सं.) दक्ष प्रजापति की कन्या जो कश्यप ऋषि को व्याही थी (हिं0 श0 सा0) वैश्वानर दानव की चार पुत्रियों में से एक जो कश्यप को ब्याही थी और कालकेय नामक असंख्य पुत्रों की माता थी (महाभारत आदि0 65-35) कालक नामक राक्षस की माता।

कालकाम- पुल्लिंग (सं.) विश्वा के दस पुत्रों में से एक (मत्स्य0 203.13)

कालकुण्ठ- पु0 (सं.) यमराज। धर्मराज का नाम।

कालकूट- पु0 (सं.) समुद्र मंथन से निकला भयानक विष जिसे भगवान् शंकर ने अपने कण्ठ में रख लिया था, और तभी से उनका नाम नीलकण्ठ पड़ गया (ब्रह्माण्ड0 2-25.60; 3.25.9; 4.23.30; मत्स्य0 2.0.20-60; वायु0 54.57-9, 63, 95) त्रिपुरासुर का आश्रित एक दैत्य (गणेश0 1.43)

कालकृत्– सूर्य का नाम (त्रि. शेष 3/18)

कालक्रम– समय का फेर।

कालकेतु– सं0 पु0 (सं.) एक राक्षस

कालकेय– पु0 (सं.) कश्यप के दानवपुत्र जो कालका के गर्भ से उत्पन्न हुए थे (मत्स्य0 171-59) इन्हें रावण और दुर्गा ने परास्त किया था (ब्रह्माण्ड0 3.7.255) ये देवकूट पर्वत पर रहते हैं (वायु. 40.15) इन्हें कालकंज भी कहते हैं।

कालकोठरी– जेल खाने की बहुत तंग और अंधेरी कोठरी जिसमें तनहाई वाले कैदी रखे जाते हैं। कलकत्ते के फोर्टविलियम की वह कोठरी जिसमें बंगाल के नवाब सिराजुद्दोला ने अंग्रेजों को कैद रखा था। (हिं0 श0 सा0)

कालक्षेप– पु0 (सं0) दिन काटना। गुजर बसर करना (हिं0श0सा0)

कालखण्ड– संज्ञा पु0 (सं.) परमेश्वर (हिं0 श0 सा0) 'काल' के अवयव (त्रुटि इत्यादि)

कालगंगा– स्त्री0 (सं.) यमुना नदी (महाभारत सभा0 9/12) लंका की एक नदी (हिं0 श0 सा0)

कालगति– काल की गति

कालग्रन्थि– वर्ष का पर्यायवाची (त्रि0 शेष 4/29)

कालगड़ैत– वह विषधर सांप जिसके ऊपर काले गड़े या चित्तियाँ होती हैं।

कालगौतम– पु0 (सं.) एक ऋषि का नाम (हिं0 श0 सा0)

काल-चक्र– पु0 (सं.) समय का हेरफेर। एक अस्त्र (हिं0 श0 सा0) राजा बलि का एक वानर सेनापति (ब्रह्माण्ड0 3.7.235) समय का चक्र। मत्स्य पुराण के अनुसार पूर्वाह्न, मध्याह्न,

अपराह्न को कालचक्र की नाभि संवत्सर, परिवत्सर आदि (पंचाब्द) को 'पंचार' और छै ऋतुओं को नेमि बताया गया है। यह सूर्य, पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में है। अट्ठाईसों नक्षत्र (मेरू के दाहिने) इसी चक्र पर स्थित है (भागवत0 5.22.2-11; 23.3; मत्स्य0 162.1.19, विष्णु0 2.8.4) यह महाकाल का स्थान है (ब्रह्माण्ड0 4.32.7; 18-20)

कालचक्षु– सं0 पु0 (सं.) ययाति की पत्नी शर्मिष्ठा का एक पुत्र (ब्रह्माण्ड0 3.74.13)

कालजंघिका– स्त्री0 (सं0) अन्धकासुर युद्ध में महादेव द्वारा सृष्ट एक मातृका (मत्स्य0 179.23)

कालजिह्वा– स्त्री0 (सं.) इक्यावन वर्णों की 51 शक्तियों में से एक शक्ति (ब्रह्माण्ड0 4.44.76)

कालंजर– पु0 (सं.) एक पर्वत जो मेरु के उत्तर की ओर की तलहटी में स्थित है। यह काली का पवित्र स्थान है (मत्स्य0 13.32)। यहाँ जडभरत मृग के रूप में उत्पन्न हुए थे (भागवत0 5.16.26; 8-30, ब्रह्मण्ड0 3.13.100; विष्णु0 2.2.30) यह पर्वतों में श्रेष्ठ है। यहाँ विष्णु का श्वेत अवतार हुआ था (वायु0 23.204) बांदा जिले का प्रसिद्ध पर्वत दुर्ग जहाँ नीलकण्ठेश्वर महादेव की स्थापना है।

कालज्ञ– पु0 (सं.) ज्योतिषी

कालज्ञान– पु0 (सं.) स्थिति और अवस्था की जानकारी (हिं0श0सा0)

कालतुष्टि– स्त्री0 (सं.) सांख्य दर्शन के अनुसार वह तुष्टि जिसमें यह विचार कर सन्तुष्ट रहना होता है कि जब समय आयेगा, तब बात स्वयं ही बन जायेगी (हिं0 श0 सा0)

कालतोयक– पु0 (सं.) उत्तर के एक राज्य तथा देश का नाम (ब्रह्माण्ड0 2.16.46; 3.74.196 मत्स्य0 114.40) मणिधान्यज राजाओं

द्वारा उपभुक्त एक जनपद (वायु0 99.384)

कालत्व– वह अवस्था जिसके अन्तर्गत रजोगुणी स्वरूप ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, सतोगुणी स्वरूप विष्णु पालन करते हैं और तमोगुणी स्वरूप रूद्र संहार करते हैं।

कालदंष्ट्र– पु0 (सं.) एक असुर जो इन्द्र के द्वारा राक्षसों को विनाश के लिए अग्नि और वायु को आज्ञा देने पर समुद्र में घुस गया था (मत्स्यपुराण 61.4)

कालदण्ड– पु0 (सं.) यमराज का दण्ड।

कालधर्म– पु0 (सं.) मृत्यु, विनाश।

कालधर – पु0 (सं.) सूर्य (मुद्गल. एकदन्त–शरणागति स्रोत/श्लोक–18)

कालनर– पु0 (सं.) समानर के पुत्र तथा सृंजय के पिता का नाम (भागवत0 9.23.1; वायु0 99.13)

कालनाथ– पु0 (सं.) काल के रूप में महादेव, 2. काशी के कालभैरव (ब्रह्माण्ड0 4.16.12)

कालनाम– पु0 (सं.) सिंहिका और विप्रचित्त के दानव श्रेष्ठ पुत्रों में से एक पुत्र (विष्णु0 1.21.12) हिरण्याक्ष और भानु का एक पुत्र (भागवत0 7.2.18; वायु0 67.67; मत्स्य0 6.27; ब्रह्माण्ड0 3.5.30; इसका दूसरा नाम सैंहिकेय है (ब्रह्माण्ड0 3.6.20)

कालनिशा– स्त्री0 (सं.) दीपावली की रात/कार्तिक मास की अमावस (हिं0 श0 सा0)

कालनेमि– पु0 (सं.) एक राक्षस जो रावण का मामा था (रामायण लंका काण्ड)। विरोचन का पुत्र एक दानव (भागवत0

10.1.68) यही दानव अगले जन्म में श्रीकृष्ण के मामा कंस के रूप में जन्मा था (ब्रह्माण्ड0 3.72.21) हिरण्य कशिपु के पुत्र संह्लाद का पुत्र (ब्रह्माण्ड0 3.5.31.39) रावण के एक चाचा का नाम (रामचरितमानस, लंका काण्ड)

कालपथ– पु0 (सं.) विश्वामित्र का एक पुत्र (महाभारत अनु0 4.50)।

कालपर्णी– स्त्री0 (सं.) अन्धकासुर रक्तपान के लिए महादेव जी द्वारा सृष्ट एक मानस पुत्री मातृका का नाम (मत्स्य0 179–22)

कालपुरुष– पुल्लिंग (सं.) यमराज का नाम जो ब्रह्मा के पौत्र और सूर्य के पुत्र हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार 'कालपुरुष' तपस्वी के वेश में आयोध्यापति राम के पास आये और एकान्त में अपना असली रूप धारणकर श्रीराम से स्वर्ग चलने को कहा (वा0 रा0 उत्तरकाण्ड/103.1–17)

इनके छै मुख, बारह हाथ, चौबीस आँखें और छै पैर हैं। इनका रंग काला तथा उग्र रूप इनके शरीर को और भी भयंकर बना देता है। यह लाल वस्त्र धारण करते हैं।

कालपृष्ठ– पु0 (सं.) कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न सूर्य के पुत्र दानवीर कर्ण के धनुष का नाम। कश्यप का दिति से उत्पन्न एक दैत्यपुत्र इसका दूसरा नाम 'भस्मासुर' है (स्कन्द0 5.1.67)

एक सर्प (नाग) जो त्रिपुरासुर विनाश के समय शंकर जी के रथ में जुते अश्वों के केसर बांधने के लिए 'रज्जु' (रस्सी) बना था (महा कर्ण पर्व–34.29.30)

कालप्रभात– शरद् ऋतु (त्रि0 शे0 को0 1 काल0 29)

काल भवन – पु0 (सं.)यक्षों का एक गण (वायु0 69.40)

कालभीति– पु0 (सं0) काशी के माण्टी नाम ब्राह्मण का पुत्र जिसे शिव की कृपा से काल पर विजय मिली (स्कंद0 मा0 कु0 खंड)

कालभैरव– पु0 (सं.) शिव के एक अनुचर जो उन्हीं के अंश से उत्पन्न कहे जाते हैं।

कालमूर्त्ति– पु0 (सं.) वानर राज बालि के एक सामन्त का नाम (ब्रह्माण्ड. 3/7/233)

कालमेषिका– स्त्री0 मंजिष्ठा नामक औषधि (अमरकोश)

कालमेषी– वाकुची नाम औषधि (अमरकोश)

कालमृत्यु– पु0 (सं.) सर्वलोकभक्षी श्याम शरीर महाकाल के एक भृत्य का नाम (ब्रह्माण्ड0 4.32.5)

कालयवन– पु0 (सं.) एक अतिशक्तिशाली यवनराज जिसने मथुरा पर आक्रमण किया था और जो श्रीकृष्ण की चतुराई से 'मुचकुन्द' के द्वारा मारा गया (भाग0 10.50.44)

कालयापन– समय बिताना। दिन काटना।

कालयावी– पु0 (सं.) एक प्राचीन ऋषि जो महर्षि वाष्कलि के शिष्य और ऋग्वेद के अध्यापक थे।

कालरात्रि– स्त्री0 (सं.) प्रलय की रात्रि (ब्रह्मा की रात्रि) कार्तिक कृष्ण अमावस्या यमराज की बहिन यह सर्व प्राणियों का नाश करती है। एक वर्णशक्ति (ब्रह्माण्ड0 4.44.60) नव दुर्गाओं में से एक।

कालरूद्र– अग्निपुराण के अनुसार विष्णु, अग्नि तथा रूद्र।

कालरूप– भगवान् विष्णु के 'शार्ङ्गधनुष' का मूलरूप (श्रीमद्भागवत/ 12–11–15)

कालवशंगत– काल के वश में आया हुआ।

कालवन्दि– पु0 (सं.) घोड़ों के लिए विख्यात एक प्राचीन राज्य (ब्रह्माण्ड0 4/16/17)

कालवर्ग– काल से सम्बन्धित शब्दों का समूह, इसका प्रयोग अमरकोश और त्रिकाण्डशेष में हुआ है।

कालवाचक– वह शब्द जिससे किसी काल विशेष का बोध होता हो।

कालवलन– 'सन्नाह' नामक वर्म (कवच) त्रिकांडशेष कोश–8.49

कालवाशित– पु0 (सं.) भण्डासुर के सेनापति का नाम (ब्रह्माण्ड0 4/ 21/77)

कालविपाक– संज्ञा पु0 (सं.) किसी काम के होने का समय पूरा होना (सं0 हिं0 शा0 सागर)

कालविधान– काल के द्वारा निर्दिष्ट या निर्धारित वे नियम जिसके अनुसार सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय की क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

कालवीर्य– पु0 (सं.) सिंहिका और विप्रचित्ति के तेरह पुत्रों में से एक। हिरिण्य कशिपु का भानजा (मत्स्य0 6.28)

कालवृक्षीय– एक प्राचीन ऋषि जो इंद्र की सभा में रहते हैं (महाभारत /सभा. 7–18)

कालशंवर– पु0 (सं.) एक मायावी दैत्य जो प्रद्युम्न को जन्म के छठे दिन हर ले गया था और बाद में प्रद्युन्न के द्वारा मारा गया (विष्णु0 5.27.3.20)

कालशाक– एक 'गरहा' नामक औषधि जिसका उपयोग श्राद्ध में किया जाता है।

कालशिख– पु0 (सं.) वसिष्ठ वंशज ऋषियों में से एक (मत्स्य. 200)

कालशेय– अरिष्ट। गोरस (अ0 को0 223–53)

कालसंकर्षिणी– स्त्री0 (सं.) नृसिंह की पीठ से उत्पन्न एक देवी (मातृका) (मत्स्य0 179.68)

कालसर्प– ज्योतिष में एक योग का नाम।

कालसर्पि– पु0 (सं.) कश्यप तीर्थ का नाम। (ब्रह्माण्ड0 3.13.98–99 वायु0 77.87) यह ऊपर नीचे अग्नि और सूर्य से तप्त रहता है।

कालसाधारणता– पूर्व स्थिति का जहाँ पूर्णतया अन्त न हो और परस्थिति को भी जहाँ अनागत न कहा जा सके, उसे काल साधारणता कहते हैं (भ0 सं0 सि0 191)

कालसूत्र– पु0 (सं.) अट्ठाइस मुख्य नरकों में से एक (भाग0 5.26.7.14)

कालसेन– पु0 (सं.) एक डोम जिसने राजा हरिश्चंद्र को मोल लिया था (मार्कण्डेय0)

कालस्कन्ध– तेंडू या तमाल नामक औषधि (अमरकोश. 88–28, 95–68)

काला– स्त्री0 (सं.) दक्ष की पुत्री। कालकेयों की माता (मत्स्य0 171.29.59)

कालाग्नि– प्रलय काल की अग्नि (सं0 हिं0 श0 सा0)

कालग्निरूद्र– प्रलय कालक अग्नि रूपी रूद्र।

कालागुरू– अगरू की एक किस्म 'काला–अगरू (अ0 को0 6 / 127)

कालाक्षरी– काले अक्षर मात्र का अर्थ बता देने वाला विद्वान (सं0 हिं0 श0 सा0)

कालात्मा– पु0 (सं0) युगभियानी रूद्र (वायु0 31–55)

कालातीत– जिसका समय बीत गया हो (सं0 हिं0 श0 सा0)

कालाध्यक्ष– सूर्य

कालानल– पु0 (सं0) अनुपुत्र समानर का पुत्र जो पंडित था। संवर्ताग्नि (ब्रह्माण्ड0 2.25.45.56)

कालानुसार्य– जायक नामक गंधद्रव्य (अ.को.6–126)

कालाम्र– पु0 (सं.) भद्राश्व देश का एक वृक्ष जिसके फलों के रस में स्त्रियों की जवानी सुरक्षित रखने की शक्ति है (ब्रह्माण्ड0 2.15.58)

कालयनि– पु0 (सं.) ऋग्वेद शाखा प्रवर्त्तक वाष्कल के तीन शिष्यों में से एक (विष्णु0 3.4.25)

कालायसशाल– पु0 (सं.) मेरू के चार शिखरों में से एक ब्रह्माण्ड (ब्रह्माण्ड0 4.31.34.50)

कालाष्टमी– स्त्री0 (सं0) मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी की भाद्रपद कृष्णाष्टमी। श्रीकृष्ण की जन्म तिथि।

कालास्त्र– एक अस्त्र। वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग 101 के अनुसार 'संवर्त' नामक अस्त्र जिसके द्वारा भरत ने गंधर्वों का नाश किया था।

कालिंग– पु0 (सं.) एक देश जिसके राजा के बलराम ने दांत उखाड़ डाले थे (भागवत0 10.61.27–37)

कालिंगक– पु0 (सं.) कलिंग निवासी एक ब्रह्मण जो भीष्म का मित्र था (विष्णु0 3.7.9.12.38)

कालिंजर– पु0 (सं.) बांदा जिले में स्थित एक पर्वतीय तीर्थ (मत्स्य0 181.27)

कालिन्द– पु0 (सं.) एक किन्नर जिसका मुख घोड़े जैसा होता है। (वायु0 69.32)

कालिन्दी– स्त्री0 (सं.) यमुना नदी। केतुमाल की एक नदी। अयोध्या के राजा असित की पत्नी। (विष्णु0 5.7.2)

कालिन्दी भेदन– पु0 (सं.) श्रीकृष्ण के अग्रज बलराम जिन्होंने यमुना का अपकर्षण किया था (भाग0 10.65.23.25)

कालिक– पु0 (सं.) सामगश्रेष्ठ कृत का एक शिष्य (ब्रह्माण्ड0 2.35.51.)मय और रंभा का पुत्र (ब्रह्माण्ड0 3.6.29)

कालिका– स्त्री0 (सं0) एक शक्ति जो मातंगी के शरीर से उत्पन्न हुई थी (ब्रह्माण्ड0 4.44.86)

कालिका पुराण– पु0 (सं.) एक उप पुराण का नाम।

कालिय– पु0 (सं.) एक दानव राजा (ब्रह्माण्ड0 4.29.124) एक नाग जो यमुना में रहता था (भा0 5.24.29)

कालिय नाग– पु0 (सं.) कालीदह में रहने वाला नाग (विष्णु0 5.7.3)

काली– पु0 (सं.) एक मातृका देवी (ब्रह्माण्ड0 4.7.72) कालिका (दुर्गा) भीमसेन की पत्नी जो सर्वगत की माता थी (भाग0 9.22.31) कालचक्र की द्वारपाल (ब्रह्माण्ड0 4.32.18)

कालीदाह– संज्ञा पु0 (सं.) वृन्दावन में यमुना नदी का एक (दह) जिसमें कलिय नाग रहा करता था।

कालेय– पु0 (सं.) एक दानवगण जो काला की संतान थे।

कालेयगण– पु0 (सं.) रसातल निवासी दानवगण (भाग0 5.24.30)

काल्या– वह गाय जिसका गर्भ काल निकट हो (अमर0 वैश्य वर्ग / 170)

कालेश्वर– पु0 (सं.) नर्मदा तटवर्ती एक तीर्थ जो ललिता पीठ के लिए विख्यात है (ब्रह्मा0 4.44.97)

कालोदर– पु0 (सं.) एक पूर्वी राज्य जहाँ होकर ह्लादिनी नदी बहती थी (ब्रह्माण्ड0 2.18.55) यहाँ के निवासी भी इसी नाम से पुकारे जाते थे (वायु0 47.52)

सहायक-ग्रन्थ

वेद (प्रकाशक - ब्रह्मवर्चस् हरिद्वार)

1. ऋग्वेद संहिता (संस्कृत-हिन्दी) संवत् 200
2. यजुर्वेद संहिता (संस्कृत-हिन्दी)
3. सामवेद संहिता (संस्कृत-हिन्दी)
4. अथर्ववेद संहिता (संस्कृत-हिन्दी)

ब्राह्मण (प्रकाशक - श्रीवेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई)

5. शतपथ-ब्राह्मणम् प्रथमकाण्डम् (संस्कृत) संवत् 1983 वि.
6. शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी (संस्कृत-हिन्दी)

उपनिषद (प्रकाशक - गीता प्रेस गोरखपुर)

7. श्वेताश्वतर उपनिषद (संस्कृत-हिन्दी) सं. 2040 वि.

वेदांग

- निरुक्त पंचाध्यायी (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - मेहरचंद्र लक्ष्मणदास, दिल्ली
- पाणिनीय अष्टाध्यायी (संस्कृत)
  प्रकाशक - चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी (1965)
- पाणिनीय धातु पाठ (संस्कृत-हिन्दी) सन् 2000 ई.
  प्रकाशक - चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी
- सूर्य सिद्धान्त (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई (सन् 2059)
- वाराही संहिता (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई (सन् 1987)
- भारतीय ज्योतिष संग्रह (डॉ. उमेश पुरी ज्ञानेश्वर)
  प्रकाशक - रणधीर प्रकाशन हरिद्वार (सन् 1996-97)
- सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय (संस्कृत)
  प्रकाशक - कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी (सन् 1856 ई.)

पुराण (प्रकाशक - गीता प्रेस, गोरखपुर)

1. श्री विष्णु पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
2. श्री कूर्म पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
3. श्री मत्स्य पुराण (संस्कृत-हिन्दी) सन् 1984 ई., 1985 ई.
4. श्री नरसिंह पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
5. श्रीमद्भागवत पुराण (संस्कृत-हिन्दी) संवत् 2056
6. श्री हरिवंश पुराण (संस्कृत-हिन्दी)

7. श्रीमद् देवी भागवत (हिन्दी - संक्षिप्त)
8. श्री पदम पुराण (हिन्दी - संक्षिप्त)
9. श्री शिव पुराण (हिन्दी - संक्षिप्त)
10. श्री स्कन्द पुराण (हिन्दी - संक्षिप्त)
11. श्री नारद पुराण (हिन्दी - संक्षिप्त)
12. श्री भविष्य पुराण (हिन्दी - संक्षिप्त)
13. श्री गरुड़ पुराण (हिन्दी - संक्षिप्त)
14. श्री वराह पुराण (हिन्दी - संक्षिप्त)
15. श्री वामन पुराण (संस्कृत-हिन्दी)

पुराण (प्रकाशक - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

16. श्री ब्रह्म पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
17. श्री ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
18. श्री अग्नि पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
19. श्री वायु पुराण (संस्कृत-हिन्दी)

पुराण (प्रकाशक - श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई)

20. श्री मार्कण्डेय पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
21. श्री गर्ग संहिता (संस्कृत-हिन्दी)

इतिहास (प्रकाशक - गीता प्रेस, गोरखपुर)

22. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण (संस्कृत-हिन्दी)
23. श्रीमद् अध्यात्म रामायण (संस्कृत-हिन्दी)
24. सं. महाभारत (हिन्दी)
25. ब्रह्माण्ड पुराण (संस्कृत-हिन्दी)
    प्रकाशक - संस्कृति संस्थान, बरेली (सन् 1980 ई.)

उपवेद (आयुर्वेद)

- अष्टांग हृदय (संस्कृत-हिन्दी) वागभट्ट
  प्रकाशक - चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी (1978)

उपवेद (धनुर्वेद)

- धनुर्वेद संहिता (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - खेमराज श्रीकृष्णदास मुंबई (1990)

उपवेद (अर्थवेद - नीतिशास्त्र)

- चाणक्य सूत्रम् (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (1962)

- चाणक्य नीति दर्पण (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ (सन् 1900 ई.)

- शुक्र नीति (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी (सं. 2056)

दर्शन

1. सांख्य दर्शनम् (महर्षि कपिल मुनि)(संस्कृत-हिन्दी)
   प्रकाशक - खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई (सन् 2001)

2. योग दर्शनम् (महर्षि पतञ्जलि)(संस्कृत-हिन्दी)
   प्रकाशक - श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई

3. सर्वदर्शन संग्रह

4. भारतीय दर्शन (डॉ. बलदेव उपाध्याय)
   प्रकाशक - शारदा मंदिर, वाराणसी (1966 ई.)

5. श्रीमद्भगवत गीता (तत्त्वविवेचनी टीका)
   प्रकाशक - गीता प्रेस, गोरखपुर

6. गोरक्ष-पद्धतिः (संस्कृत-हिन्दी)
   प्रकाशक - श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई (1996)

तन्त्र शास्त्र

1. महानिर्वाण तन्त्रम् (संस्कृत-हिन्दी)
   प्रकाशक - श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई (सन् 1998 ई.)

2. ललिता सहस्त्रनाम (भास्कर राय) (संस्कृत)
   पीताम्बरा पीठ, दतिया (सं. 2039)

उपवेद (गान्धर्व - संगीत)

1. संगीत-मकरन्द (संस्कृत) नारद मुनि
   प्रकाशक - संगीत कार्यालय, हाथरस (1978)

2. संगीत-पारिजात (संस्कृत-हिन्दी) अहोबल पंडित
   प्रकाशक - संगीत कार्यालय, हाथरस (सन् 1956)

3. संगीत-दर्पण (संस्कृत-दामोदर पंडित)
   प्रकाशक - टी. चन्द्रशेखरन्, मद्रास (सन् 1951)

4. वैष्णव संगीत शास्त्र (नरहरि चक्रवर्ती)
   प्रकाशक - चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी (1983)

5. मृदंग तबला प्रभाकर (भाग-1, 2) स्वामी रामशंकर दास 'पागलदास'
   प्रकाशक - संगीत कार्यालय, हाथरस

6. भरत का संगीत सिद्धान्त (आचार्य कैलाशचंद्र देव वृहस्पति)
   प्रकाशक - प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश (1959)

7. लय प्रश्न पोथी (कुदऊं सिंह)
   पाण्डुलिपि - अब्दुल रहमान (सम्वत् 1929)

8. भरत भाष्यम् (संस्कृत-हिन्दी)
   प्रकाशक - इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (1976)

'कल्याण' मासिक के विशेषांक

(प्रकाशक - गीता प्रेस, गोरखपुर)

1. हिन्दू-संस्कृति अंक (हिन्दी) विक्रम सम्वत् 2006
2. योग वसिष्ठ अंक (हिन्दी) विक्रम सम्वत् 2017
3. वेद कथाङ्क (हिन्दी) विक्रम सम्वत् 2055
4. देवता अङ्क (हिन्दी) विक्रम सम्वत् 2047

वैदिक - पूरक साहित्य

- चरण व्यूह सूत्रम् (संस्कृत) विक्रम सम्वत् 2051
  प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी (सन् 1994)

- शौनकीय बृहद् देवता (संस्कृत-हिन्दी)
  प्रकाशक - भवदीय प्रकाशन, अयोध्या (सन् 2002)

अन्य ग्रंथ

1. पाणिनिकालीन भारतवर्ष (डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल)
   प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी (सं. 2012)

2. वेद काल निर्णय (पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट्)
   प्रकाशक - श्रीनाथ प्रेस, एलिचपुर, महाराष्ट्र (सं. 1987)

3. काल-सिद्धान्तदर्शिनी (संस्कृत) लेखक- म.म.हारणचन्द्र भट्टाचार्य
   प्रकाशक - सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् 1984

4. सत्यार्थ प्रकाश (स्वामी दयानंद सरस्वती)
5. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (स्वामी दयानंद सरस्वती)
   प्रकाशक - आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली सन् 1969

6. अष्टादश पुराण दर्पण (पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र)
   प्रकाशक - श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई (सन् 1995 ई.

कोश

1. अमर कोश - माहेश्वरी टीका (संस्कृत)
   प्रकाशक - निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई सन् 1882 ई.

2. अमर कोश - व्याख्यासुधा टीका (संस्कृत)
   टीकाकार - भानुजी दीक्षित (पाण्डुलिपि)

3. वैदिक-इण्डैक्स (अँग्रेजी - मैकडोनेल एण्ड कीथ)
   प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (सन् 1982)

4. सं. हिन्दी शब्द सागर (हिन्दी)
   प्रकाशक - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

5. पौराणिक कोश - (हिन्दी - राणाप्रसाद शर्मा)
   प्रकाशक - ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (सन् 1986)

6. महाभारत की नामानुक्रमणिका (हिन्दी)
   प्रकाशक - गीता प्रेस, गोरखपुर

7. नानार्थार्णव संक्षेपः (संस्कृत) केशव स्वामिन्
   प्रकाशक - अनन्त शयन, सि.वि.एच. प्रकाशन, त्रिवेन्द्रम, 1990 ई.

8. मेदिनीकर कोश (संस्कृत-मेदिनीकर)
   प्रकाशक - श्री जीवानंद भट्टाचार्य कलिकाता, सन् 1897 ई.

9. त्रिकाण्ड शेष कोश (संस्कृत)
   प्रकाशक - खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई (सन् 1916)

सन्दर्भ :

1. श्रीमद्भागवत/पंचम स्कन्ध/अ. 23/मन्त्र-8.
2. श्री विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ. 4/श्लोक-14.
3. श्री कूर्म पुराण/ उपरि विभाग/अ. 44/श्लोक-62[1/2].
4. श्री ब्रह्मवैवर्त्त पुराण/प्रकृति खण्ड/अ. 5/श्लोक-15.
5. श्री ब्रह्म वैवर्त्त पुराण/ब्रह्म खण्ड/अ. 15/श्लोक-41.
6. श्रीमद् देवी भागवत/नवम स्कन्ध/अ. 31/श्लोक-9-10.
7. शिवपुराण/रुद्रसंहिता/अ. 6/श्लोक-17.
8. यजुर्वेद संहिता/अ. 2/मन्त्र-63(32).
9. भर्तृहरि/नीति शतक/
10. वामन पुराण/अ. 86/श्लोक-44.
11. *लट् वर्तमाने लेट् वेदे, भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।*
    विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ, लूट लृट् लृङ् च भविष्यति॥
12. श्रीमद्भागवत/दशम स्कन्ध/अ. 51/श्लोक-19.
14. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ. 15/श्लोक-91-100 एवं सभी पुराण.
15. सभी पुराण.
16. वही
17. वायु पुराण/अध्याय-45/श्लोक-76.
18. स्कन्द पुराण/कुमारिका खण्ड/पृ.-118-119.
19. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण/उत्तरकाण्ड/सर्ग-100-101.
20. श्रीराम सम्वत् के लिए 'हिन्दू संस्कृति अंक', पृ.-755 दृष्टव्य है.

21. वाराही संहिता/अ. 2/श्लोक-6.
22. 'भगण' का अर्थ 'द्वादश राशियों का भोग काल है।' अर्थात् जब कोई ग्रह अश्विनी नक्षत्र से आरम्भ करके रेवती नक्षत्र के अन्तिम बिन्दु पर आ जाता है, तब उसे एक 'भगण' कहते हैं-
    शीघ्रगस्तान्यथाल्पेन कालेन महताल्पग:।
    तेषां तु परिवर्त्तेन पौष्णान्ते भगण: स्मृत:॥ 27॥
    - शीघ्र चलने वाले ग्रह थोड़े समय में, और थोड़े चलने वाले ग्रह अधिक समय में गमन करते हैं। इनके 'रेवती' के अन्त में फिर लौट आने से एक भगण होता है। (सू. सि./अ.-I/श्लोक-27)
23. अठारह संख्याएँ ये हैं-
    (1)एक (2) दश (3) शत (4) सहस्त्र (5) दश सहस्त्र (अयुत) (6) लक्ष (नियुत) (7) दश लक्ष (प्रयुत) (8) कोटि (करोड़) (9) दश करोड़ (अर्बुद) (10) अरब (न्यर्वुद) (11) दश अरब (खर्व) (12) पद्म (खरब) (13) महापदम (दश खरब) (14) नील (शंकु) (15) दश नील (समुद्र) (16) शंख (मध्य) (17) दश शंख (अन्त) (18) परार्ध।
24. सूर्य सिद्धान्त/अ.-I/श्लोक-18.
25. श्रीशचन्द्र विद्यार्जव के (मत्स्य पुराण की परिशिष्ट VIII में प्रकाशित) लेख के अनुसार।
26. पं. दीनानाथ शर्मा शास्त्री/हिन्दू संस्कृति अंक पृ.-340.
27. यह संख्या ब्रह्मा के एक वर्ष काल की है।
28. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका.
29. ब्रह्माणं केशवं रुद्रं भेद भावेन मोहिता:। पश्यन्ति एकं न जानन्ति पाखण्डोपहता जना:॥
    - अष्टादश पुराण दर्पण पृ.-50 (उपोद्घात).
30. ऋग्वेद के मन्त्र 3/33/5 की निरुक्ति में (यास्क कृत निरुक्त पंचाध्यायी का अ.-2 सप्तम पाद)
31. वैदिक इण्डैक्स (इंग्लिश इण्डैक्स)
32. श्री ललिता सहस्त्रनाम स्तोत्र के श्लोक 96 के भाष्य के अनुसार पृ. 286.
33. त्रिकाण्डशेष कोश: नानार्थवर्ग: श्लोक-21.
34. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ. 2/श्लोक-18.
35. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ. 2/श्लोक-1-2.
36. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ. 2/श्लोक-26.
37. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ. 15/श्लोक-112 (103-112).
38. श्रीमद्भगवद्गीता/अ. 10/श्लोक-30, 33.
39. गीता की तत्वविवेचिनी टीका/अ. 10/श्लोक-30, 33.
40. महानिर्वाण तन्त्र/पंचमोल्लास/श्लोक-140.
41. महानिर्वाण तन्त्र/सप्तमोल्लास/श्लोक-13.

42. शिवपुराण/कोटि रुद्र संहिता/अ. 35/श्लोक–37, 39 और 103.
43. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण/उत्तरकाण्ड/सर्ग–104.
44. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण/उत्तरकाण्ड/सर्ग–104/(श्लोके 2, 4, 5, 7, 8, 9).
45. अध्यात्म रामायण/उत्तरकाण्ड/सर्ग–8/श्लोक–9, 22, 25, 26, 28.
46. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ. 2/श्लोक–10, 11, 12, 13, वही 14, 15, 16, 17, वही 18, 19, 20, 21, 23, वही 27, 26, अ. 22/36
47. ब्रह्म पुराण/अ.–236/श्लोक–26, 27, 28, 29, 30, 31.
48. श्रीमद्भागवत/दशम स्कन्ध/अध्याय 51/श्लोक–19.
49. वही/प्रथम स्कन्ध/अध्याय 6/श्लोक–4.
50. वही/प्रथम स्कन्ध/अध्याय/ 11/श्लोक–6.
51. वही/प्रथम स्कन्ध/अध्याय/ 13/श्लोक–45.
52. वही/प्रथम स्कन्ध/अध्याय/13/श्लोक–48.
53. वही/द्वितीय स्कन्ध/अध्याय 10/श्लोक–43.
54. वही/अष्टम स्कन्ध/अ.–17/श्लोक–27.
55. वही/तृतीय स्कन्ध/अ.–12/श्लोक–12.
56. वही/तृतीय स्कन्ध/अ.–29/श्लोक–4.
57. वही/तृतीय स्कन्ध/अ.–29/श्लोक–36–38.
58. वही/तृतीय स्कन्ध/अ.–29/श्लोक–43–45.
59. वही/चतुर्थ स्कन्ध/अ.–12/श्लोक–3.
60. वही/द्वितीय स्कन्ध/अ.–5/श्लोक–14.
61. वही/स्कन्ध–10/अ.–1/श्लोक–7, 22
62. वही/स्कन्ध–11/अ.–3/श्लोक–8.
63. वही/स्कन्ध–11/अ.–3/श्लोक–15.
64. वही/स्कन्ध–11/अ.–22/श्लोक–42.
65. वही/स्कन्ध–11/अ.–24/श्लोक–15.
66. वही/स्कन्ध–11/अ.–24/श्लोक–19.
67. वही/स्कन्ध–11/अ.–24/श्लोक–26.
68. कूर्म पुराण/पूर्व विभाग/अ.–5/श्लोक–19, 20, 21.
69. वही/पूर्व विभाग/अ.–9/श्लोक–60.
70. वही/पूर्व विभाग/अ.–11/श्लोक–30, 38.
71. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण/प्रकृति खण्ड/अ.–17/श्लोक–55, 56, 57, 58, 59, 61, 62,
72. वही/ब्रह्म खण्ड/अ.–15/श्लोक–23, 24, 25, 26.
73. वायु पुराण/देववंश वर्णन/अ.–31/श्लोक–22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60

74. वही/युगधर्म/अ.–32/श्लोक–1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35
75. वामन पुराण/अ.–5/श्लोक 29, 30, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42,43
76. वही/अ.–80/श्लोक–3 से 9 तक.
77. विष्णु पुराण/द्वितीय अंश/अ.–9/श्लोक–1–3.
78. मत्स्य पुराण/अ.–125/श्लोक–5 की टिप्पणी.
79. विष्णु पुराण/द्वितीय अंश/अ.–12/श्लोक–30–31.
80. श्रीमद्भागवत/पंचम स्कन्ध/अ.–23/श्लोक–4 से 9 तक.
81. विष्णु पुराण/द्वितीय अंश/अ.–12/श्लोक–31 से 34 तक.
82. श्रीमद्भागवत/पंचम स्कन्ध/अ.–23/मंत्र–8–9.
83. वामन पुराण/अ.–61/श्लोक–54 से 67 तक.
84. श्वेताश्वरोपनिषद्/अ.–1/मंत्र–2.
85. वही/अ.–1/मंत्र–3.
86. ब्रह्म पुराण/उत्तर भाग/अ.–236/श्लोक–26–31.
87. वही/उत्तर भाग/अ.–212/श्लोक–56 से 58 और 64
88. पद्म पुराण/सृष्टि खण्ड/पृष्ठ–23.
89. वही/सृष्टि खण्ड/पृष्ठ–127.
90. वही/सृष्टि खण्ड/पृष्ठ–131.
91. वही/उत्तर खण्ड/पृष्ठ–929.
92. वही/उत्तर खण्ड/पृष्ठ–933.
93. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–2/श्लोक–24–26.
94. वही/प्रथम अंश/अ.–22/श्लोक–79.
95. सं. शिव पुराण/कैलाश संहिता/अ.–16/पृ.–629.
96. श्रीमद्भागवत/द्वितीय स्कन्ध/अध्याय–5–6.
97. सं. नारद पुराण/पूर्वभाग–प्रथमपाद/पृ.–9–10.
98. मार्कण्डेय पुराण/अ.–96/श्लोक–44, 48, 49, 50, 51, 63–64.
99. अग्नि पुराण/अ.–1/श्लोक–11–13.
100. वही/अ.–17/श्लोक–11.
101. भविष्य पुराण/ब्राह्मपर्व/अ.–127
102. वही/ब्राह्मपर्व/अ.–123
103. वही/ब्राह्मपर्व/अ.–125
104. वही/ब्रह्म पर्व/सूर्य का विराट रूप वर्णन/ 9–10–10/2.
105. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण/पूर्वभाग–ब्रह्मखण्ड/अ.–5, 15, 25 एवं प्रकृति खण्ड/अ.–17/श्लोक55
106. नरसिंह पुराण/अ.–64/श्लोक–69–74.
107. वही/अ.–2/श्लोक–4–5.

108. सं. वराह पुराण/अ.–9/पृ.–23.
109. वही/अ.–26/पृ.–60.
110. केदार खण्ड/अ.–I/श्लोक–24.
111. वही/अ.–IV/श्लोक–4.
112. वही/अ.– चौसठ/श्लोक–131–132.
113. *अव्यक्तादमवत् कालः प्रधानं पुरुषः परः।*
तेभ्यः सर्वमिदं जातं, तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्॥
(कूर्म. उपरि विभाग/अ.–3/श्लोक–1)
114. *प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम्।*
तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोजकः परः॥
(कूर्म. उपरि./अ.–3/श्लोक–8)
115. सृष्टि में 'अहंकार' का महत्त्वपूर्ण स्थान होने से उसके लिए 'महान आत्मा' यह लाक्षणिक प्रयोग किया गया है। (कूर्म. उपरि./अ.–3/श्लोक–9 से 13 तक की टीका व पाद टिप्पणी)।
116. कूर्म पुराण/उपरि भाग/अ.–3/श्लोक–16–23.
117. *कालः सृजतिभूतानि, कालः संहरति प्रजा।*
सर्वं कालस्य वशगा न कालः कस्यचित् वर्श॥ 16॥
118. *भत्संनिधावेष कालः करोति सकलं जगत्।*
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्यतद् वेदानुशासनम्॥ 23॥
119. ये वैवस्वत मनु वस्तुतः राजा सत्यव्रत हैं जो अगले जन्म में (श्वेत वाराह कल्प में) सातवें वैवस्वत मनु के रूप में प्रसिद्ध हुए।
120. मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अ.–213/श्लोक–5.
121. सं. गरुड पुराण/धर्मकाण्ड–प्रेतकल्प/अ.–49.
122. ब्रह्माण्ड पुराण/लोकवर्णनम्/पृष्ठ–48–49.
123. हरिवंश पुराण/हरिवंश पर्व/अ.–46/श्लोक–4.
124. हरिवंश पुराण/हरिवंश पर्व/अ.–51/श्लोक–23.
125. वायु पुराण/देववंश वर्णन/अ.–31 सम्पूर्ण.
126. योग वसिष्ठ (महारामायण) वैराग्य प्रकरण/सर्ग–23.
127. योग वसिष्ठ/वैराग्य प्रकरण/सर्ग–23, 24, 25, 26.
128. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–6/श्लोक–14.
129. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–7/श्लोक–48, 49, 50.
130. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–8/श्लोक–41–42.
131. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–9/श्लोक–18.
132. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–10/श्लोक–14, 15, 16.
133. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–10/श्लोक–30–34.

134. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–15/श्लोक–12, 15.
135. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–16/श्लोक–10, 27.
136. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–17/श्लोक–10, 12.
137. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–22/श्लोक–42, 43, 46.
138. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–24/श्लोक–19 से 27 तक
139. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–25/श्लोक–30.
140. श्रीमद्भागवत/एकादश स्कन्ध/अ.–28/श्लोक–16.
141. धनुर्वेद संहिता/आचार्य लक्षण/श्लोक–11 से 14
142. धनुर्वेद संहिता/शर लक्षणानि/श्लोक–58.
143. धनुर्वेद संहिता/अथ पायनम्/श्लोक–69.
144. धनुर्वेद संहिता/अथ लक्ष्यम्/श्लोक–104.
145. धनुर्वेद संहिता/अनध्याय/श्लोक–111, 112.
146. धनुर्वेद संहिता/औषधि/श्लोक–3 से 5, 7, 8
147. धनुर्वेद संहिता/योगिनी ज्ञान/श्लोक–1 से 8 तक
148. धनुर्वेद संहिता/पदाति क्रमः/श्लोक–60.
149. वैष्णव संगीत शास्त्र/तालार्णवः/पृ.–103.
150. महर्षि याज्ञवल्क्य 'याज्ञवल्क्यस्मृति'।
151. दामोदर पण्डित कृत 'संगीतदर्पण'–तालाध्यायः।
152. वैष्णव संगीत शास्त्र/पृष्ठ 104 / मृदंग तबला प्रभाकर/9
153. संगीत दर्पण/तालाध्याय/632.
154. संगीत दर्पण – 'तालाध्याय'.
155. वैष्णव संगीत शास्त्र/तालार्णव/श्लोक–26.
156. भरत का संगीत सिद्धान्त/पृ.–241.
157. वैष्णव संगीत शास्त्र/तालार्णव/पृ.–109.
158. वैष्णव संगीत शास्त्र/पृ.–112.
159. वैष्णव संगीत शास्त्र, पृ.–113.
160. क्षणादिर्व्याध्यवस्था च कालो भेषजयोगकृत्॥
(अष्टांग हृदय/अ.–1/श्लोक–24)
161. अष्टांग हृदय/सूत्रस्थान/अ.–1/श्लोक–24 की टीका.
162. अष्टांग हृदय/अ.–1/सूत्रसंस्थानम्/पृ.–17.
163. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–5/श्लोक–30–40.
164. अष्टांग हृदय/सूत्रस्थान/अ.–3/श्लोक–2 की टीका.
165. भारतीय दर्शन/जैन दर्शन/पृ.–105, 106.
166. भारतीय दर्शन/जैन दर्शन/पृ.–109.
167. भारतीय दर्शन/जैन दर्शन/पृ.–110.

168. सूर्य सिद्धान्त/मध्यमाधिकार/अ.–I/श्लोक–2–3 की टीका.
169. सूर्य सिद्धान्त/मध्यमाधिकार/अ.–10/श्लोक–10.
170. सूर्य सिद्धान्त/मध्यमाधिकार/अ.–1/श्लोक–11.
171. श्रीमद्भागवत/तृतीय स्कन्ध/अ.–11/श्लोक–1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 और 8
172. निरुक्त पंचाध्यायी/अ.–2/वाङ् निर्वचनम्.
173. पाणिनिकालीन भारतवर्ष/अ.–4/पृ.–244.
174. विष्णु पुराण/द्वितीय अंश/अ.–8/श्लोक–49, 61, से 73
176. वायु पुराण/अध्याय–9/श्लोक–2 से 23 तक.
177. विष्णु पुराण, अंश–प्रथम, अ.–5 के अनुसार पितृगणों की उत्पत्ति ब्रह्मा के पार्श्व भाग से हुई है। ब्रह्मा का चौथा शरीर 'मनुष्य' कहलाया.
178. शिवपुराण/विश्वेश्वर संहिता/अ.–14.
179. अमरकोश/प्रथम काण्ड/काल वर्ग–4/श्लोक–20 की माहेश्वरी टीका.
180. यजुर्वेद (शुक्ल–वाजसनेयी संहिता)/अ.–13/मंत्र–25, अ.–14/मंत्र–6, 15, 16, 27, अ.–15/मंत्र–27.
181. ऋग्वेद संहिता/मण्डल–1/सूक्त–164/मंत्र–12.
182. वायु पुराण/अ.–31/श्लोक–25–26.
183. वायु पुराण/अ.–30/श्लोक–3, 4, 7, 8, 9, 10 और 11.
184. अमर कोश/प्रथम काण्ड/कालवर्ग/श्लोक–18 की व्याख्या सुधा टीका.
185. निरुक्त पंचाध्यायी/अ.–4/पृ.–199.
186. अमर कोश/प्रथम काण्ड/कालवर्ग/श्लोक–18 की व्याख्या सुधा टीका.
187. ब्रह्म पुराण/अ.–36/पार्वती स्वयंवर/श्लोक–70, 71, 72, 73.
188. अष्टांग हृदय/ऋतुचर्या/अ.–3/श्लोक–1 से 37, 42 से 58½
189. दृष्टव्य है कि निरुक्त में 'त्र्यृतुः संवत्सरों ग्रीष्मो, वर्षा हेमन्ते इति' (नि. 4/27) मुख्य ऋतुएँ तीन ही बतलायी गयीं हैं।
190. अर्थर्ववेद संहिता/परिशिष्ट–2/देवता/क्र.–137.
191. वायु पुराण/अ.–30/श्लोक–22.
192. विष्णु पुराण/ (वायु./अ.–31/श्लोक–27)
193. वायु पुराण/अ.–50/श्लोक–203.
194. सम्वत्सर क्र.–44, 46, 50 के नाम क्रमशः साधारण, परिधावी तथा नल भी प्रचलित हैं।
195. नारद पुराण/पूर्वभाग–द्वितीय पाद/अ.–56/श्लोक–115–123.
196. वायु पुराण/अ.–52/श्लोक–68–1/2.
197. भारतीय ज्योतिष संग्रह/पृष्ठ–23–24–25.
198. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–3/श्लोक–22.
199. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–2/श्लोक–23.
200. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–2/श्लोक–26.

201. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर/पृष्ठ–1151.
202. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–5/श्लोक–19 से 25
203. हिन्दू संस्कृति अंक/पृष्ठ–340–341.
204. सूर्य सिद्धान्त/मध्यमाधिकार/अ.–I/श्लोक–24
205. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–2/श्लोक–33 से 45 तक.
206. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–2/श्लोक–46.
207. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–5/श्लोक–4, 5, 6, 7.
208. विष्णु पुराण/प्रथम अंश/अ.–5/श्लोक–9–10.
209. वायु पुराण/अ.–6/श्लोक–63, 66, 67, 68 तथा अ.–9/श्लोक–117.
210. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर.
211. अमर कोश/प्रथम काण्ड/कालवर्ग/श्लोक–22 तथा द्वितीय काण्ड/क्षत्रिय वर्ग/श्लोक–116 की माहेश्वरी टीका.
212. कूर्म पुराण/उपरि विभाग/अ.–43/श्लोक–5 से 9
213. हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ–340 के अनुसार ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध के 51 वें वर्ष के पहले दिन की 13 घड़ियाँ, 42 पल, 3 विपल और 43 प्रतिविपल अभी तक बीत चुके हैं।
214. थोड़े–बहुत अन्तर से यह संकल्प–मंत्र लगभग सम्पूर्ण भारत के हिन्दू–समाज में पढ़ा जाता है।
215. हिन्दू संस्कृति अंक/पृष्ठ–340–341.
216. पौराणिक कोश/पृष्ठ–94 पर कल्प का विवरण.
217. मत्स्य पुराण/द्वितीय खण्ड/अ.–290 के अनुसार क्रमांक (6) पर 'देव कल्प' (11) पर 'तम कल्प'(21) तत्पुमान् (कल्प) नाम मिलते हैं.
218. हरिवंश पुराण/हरिवंश पर्व/अ.–8/श्लोक–10, 11, 17. से 19
219. इस सम्बन्ध में श्रुति–स्मृति–रामायण–महाभारत, सभी पुराण तथा ज्योतिष–ग्रंथ एकमत हैं। मन्वन्तरों की 'कालावधि' के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। यहाँ तक कि पुराणों के घोर विरोधी स्वामी दयानन्द सरस्वती भी इसे सत्य प्रमाणित करते हैं–
220. वायु पुराण/अ.–32/श्लोक–59 से 63.
221. *तृतीया माधवे शुक्ला, भाद्रे कृष्णा त्रयोदशी।*
कार्तिके नवमी शुद्धा, माघे पंचदशी तिथिः॥
एता युगाद्याः कथिता दत्तस्याक्षय कारिकाः॥
(– नारद पुराण/पूर्व. 25/50–51)
222. सं. नारद पुराण/पूर्व भाग – द्वितीय पाद/अ.–56/श्लोक–147–148.
223. वायु पुराण/अ.–32/श्लोक–11–14.
यदेतस्य मुखं श्वेतं, चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते।
एतत्कृतयुगं नाम, तस्य कालस्य वै मुखम्॥
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वता मुखः॥ 14॥

224. नारद पुराण/पूर्वभाग-द्वितीय पाद/अ.-56/श्लोक-147-148.
225. श्रीमद्भागवत/स्कंध-9/अ.-14/श्लोक-43-49.
226. अमर कोश/प्रथम काण्ड/धीवर्ग/श्लोक-3 की माहेश्वरी टीका.
227. हिन्दू संस्कृति अंक/पृष्ठ-342.
228. नारद पुराण/पूर्व भाग - द्वितीय पाद/श्लोक-147-148.
229. अमर कोश/तृतीय काण्ड/नानार्थ वर्ग/श्लोक-193 की टीका.
230. त्रिकाण्ड शेष कोश/प्रथम काण्ड/काल वर्ग/श्लोक-31.
231. विष्णु पुराण/षष्ठ अंश/अ.-2/श्लोक-15.
232. सूर्य सिद्धान्त/अ.-14/श्लोक-1 एवं नारद पुराण/पूर्व भाग- द्वितीय पाद/अ.-56/श्लोक-109-113.
233. नारद पुराण/पूर्व भाग - द्वितीय पाद/अ.-56/श्लोक-113.
234. हरिवंश पुराण/हरिवंश पर्व/अ.-8/श्लोक-9, (सू.सि./अ.-14/14.)
235. विष्णु पुराण/अंश-I/अ.-5/श्लोक-31, 32, 33.
236. सूर्य सिद्धान्त/मध्यमाधिकार/अ.-I/श्लोक-15, 16.
237. सूर्य सिद्धान्त/मध्यमाधिकार अ.-I/श्लोक-18.
238. मत्स्य पुराण/उत्तरार्ध/अ.-142/श्लोक-14-15.
239. मत्स्य पुराण/उत्तरार्ध/अ.-142/श्लोक-6-7.
240. सूर्य सिद्धान्त/अ.-14/श्लोक-14.
241. मत्स्य पुराण/उत्तरार्ध/अ.-141/श्लोक-8.
242. हरिवंश पुराण/हरिवंश पर्व/अ.-8/श्लोक-10-11.
243. मनु का एक वर्ष देवताओं के 72000 वर्ष के तुल्य होता है। यह कालावधि छै चतुर्युग के तुल्य होती है। इस गणित से एक मनु का काल लगभग 71 × 12000 = 852000 + 5103 = 857103 दिव्य वर्ष प्रमाणित होता है.
244. भारतीय ज्योति संग्रह/सम्वत्सर ज्ञान/पृष्ठ-22-23.
245. सूर्य सिद्धान्त/मानाध्याय-14/श्लोक-2
246. भविष्य पुराण/मध्यम पर्व-II/अध्याय-6.
247. सूर्य सिद्धान्त/मानाध्याय/श्लोक-3.
248. सूर्य सिद्धान्त/मानाध्याय-14/श्लोक-18, 19.
249. भविष्य पुराण/मध्यम पर्व-II/अध्याय-6.
250. सूर्य सिद्धान्त/मानाध्याय-14/श्लोक- .
251. भविष्य पुराण/मध्यम पर्व-II/अ.-6/पृष्ठ-214.
252. नारद पुराण/पूर्व भाग-द्वितीय पाद/अ.-56/श्लोक-112-1/2.
253. सूर्य सिद्धान्त/मानाध्याय-14/श्लोक-15.
254. भविष्य पुराण/मध्यम पर्व-II/अ.-6/पृष्ठ-214.
255. नारद पुराण/पूर्व भाग-द्वितीय पाद/अ.-56/श्लोक-112.

256. यह कथा श्रीमद् वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में भी सर्ग 103-106 के अन्तर्गत थोड़े अन्तर से कही गई है।
257. अध्यात्म रामायण / उत्तरकाण्ड / सर्ग 8-9/ श्लोक-सम्पूर्ण
258. यह ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के ब्रह्मखण्ड के अन्तर्गत अध्याय क्र.-12 से 17 के अनुसार है।
259. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण/ब्रह्म खण्ड/अ.-12-13-14-15-16-17 की कथा।
260. विष्णु पुराण/पंचम अंश/अ.-38/श्लोक-8.
261. श्रीमद्भागवत/तृतीय स्कंध/अ.-26/श्लोक-3, 10 से 17
262. हरिवंश पुराण/भविष्य पर्व/अ.-18/श्लोक-34, 35, 36.
263. विष्णु पुराण/द्वितीय अंश/अ.-8/श्लोक-4.
264. मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अ.-142/श्लोक-13-14.
265. मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अ.-141/श्लोक-14-15.
266. श्री विष्णु पुराण/तृतीय अंश/अ.-1/श्लोक-32.
267. श्री विष्णु पुराण/चतुर्थ अंश/अ.-24/श्लोक-104-105.
268. मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अ.-142/श्लोक-13.
269. वाराही संहिता/अ.-13/श्लोक-3.
270. विष्णु पुराण/चतुर्थ अंश/अ.-24/श्लोक-106.
271. वर्तमान में 'उत्तरायण' मकर संक्रान्ति से माना जाता है - यह मान्यता वाराह मिहिर के पश्चात्वर्ती गणितज्ञों ने प्रचलित की है - वेद काल निर्णय/पृष्ठ-9 (ग्रंथ संक्षेप)
272. वेद काल निर्णय/पृष्ठ-8-9 (ग्रन्थ संक्षेप).
273. वेद काल निर्णय/पृष्ठ-3 (भूमिका).
274. नारद पुराण/पूर्व भाग-द्वितीय पाद/अ.-56/श्लोक-133-135.
275. पौराणिक कोश/पृष्ठ-199.
276. अधिदेवताओं के नाम वेदांग ज्योतिष के अनुसार हैं। (वेद काल निर्णय/परिभाषा प्रकरण/पृष्ठ-80).
277. त्रिकाण्डशेष कोश/कालवर्ग/श्लोक-28.
278. भारतीय ज्योतिष संग्रह/पृष्ठ-30-32.
279. श्रीमद्भागवत/12-11-39 के अनुसार यक्ष का नाम सुरुचि है और सातोंगण माघ मास के बतलाये गये हैं।
280. श्रीमद्भागवत/द्वादश स्कन्ध/अ.-11/श्लोक-32.
281. विष्णु पुराण/द्वितीय अंश/अ.-11/श्लोक-22.
282. नारद पुराण/पूर्व भाग-प्रथम पाद/25/50-51/पृ.-93.
283. काल सिद्धान्त-दर्शिनी/पृष्ठ-5.
284. हिन्दू संस्कृति अंक/पृष्ठ-775.
285. हिन्दू संस्कृति अंक (कल्याण)/पृष्ठ-755.

अकादमी द्वारा प्रकाशित अनुषंग पुस्तिकाएँ

लोकवर्त्ती परि शिष्ट के रूप में चौमासा की पूर क पुस्तिकाएँ,वाचिक पर म्परा के विभिन्न पक्षों पर एकाग्र मूल बोली तथा हि न्दी अनुवाद के साथ-

बघेलखण्ड के लोकगीत
बघेलखण्ड में पर म्परागत रूप से गाये जाने वाले गीत
संकलन-लखन प्रतापसिंह 'उ र गेश' मूल्य-35/-

भर थरी
छ त्तीसगढ़ी लोक गाथा भर थरी
संकलन-नंद किशोर तिवारी, मूल्य-50/-

गणगौर
निमाड़ी आनुष ानिक पर्व गणगौर के पर म्परागत गीत
संकलन-बसंत निर गुणे/रमेश चन्द्र तोमर , मूल्य-50/-

मालवा के लोकगीत
मालवा अंचल में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले पर म्परागत गीत
संकलन-चन्द्रशेखर दुबे, मूल्य-50/-

बुन्देलखण्ड के संस्कार गीत
बुन्देली संस्कार , विधि-विधान पर केन्द्रित गीत
संकलन-सुधीर तिवारी/माधव शुक्ल 'मनोज', मूल्य-50/-

कहे जन सिंगा
निमाड़ी संत सिंगाजी और उनके नि र्गुण भजन
संकलन-डॉ. श्रीराम परि हार , मूल्य-50/-

बसन्त गीत
मौखिक साहि त्य के भोजपुरी बसंत गीत
संकलन-कर्मेन्दु शिशिर , मूल्य-50/-

ईसुरी
बुन्देली के अद्वितीय कवि ईसुरी की एक सौ फागें
संकलन-लोकेन्द्र सिंह नागर , मूल्य-50/-

कुमाऊँनी लोकगीत
पह ाड़ी लोकांचल कुमाऊँ की लोक पर म्परा के गीत
संकलन-डॉ. देवसिंह पोखरि या, मूल्य-50/-

कह नात
बुन्देली लोकोक्तियाँ और कह ावतें
संकलन-र मेश दत्त दुबे, मूल्य-50/-

कृष्ण लीला गीत
ब ज की लोक पर म्परा के श्रीकृष्ण भक्ति गीत
संकलन-र मनार ायण अग्रवाल, मूल्य-50/-

प्रेमगीत
प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में पारं परि क रूप से गाये जाने वाले प्रेमगीत
सं.-कपिल तिवारी, मूल्य-50/-

प्रेमगीत
मध्यप्रदेश की आँचलिक पर म्परा में गाये जाने वाले प्रेमपर क गीत
सम्पादक-कपिल तिवारी, मूल्य-50/-

पूर्वांचल के लोकगीत
अवधी और भोजपुरी संस्कार गीत
संकलन-बी.एल. द्विवेदी, मूल्य-50/-

निमाड़ी लोक गीत
निमाड़ी लोक जीवन सम्बन्धी गीत
संकलन-र मनार ायण उ पाध्याय, मूल्य-50/-

मालवी लोककथाएँ
मालवा अंचल में पर म्परागत रूप से प्रचलित लोककथाएँ
संकलन-प्रह लाद चंद्र जोशी, मूल्य-50/-

बुन्देली का फाग साहि त्य
बुन्देली फाग र चनाकार तथा गायिकी
संकलन-श्याम सुन्दर बादल, मूल्य-50/-

मध्यप्रदेश का लोकनाट्य माच
मध्यप्रदेश के मालवा अंचल की लोकनाट्य पर म्परा
संकलन-डॉ. शिवकुमार मधुर , मूल्य-50/-

पाबूजी की पड़
र ाजस्थानी चरि त नायक और लोक देवता पाबूजी की शौर्य गाथा
संकलन-डॉ. महे न्द्र भानावत, मूल्य-50/-

ख्याल अलीबख्श
प्रसिद्ध कवि, गायक तथा कृष्ण भक्त अलीबख्श और उ नका ख्याल
संकलन-रे वती र मण शर्मा,मूल्य-50/-

बिहा र के संस्कार गीत
जन्म से मृत्यु तक के अवसरों पर गाये जाने वाले गीत
संकलन-विन्ध्यवासिनी देवी, मूल्य-50/-

बसन्त के रं ग
बुन्देली लोक कवि ईसुरी की फागों का चयन
संकलन-र मेश गुप्त, मूल्य-50/-

वृक्ष पुरा ण
लोक पर म्परा में वृक्षों का मह त्व
संकलन-महे श कुमार मिश्र 'मधुकर' , मूल्य-60/-

तँवर धारी संस्कार गीत
चम्बल क्षेत्र के संस्कार गीतों पर केन्द्रित
संकलन-भगवान सह ाय शर्मा, मूल्य-60/-

गोंड जनजातीय गीत
गोंड जनजातीय गीतों पर केन्द्रित
संकलन-रूपसिंह कुशर ाम, मूल्य-60/-

मालवी कथाएँ
मालवी लोक कथाओं पर केन्द्रित
संकलन-डॉ. एच.एस. गुगालिया, मूल्य-50/-

बुन्देली वैवाहि क गीत
बुन्देली वैवाहि क गीतों पर केन्द्रित
संकलन-डॉ. सुधा गुप्ता, मूल्य-50/-

कोर कू संस्कार गीत
कोर कू जनजातीय संस्कार गीतों पर केन्द्रित
संकलन-डॉ. धर्मेन्द्र पारे , मूल्य-50/-

र ाजुला मालूशाही
कुमाऊँनी लोक गाथा पर केन्द्रित
संकलन-डॉ. देवसिंह पोखरि या , मूल्य-50/-

निमाड़ी गाथा र ायसल
निमाड़ी गाथा पर केन्द्रित
संकलन-डॉ. धर्मेन्द्र पारे , मूल्य-50/-

भीली कथाएँ
भील जनजातीय कथाओं पर केन्द्रित
संकलन-गोविन्द गेह लोत , मूल्य-50/-

ढोला कुँवर
कोर कू जनजातीय गाथा पर केन्द्रित
पंकलन-डॉ. धर्मेन्द्र पारे , मूल्य-50/-

सम्पर्क
निदेशक, आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परि षद्
मुक्ता र मूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाणगंगा, भोपाल-462 003
फोन/फैक्स : 0755-2551878, 2760668